स्वप्नद्रष्टा

कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी

राजकमल प्रकाशन दिल्ली

भूमिका

मेरे उपन्यास 'स्वप्नद्रष्टा' का हिन्दी अनुवाद आज प्रकाशित हो रहा है, इससे मुझे बड़ी खुशी होती है। इसमें १६०४–१६०५ के वङ्ग-भङ्ग के आन्दोलन का इतिहास दिया गया है। मैं आशा रखता हूँ कि आज भी लोगों को भारतीय इतिहास के इस प्रकरण में रस मिलेगा। राजकमल प्रकाशन ने इसका अनुवाद अच्छा कराया है, इसलिए मैं उनको अभिनन्दन देता हूँ।

नई दिल्ली
३०-९-१६५०

—क० मा० मुन्शी

सूची

एक

भावी समधी

: १ :

३० दिसम्बर १८९८ के दिन लॉर्ड कर्ज़न भारत के राज-प्रतिनिधि नियुक्त हुए।

भारत के इतिहास का एक युग पूरा हुआ व दूसरा आरम्भ हुआ। नवभारत की निर्माण-क्रिया पूरी हुई।

कर्ज़न ने अंग्रेज़ों के सद्गुणों व दुर्गुणों को प्रचण्ड रीति से मूर्तिमान किया था। वे कार्यकुशल, प्रामाणिक, व्यवहारदक्ष व न्यायी थे। वे स्वाधिकार-उन्मत्त थे। उनमें यह आत्मश्रद्धा सुदृढ़ थी कि शासन करने के लिए निर्मित जाति में वे स्वतः शासन करने के लिए ही उत्पन्न हुए थे। वे यह मानते थे कि उनकी कृपा से ही सबको सुखी रहने का अधिकार है। उनकी इच्छा के अनुसार ही सबको सुखी रहना चाहिए। इस कर्तव्य से वे किसीको हटने नहीं देते थे। वे स्वतः पाश्चात्य थे, चाहे जैसे हों पर दैवी थे; भारतीय पौर्वात्य थे, चाहे जैसे हों पर मानुषी थे। इस अपवाद से समानता का सिद्धान्त मानने में उन्हें कोई आपत्ति नहीं थी।

सन् १९०३ ई० में उन्होंने तीन करोड़ रुपये खर्च कर सम्राट् के प्रतिनिधि के रूप में अपने राज्याभिषेक का समारंभ कर भारतीयों की पौर्वात्य कल्पना उत्तेजित करने का प्रयत्न किया। उनके एक बन्दीजन ने कहा—"और सभा मण्डप के केन्द्रीय स्थान में चमकते हुए मञ्च पर दाहिना हाथ ऊँचा कर अपने महाराजाधिराज स्वामी की ओर से

सबके प्रणाम स्वीकार करते हुए राज-प्रतिनिधि-सत्ता का छत्र धारण कर शान्त व गौरवशाली बनकर वे बैठे;.......शान्त व संयमी बनकर वे बैठे। जिन विख्यात वीरों ने अंग्रेज़ों के लिए भारत जीता व सुरक्षित रखा उनके योग्य प्रतिनिधि वे प्रतीत होते थे। उनकी मुखमुद्रा जरा भावनापूर्ण थी, उनके ओंठ दृढ़तापूर्वक बन्द थे, उनका सिर नयनों की स्वीकृति से झुका हुआ था। उनका यह एक अभिनय शान्त व स्वस्थ था। यह क्षण भी जीवन-साफल्य के लिए पर्याप्त था।''[१]

यह दृश्य जिस प्रकार फ्रेज़र की पुस्तक में शोभा देता है उस प्रकार सबको शोभाप्रद प्रतीत नहीं हुआ। भारत के प्रतिनिधि लालमोहन घोष ने मद्रास-कांग्रेस के सभापतित्व के स्थान से उसे, 'मृतप्राय जनता के लिए शानदार तमाशा' (Pompous Pageant to a Perishing People) नाम से सम्बोधित किया। १९०५ के अगस्त मास में उन्होंने त्यागपत्र दे दिया।

पहली सितम्बर १९०५ के दिन उन्होंने वङ्ग-भङ्ग की घोषणा की। इतिहास व संस्कृति ने जिसे संयुक्त किया था, उसे एक झटके में उन्होंने काट डाला।

१९०५ के अन्त में वे भारत से विदा हुए। 'अपने कार्यों को यदि एक शब्द में कहा जाय तो वह कार्यदक्षता है—इस प्रकार अपने ही हाथों उन्होंने अपने पूरे किये गए कार्यों का मृत्यु-लेख लिखा।

उनके स्थान में लार्ड मिन्टो राज-प्रतिनिधि नियुक्त हुए। दिसम्बर १९०५ में बर्क का अध्ययन करने वाले व ग्लेस्टन के शिष्य उदार राजकीय भावों के प्रतिनिधि जॉन मॉर्ले भारतमंत्री नियुक्त हुए। बङ्गाल को हृदय-विदारक वेदना होने लगी। इस वेदना ने स्वदेशी-आन्दोलन को जन्म दिया।

पृथक् किये हुए बङ्गाल के गवर्नर सर बेम्फील्ड फ़ुलर ने १४ अप्रैल

---

[१] Lovat Fraser : *At Delhi*

१९०६ के दिन पुलिस की सहायता से 'बारीसल-परिषद्' बिखेर डाली।

राष्ट्रीयता की ज्योति बङ्गाल के युवकों के हृदय में जागृत हुई। फुलर ने उसके बुझाने का प्रयत्न किया। ज्योति प्रज्वलित हुई। जहां-जहां विद्यार्थी थे वहां-वहां देश-भक्त प्रकट हुए।

'बारीसल-परिषद्' मे से बड़ौदा वापस आकर थोड़े महीनों में अरविन्द घोष ने बड़ौदा-राज्य की नौकरी से त्यागपत्र दिया।

: २ :

सन् १९०६ ईसवी की वर्षा ऋतु थी। शाम के पांच बजे अहमदाबाद से बड़ौदा जाती हुई रेलगाड़ी आणंद स्टेशन पर खड़ी थी।

फर्स्ट क्लास के एक डिब्बे के खुले दरवाजे पर हाथ रखकर एक अधेड़ अवस्था के सज्जन खड़े थे। उनके 'हाफ-कोट' व 'टाई' सुधारवादियों में उनकी गणना कराते थे। उनकी उंगली पर चमकती हीरे की अंगूठी व उनकी जाकिट पर शोभित होती सोने की 'चेन' उनकी समृद्धि का विचार कराते थे। एक हाथ पटलून के जेब में डालकर वे घिरे हुए बादल के सामने देखते थे।

माननीय श्री जगमोहनलाल अग्रगामी बैरिस्टर व धारासभा के सभ्य थे। बम्बई-केसरी सर फीरोज़शाह के व्यवहार-कुशल सहायक थे। उनके ओंठ बंद करने के ढङ्ग से उनकी दृढ़ता का पता लगता था। उनके मूंछों पर ताव देने का ढङ्ग उनके अहंभाव का प्रमाण देता था। जिस प्रकार वे दूसरे लोगों की ओर देखते उससे अपनी श्रेष्ठता के प्रति जो उनका निश्चल विश्वास था उसकी सूचना मिलती थी। सारांश में समय को जीतने वाले के सब लक्षण उनमें स्पष्टतया दिखाई देते थे।

आणंद के स्टेशन पर एक ओर से दूसरी ओर जाने के लिए जमीन

के अन्दर से मार्ग है। उसमें से आते-जाते 'चरोतर' को कितने ही वर्ष हुए, किन्तु उसका आश्चर्य पूरा नहीं हुआ। बहुत बार इस रास्ते में दो-चार बार इधर-उधर से जाकर एक बार टिकिट के लिए दिये गए पैसों को वसूल करने में उसे संतोष होता है।

माननीय जगमोहनलाल आकाश की ओर देखते थे, इतने में जमीन के अन्दर के मार्ग में से एक पैंतालीस वर्ष के मोटे व गोरे सज्जन निकले। उनके मुख पर रवाब था; उनकी बड़ी आंखों में शुद्धता व उग्रता थी; उनके छोटे लिबास में सत्ताधीश की निश्चयात्मकता थी। दो सौ कदम की दूरी से सरल व भोले खानदान के व्यक्ति के रूप में वे पहिचान में आ जाते थे।

जगत-विजेता के स्थिर नयन आकाश में से अवनी पर आये और आगन्तुक पुरुष पर स्थिर हुए। नयनों में जरा अमृत का सञ्चार हुआ। कृपापूर्ण हास्य दृढ़ मुख पर प्रसारित हुआ।

'ह-लो—प्रमोदराय !' उन्होंने जरा ऊंचे स्वर में कहा।

सरकारी कर्मचारी ने जगमोहनलाल को देखा व क्षण-भर के लिए उसके मुख पर आनंद का प्रसार हुआ। वे जल्दी से आगे आये और जगमोहनलाल के शान्तिपूर्वक बढ़ाये हुए हाथ को अपने हर्षपूर्ण हाथ में लिया।

'ओ-हो, जगमोहन भाई ! आप कहां से भूल पड़े ?'

'मैं एक 'केस' के लिए काठियावाड़ गया था। पर आप नवाबपुरा छोड़ यहां कहां घूमते हैं ?'

'मैं डाकोरजी दर्शन करने गया था', प्रमोदराय ने कहा, 'थोड़ी देर के लिए शहर में गया था। क्यों, सब आनंद में तो हैं ? जमना भाभी कैसी हैं ?'

'आनंद में हैं। आप बम्बई तो आते ही नहीं।'

'भाग्य में होगा तो किसी दिन देखेंगे। इब्राहीम,' प्रमोदराय ने

नवाबपुरा स्टेट के चपड़ासी को कहा, 'इस डिब्बे में सामान रखो। जगमोहन भाई ! कहां जाते हैं ?'

'बड़ौदा, और आप ?' चपड़ासी के आडम्बर को तिरस्कारपूर्ण दृष्टि से चूर-चूर करते हुए माननीय महाशय बोले।

'बड़ौदा।'

'चलो, दोस्त बहुत दिनों बाद आनंद से बातचीत करेंगे।'

गार्ड की सीटी बजी और दोनों बाल-मित्र एक ही डिब्बे में बैठे।

: ३ :

माननीय श्री जगमोहनलाल व रावबहादुर प्रमोदराय दोनों एक ही जाति के थे, और दोनों का मूल जन्म और निवास अहमदाबाद होने से बाल-मित्र थे। देहाती पाठशाला में साथ ही पढ़कर गुजराती तथा अंग्रेज़ी स्कूल में से दोनों एक साथ बाहर निकले। जगमोहनलाल को धनाढ्य पिता के पुत्र होने का भाग्य प्राप्त था, इससे उन्होंने बम्बई जाकर अध्ययन किया, विलायत जाकर बैरिस्टर की पदवी प्राप्त की और 'हाईकोर्ट' में रहकर पैसे, मान व बड़प्पन प्राप्त किये। प्रमोदराय को मैट्रिक होकर 'रेवेन्यु-विभाग' में नौकरी करनी पड़ी, और अब मुहर्रिर, सर्कल इन्स्पेक्टर, नायब तहसीलदार, मामलतदार, डिप्टी कलेक्टर, आदि के पदों को पार कर नवाबपुर के दीवान-पद के शिखर पर पहुँच गए थे। दोनों ने मित्रता सुरक्षित रखी थी और जाति में यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया करते थे कि एक-दूसरे से जरा भी कम नहीं हैं।

बम्बई वाले सज्जन स्वस्थ, दुबले व चालाक दिखाई देते थे; सरकारी कर्मचारी सज्जन मोटे, जल्दबाज़ व उग्र मालूम पड़ते थे। दोनों की मुखमुद्रा पर से उनकी बुद्धि की परख होती, और उसमें चारित्र्य की परख होती थी।

डिब्बे में बैठकर प्रमोदराय ने माथे पर आया हुआ पसीना पोंछा और आसपास देखा।

'आप कहां जाते हैं ?'

'जरा बड़ौदा। सुलोचना व उसकी मां राजा भाई के वहां गए हैं, उन्हें लेकर बम्बई जाऊँगा। और आप ?' राजा भाई माननीय जग-मोहनलाल के साले थे।

'सुदर्शन से मिलने।'

'सुदर्शन तो वहां पढ़ता है न ?' मानो जानते ही न हों इस ढङ्ग से माननीय महाशय ने कहा।

'हां, सीनियर बी० ए० में है।'

'आप लोग तो मानते नहीं', बैरिस्टर साहब ने स्वाभिप्राय उन्नत्त होकर सिर घुमाया, 'पर बम्बई के बिना शिक्षा नहीं है।'

'मुझे भी अब पश्चात्ताप होता है। मैंने उसे बड़ौदा इसलिए रखा कि बम्बई के गंदे वातावरण से कहीं वह बिगड़ न जाय, पर हुआ कुछ-का-कुछ।' यह कहकर प्रमोदराय ने जेब में से रूमाल निकाल फिर से माथा पोंछा।

'क्यों, क्या है ?' जरा चिन्ता प्रदर्शित करते हुए जगमोहनलाल नें कहा।

'अरे जाने दो यह बात', कह रावबहादुर ध्यानपूर्वक खिड़की की ओर नीचे झुके और सिर नीचा कर धीरे से बोलने लगे, 'वहां वह अरविंद घोष है।'

'क्या सुदर्शन पर राष्ट्रीय पागलपन सवार हुआ है ?' हंसकर मान-नीय महाशय ने कहा।

'कुछ न पूछिये। वह तो बड़ा देश-भक्त हो गया है।'

उत्तर में जगमोहनलाल खूब हँसे, और फिर व्यंग्य किया—'यह भी ठीक ! पिता सरकार की खुशामद कर रावबहादुर बने और पुत्र देश-भक्त बना।'

'जगमोहन भाई ! इसमें हँसने-जैसा नहीं है । मैंने जहां तक सुना है, लड़का बिलकुल पागल हो गया है । इन बङ्गालियों ने तो घर-घर आग लगाई है ।'

इतने में गाड़ी का धक्का लगा और रावबहादुर बोलते-बोलते रुक गए । गाड़ी चलने लगी । थोड़ी देर में जगमोहनलाल ने बहुत जोर से मुट्ठी हिलाकर कहा—'ये बङ्गाली बिलकुल उत्तरदायित्वहीन हैं । छोटे बालकों का व्यर्थ में बलिदान करते हैं । It's idiotic', यदि यह प्रवृत्ति रुकी नहीं तो सार्वजनिक जीवन का सर्वनाश होगा ।'

वे इस प्रकार विश्वासपूर्वक देखने लगे मानो उन्होंने कोई निर्विवाद बात कही हो ।

'इसीसे मैं बड़ौदा जाता हूं । मेरा तो वह इकलौता बेटा है । यदि वह पागल हो जाय तो मेरा क्या होगा ?'

'पर मैंने तो सुना था कि वह होशियार लड़का है,' जगमोहनलाल ने कहा ।

'यही तो है । उसी का तो यह सब झंझट है । हज़रत ऐसे होशियार हो गए हैं, कि अब दुनिया का उद्धार करने निकले हैं ।'

'हं ?' सारांश में माननीय महाशय ने उत्तर दिया ।

'पर इसका उपाय क्या है ?'

'एक ही, मेरे यहां भेजो । मैं रास्ते पर ले आऊँगा ।'

'पर आपके फीरोज़शाही विचारों को तो वह धिक्कारता है ।'

'जरा भी न घबराना । इसमें मेरा भी हित है ।'

'मैं जानता हूं । अपनी सुलोचना का आप कब विवाह करते हैं, उसकी मैं प्रतीक्षा कर रहा हूँ ।' रावबहादुर ने कहा ।

'जल्दबाज़ी में क्या कोई काम होता है ? लड़का बड़ा है, लड़की भी बड़ी होने दो', शान्ति से बैरिस्टर ने पारसीशाही भाषा में जवाब दिया, 'सब ठीक-ठाक होगा तो सब-कुछ हो जायगा । आप इसे कहाँ तक पढ़ायंगे ?'

'मुझे उसे आई० सी० एस० के लिए भिजवाना है।'

'बाप से बेटा सवाया हो, इससे ?'

हँसकर जगमोहनलाल ने कहा—'एक काम करिए। अभी सीनियर में है तो इस वर्ष वहीं रहने दीजिए और फिर आगामी वर्ष बम्बई भिजवाइए। सुना है अरविंद घोष बड़ौदा छोड़कर जानेवाले हैं।'

'अरे ! बीमारी क्या इस प्रकार दूर हो सकती है ?'

'सब दूर हो जायगा। वह आपके-जैसे सरकारी कर्मचारी से नहीं सुधरेगा। ऐसे लड़के को सच्चा दृष्टिबिन्दु समझाना चाहिए। राजकीय जोश बुरा नहीं है, पर उसे ठीक रास्ते पर प्रेरित करना चाहिए। उसे बम्बई भिजवाइए। मैं उसे फीरोज़शाह मेहता के पास ले जाऊँगा।' फीरोज़शाह मेहता के अनुयायी ने अपना ब्रह्मास्त्र बताया। 'उसे जरा सच्चे राजकीय आन्दोलन का विचार होगा तो स्वतः ही सुधर जायगा। फिर विलायत भिजवाइये तब मेरे जीवित रहते तक बैरिस्टर हो जायगा, तो मैं सब ठीक कर दूंगा।'

'भाई ! आप अपनी पुत्री का विवाह कर दीजिए फिर आप जानें व वह जाने।'

: ४ :

समधी का नाता स्थापित करने के लिए आतुर इन दो पुराने मित्रों का स्वभाव, जीवन व दृष्टिबन्दु अलग-अलग थे। रावबहादुर प्रामाणिक, उग्र, स्पष्टवक्ता व जल्दबाज़ थे; माननीय सज्जन चालाक थे। प्रमोदराय नौकरी में व संसार में परिश्रम करने में बड़प्पन मानते थे। जगमोहनलाल चालाकी से काम लेकर कम-से-कम परिश्रम से अधिक-से-अधिक लाभ प्राप्त करने का अवसर देखा करते थे, और इसी प्रकार उनके दृष्टिकोण पृथक् थे।

प्रमोदराय अपने को ब्रिटिश-साम्राज्य का एक सेवक मान गर्व

करते थे। कर्जन-युग के पहले के अंग्रेज़ अधिकारियों के क्रोधी किन्तु शुद्ध हृदय उन्होंने जीते थे। वे अधिकारी इस उग्र व प्रामाणिक व्यक्ति में श्रद्धा रखते थे, और अपने बड़प्पन व स्वार्थ को सुरक्षित रख जितनी मित्रता उनके साथ रख सकते थे उतनी रखते थे। रावबहादुर स्वतः गरीब जनता का दुःख दूर करने का प्रयत्न करते थे, और अंग्रेजी राज्य को दुःख दूर करने का परम साधन मानते थे।

बम्बई में शिक्षा प्राप्त करने के कारण जगमोहनलाल की दृष्टि-मर्यादा विशाल थी। अंग्रेजी अधिकारी की कार्यदक्षता की वे प्रशंसा कर सकते थे। अंग्रेजी प्रजा के स्वातन्त्र्य-प्रेम में उन्हें श्रद्धा थी, पर जिस सरलता से सामान्य अंग्रेज़ असामान्य भारतीय पर सत्ता प्राप्त कर उसका उपभोग कर सकता था, यह उनको खलती थी। पर उन्हें ऐसा विश्वास था कि धीरे-धीरे वे और उनके समान दूसरे ऐसी शक्ति बतायंगे कि वह सरलता नहीं के बराबर हो जायगी।

यह भेद सुदर्शन की बात करने से अधिक स्पष्ट हुआ। थोड़ी देर तक भी प्रमोदराय से चुप न रहा गया।

'आप-जैसों ने ही यह सब बिगाड़ा है।'

'क्यों, भाई ?' ज़रा मज़ाक में हंसकर माननीय महाशय बोले।

'अहमदाबाद में आप लोगों ने कांग्रेस बुलवाई और लड़कों के सिर फिर गए। सुदर्शन स्वयंसेवक हुआ, सुरेन्द्रनाथ के भाषण सुने और उसे यह रोग लग गया। आपके फीरोज़शाह मेहता को अहमदाबाद में कांग्रेस बुलवाने को किसने कहा था ?'

जगमोहनलाल हँसे—'ये ही राष्ट्रीय जागृति के चिह्न हैं।'

'अच्छा तो अब मालूम पड़ेगा। तुम्हारे मॉडरेटों को भागने को जगह न मिलेगी।'

'ज़रा भी नहीं। ऐसे लड़के क्या कहीं राज चला सकते हैं ? यह तो कर्ज़न की मूर्खता से उभार आया है, वह शान्त हो जायगा।'

'कुछ शान्त न होगा। बॉयकॉट निकला है उसे तो देखो। उनका

स्वतः का तो ठिकाना नहीं है और अंग्रेज़ी माल बंद करने बैठे हैं।' प्रमोदराय ने उभार निकाला।

'मैं मानता हूं वे इने-गिने कपड़े जलाएंगे, उससे क्या देश का दारिद्र्य मिटने वाला है?'

'आज अंग्रेज़ हैं तो आप लोग शान्ति से बैठे हैं।' प्रमोदराय ने कहा।

'कर्ज़न भी तो अंग्रेज़ है।' माननीय महाशय ने उलाहना दिया।

'अरे! उसने ऐसा क्या किया है? हम लोग पागल हो गए हैं। मैं पंचमहाल में फेमिन-ऑफिसर था तब उसने स्वतः आकर हमारे केम्पों का निरीक्षण किया था और दुष्काल-पीड़ितों का भोजन भी चखा था। क्या आपके फोरोज़शाह मेहता ऐसा करेंगे? तुम वकीलों को कुछ-न-कुछ हलचल चाहिए।'

'जनता की भावनाओं का तो आपको कोई विचार ही नहीं है। कर्जन भले ही बड़ा आदमी हो, पर व्यवहार-कुशल बिलकुल नहीं है। नहीं तो आज यह तूफान न होता।'

इस प्रकार बातें करते हुए थोड़ा समय व्यतीत हुआ और दोनों थोड़े समय तक चुप रहे।

'रावबहादुर! सुदर्शन उन्नीस वर्ष का हुआ न?'

'हां, उन्नीस पूरे हुए। आपकी सुलोचना कितने वर्षों की हुई?'

'सत्रह। सब ठीक-ठाक रहा तो आते साल विवाह करेंगे। क्या विचार है?'

'हां भाई, आपको बुढ़ापा नहीं दिखाई देता, पर मैं तो थक गया हूं। मेरा तो पेन्शन लेने का वक्त होगा, और नौकरी से निवृत्त होने पर सब व्यर्थ होगा।'

'क्या सुदर्शन कालेज-बोर्डिंग में रहता है?'

'हाँ।'

'क्या आप सीधे वहां जा रहे हैं?'

'हाँ, चलना है ?'

'थाने में भी मिल लूँगा।'

अन्त में बड़ौदा आया और दोनों सज्जन गाड़ी से उतरे। जगमोहनलाल ने अपना बहुत कुछ सामान स्टेशन पर ही रखा, और प्रमोदराय का चपड़ासी दोनों का थोड़ा सामान लेकर साथ में आया। एक गाड़ी में बैठ दोनों कालेज में आये।

: ५ :

बड़ौदा कालेज का भवन गुजरात के विख्यात भवनों में अपना निराला स्थान रखता है। उसमें एलिफन्स्टन-कालेज की व्यावहारिक विशालता या विल्सन-कालेज की सहूलियतों से भरी हुई निर्जीवता न थी। उसमें मुगल-साम्राज्ञियों की कबर का स्वरूप और इंग्लैण्ड के कालेजों की प्रचण्ड प्रणाली का मिश्रण है। उसके गुम्बजों व झरोखों में विद्या के संयम की अपेक्षा विलास व स्वच्छंदता अधिक दृष्टिगोचर होते हैं। उसकी ऊंचाई में, खण्डों में, बड़ी कमानों में सौन्दर्य की छटा की अपेक्षा गाम्भीर्य अधिक दिखाई देता है। जैसा अर्वाचीन भारतीय जीवन है, वैसा यह भवन है—भारतीय मुस्लिम व अंग्रेज़ी संस्कारों का बेजोड़, पर विचित्र एकीकरण है।

तो भी यह भवन विकसित होती हुई कल्पना व उत्पन्न होती हुई महत्वाकांक्षा को पुष्ट कर सकता है। नये आनेवाले विद्यार्थियों को यह भवन विद्वत्ता की अभेय महत्ता से प्रभावित करता है; उसकी वृद्धिगत होती कल्पना को भव्यता का भास कराता है; और भवन की गुम्बजों में होनेवाली आवाज़ से उसके अनुभवहीन हृदय में गहरी व गम्भीर ध्वनि प्रकट होती है। इस भवन का विचार करते हुए एक भावी कवि-राज की कल्पना इस प्रकार उत्तेजित हुई थी कि क्षण-भर के लिए उसे शङ्का हुई :

"क्या शैलेन्द्र ? न हिम कहीं पड़ता; मंदाकिनी ? ना बहे।
श्रीमद्राज सयाजीराज नगरे यह हर्म्य किसका अरे ?"

फिर तुरन्त उत्तर सूझा—

"विद्यार्थीजन देख निश्चय हुआ, श्री शारदा जी बसें।"

इन पंक्तियों में हास्यजनक कृत्रिमता समाई है, तो भी बहुत-से विद्यार्थियों के हृदयों के भावों का उसमें प्रतिशब्द है।

इस भवन में सन् १९०६ ई० में लगभग तीन सौ विद्यार्थी परीक्षा में उत्तीर्ण होने के हेतु से आनन्द मना रहे थे।

उस समय बड़ौदा कालेज में विद्यार्थी पढ़ने के बदले या तो आनन्द उड़ाते या सपने देखा करते थे। मुख्याध्यापक स्व० क्लार्क को काम करने के शौक़ के बदले विद्यार्थियों में लोकप्रिय होना अधिक अच्छा लगता था। प्रोफेसर तापीदास काका बहुत बार तम्बूरे के गिलाफ-जैसे पायजामे पर दक्षिणी जूते चढ़ाकर गणित सिखाने का काम करते थे; और विद्यार्थी समझे या नहीं इसकी अपेक्षा क्लास में कचरा तो नहीं रह गया है, इसकी अधिक चिन्ता करते थे। सब उनको चाहते थे, और वे सब विद्यार्थियों को परिवार के सदस्य के समान चाहते थे। उनका 'You see, Youngman' प्रत्येक विद्यार्थी मज़ाक में नक़ल करते हुए एक दूसरे से बोलता था। दर्शनशास्त्र की तेजस्वी व भावनाशील प्रेरणा-मूर्ति प्रोफेसर शाह दिवङ्गत हो चुके थे। प्रोफेसर मसाणी कांगा कालेज में पाण्डित्य की खान माने जाते थे।

किन्तु जिनकी विद्वत्ता से विद्यार्थियों का गर्व नहीं समाता था वे थे अंग्रेजी के प्रोफेसर घोष। कालेज के लिए इनकी विद्या अधिक प्रतीत होने से कितने ही वर्षों से गायकवाड़ सरकार ने उन्हें अपने व्यक्तिगत कार्य में रोक रखा था; पर चार-छः महीनों में वे पुनः थोड़े समय के लिए कालेज में आ जाते थे। छोटे कद के नीचा सिर कर चलने वाले प्रोफेसर घोष विद्यार्थियों के साथ संसर्ग नहीं रखते थे और व्यक्तिगत लोकप्रियता की परवाह नहीं करते थे। वे इस प्रकार के 'नोट्स' लिख-

जाते थे कि जिससे विद्यार्थी सरलता से परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाते थे। एक समय कालेज में 'किस प्रकार का शासन अच्छा' इस विषय पर वाद-विवाद हुआ। घोष साहब ने सभापति का स्थान ग्रहण किया था। विद्यार्थियों ने ऐसा निश्चित मत दरशाया कि लोकशासनात्मक राज्य-तंत्र के अतिरिक्त किसी भी राज्यतंत्र को क्षण-भर के लिए भी भूमि पर रहने नहीं देना चाहिए। सभापति ने जरा उनका मज़ाक उड़ाया और 'नियंत्रित एकशासन' का पक्ष लिया, तब से विद्यार्थियों के मन से वे उतर गये। तब से '—पशु' की पदवी उन्हें सर्वसम्मति से प्राप्त हुई।

वङ्ग-भङ्ग के पहले विद्यार्थियों में दो पक्ष थे, एक सुधारक-पक्ष व दूसरा संरक्षक-पक्ष। कालेज के कितने ही अग्रगामी व होशियार विद्यार्थी प्रो० जगजीवनशाह की प्रेरणा से स्वातंत्र्यवादी हुए थे। कुछ विद्यार्थी बड़ौदे में नृसिंहाचार्य के पंथ के नेता छोटेलाल मास्टर के उपदेश से धर्मधुरंधर बन पुराने विचारों के संरक्षक बने थे। इन दो छावनियों के झगड़े पढ़ने में, भोजन करने में, खेल-कूद में, सम्मेलन में, भाषणों में, फीस माफ कराने में—सब जगह फैल गए थे। एक बार जापान पर वाद-विवाद हुआ तब प्रो० घोष को स्वातंत्र्यवादियों ने सभापति बनाया। सभापति ने सूत्र उच्चारित किया कि वर्णाश्रम-धर्म स्वतंत्रता के मार्ग में नहीं आता, और जापान का उदाहरण दिया। इस विचार का संरक्षकवादियों ने तालियों से स्वागत किया। स्वातंत्र्यवादी निस्तेज हो गए, और देशी राज्य की नौकरी से अच्छे व्यक्तियों की भी क्या दशा होती है, इसका दुःख मनाने लगे।

किन्तु ऐसे अवसरों के रहते हुए भी प्रोफेसर घोष के बारे में अनेक दंत-कथाएं प्रचलित थीं, और विद्यार्थी उन सब दंत-कथाओं को दृढ़ श्रद्धा से सत्य मानकर उनके शब्दों व आचरण को पूज्य-भाव से देखते थे।

इनमें की कितनी ही दंत-कथाएं जानने योग्य थीं।

वे जब पढ़ते थे तब पूरे अङ्क प्राप्त करते थे। उन्होंने 'सिविल'

सर्विस' की परीक्षा 'पास' की तब द्वेषी अंग्रेजों ने जान बूझकर घोड़े पर सवारी करने की परीक्षा में उन्हें नापास किया। वे तेईस भाषाएँ जानते थे। उनके घर पर बावन अलमारियाँ भरकर पुस्तकें थीं। वे रात के तीन बजे तक मुंह में 'सिगार' रख दीये के आसपास चक्कर लगाते हुए पढ़ते थे। यह सब सुनकर कोमल हृदय भय से घबरा जायं, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। फिर एक कथा फैली कि आबू पर रहने वाले किसी ऋषिराज ने उन्हें आशीर्वाद दिया है। संरक्षकवादियों की छाती डेढ़ बालिश्त फूल उठी। सब लोग कहने लगे कि उन्होंने सिगार छोड़ी, मांस-भक्षण छोड़ा, पतलून छोड़ा और वे सन्ध्या करने लगे। वे योग-सिद्धि के लिए प्रयत्न भी करने लगे। स्वातंत्र्यवादी अस्थिर होने लगे। कितने ही कहने लगे कि वे घंटों तक प्राणायाम करते हैं। उनके कितने ही शिष्यों ने उन्हें योगबल से जमीन से एक हाथ ऊपर उठते हुए देखा था। दंत-कथाएँ बढ़ती गईं।

बारीसल-परिषद् में वे जाकर आये और उन्होंने भाषण दिया। उन्होंने राष्ट्र-धर्म के सूत्र उच्चारित किये। कालेज के सब विद्यार्थी पागल बन गए।

यह बात फैली कि प्रोफेसर घोष बड़ौदा की नौकरी छोड़ते हैं और देश-सेवा करने के लिए कलकत्ता जा रहे हैं। तुरन्त ही कालेज में अर-विंद घोष की भक्ति के अतिरिक्त और कोई बात होती ही नहीं थी।

इस कालेज के पीछे के छात्रावास में लगभग नब्बे विद्यार्थी पांच से सात रुपये मासिक खर्च में सादा किन्तु भावनापूर्ण जीवन व्यतीत करने का यथासंभव प्रयत्न करते हुए रहते थे; और कालेज के अधिकारियों द्वारा तटस्थता धारण करने की कला हस्तगत किये जाने के कारण ये प्रयत्न भोजन में, गाने में, लगभग खुदे हुए 'सिंधिया' कोर्ट पर प्रिन्सि-पल द्वारा दिये गए 'भग्न रेकेट' व 'फ्लेनेल' तथा खेली हुई गेंदों से 'टेनिस' खेलने में और दृष्टि में आवें ऐसे सपने रचने में सफलता प्राप्त करते थे।

: ६ :

इस छात्रावास में रावबहादुर प्रमोदराय व माननीय जगमोहनलाल को लेकर भाड़े की गाड़ी आई। छात्रावास निर्जन दिखाई देता था।

'क्यों कोई दिखाई नहीं देता ?' प्रमोदराय ने प्रश्न किया।

'उस नौकर से पूछें'। ऐ-ऐ—'माननीय सज्जन ने जोर से आवाज़ दी। एक कमरे में से एक नौकर कंधे पर छः-सात धोई हुई धोतियाँ रखे हुए आ रहा था। वह पूर्ण तटस्थता से गाड़ी की ओर आया।

'सुदर्शन प्रमोदराय कहाँ है, पता है ?' प्रमोदयराय ने पूछा।

'सदु भाई ?'

'हाँ।'

'नये छात्रावास में रूम नं० बीस।' नौकर ने गुजराती में जवाब दिया।

'क्यों कोई दिखाई नहीं देता ?' जगमोहनलाल ने पूछा।

'प्रोफेसर घोष का भाषण है। सदुभाई वहाँ गये हैं।'

वे दोनों एक-दूसरे के सामने देखने लगे।

'चलो, रूम बताओ,' कह प्रमोदराय गाड़ी में से उतरे। पीछे से माननीय सज्जन भी उतरे। गाड़ी वहीं खड़ी की और दोनों नौकर के पीछे चले।

वह नौकर इन दोनों को नये छात्रावास के पहले मंजिल पर ले गया और बीस नम्बर का कमरा बताया। सामने बरामदे में चार कमरों के आठ लोहे के पलङ्ग पड़े थे। एक स्टोव, दो टेबल, दो ट्रंक, दो दीये और दीवाल पर एक प्रोफेसर शाह व दूसरा प्रोफेसर घोष का फोटो था। इतना सामान उस कमरे में था, पर आकर्षण करने वाली वस्तु तो टेबल पर पड़ी हुई पुस्तकों का ढेर था। दर्शन-शास्त्र, संस्कृत, इतिहास व साहित्य की पुस्तकें अव्यवस्थित रूप से पड़ी हुई थीं। पलङ्ग पर मिकेलेट की 'फ्रेन्च-विप्लव' व क्राफ्ट की 'यूनाइटेड स्टेट्स का इतिहास' नामी पुस्तकें पड़ी थीं।

'सुदर्शन के अतिरिक्त किसी और का यह टेबल हो नहीं सकता,' प्रमोदराय ने जरा गर्व से कहा।

'जबरदस्त पढ़नेवाला मालूम पड़ता है,' जगमोहनलाल ने भी पुस्तकों के संग्रह पर से उनके लेखकों की बुद्धि की कल्पना करते हुए कहा। 'रावबहादुर! तब राजाभाई के वहीं चलिए।'

'मैं तो यहीं बैठूंगा। मुझे रात को तो वापस जाना है।'

'जाना तो मुझे भी है। एक काम करिए। मैं राजाभाई के घर जाता हूँ और आप सुदर्शन को लेकर वहां आइए। हम लोग वहां एक साथ भोजन करेंगे व इस बहाने सुदर्शन व सुलोचना भी मिलेंगे। सुलोचना की मां भी सुदर्शन को देखना चाहती है।'

'अच्छा,' प्रमोदराय ने सहर्ष स्वीकार किया।

'उससे कहा क्या जाय?'

'लड़का होशियार मालूम पड़ता है,' माननीय महाशय ने कहा, 'यदि आप उसे समझा न सकें तो मुझे सौंप देना।'

'कैसे नहीं मानेगा!' प्रमोदराय ने आंखें निकालकर कहा।

जगमोहनलाल हँसे। 'लोगों को समझाना हो तो बैरिस्टर को कहना चाहिए।' प्रमोदराय भी हँसे व जगमोहनलाल गये।

प्रमोदराय कमरे में चारों ओर देखने लगे। एक कोने में भारत का नक्शा पड़ा था। एक खाने में सुपारी व सरौता था और लिखे हुए कागज़ के बंडल पड़े थे। ये कागज़ निकालकर प्रमोदराय देखने लगे। प्रत्येक बंडल पर सुदर्शन ने बारीक अक्षरों में विषय लिखे थे। विषय पढ़ते ही रावबहादुर आश्चर्यंकित हो गए।

एक—राष्ट्रभाषा का प्रश्न।

सर्वव्यापी 'बायकॉट'।

बॉयकॉट-प्रवृत्ति को अपनाने की योजना।

शारीरिक विकास

विदेशियों पर निगरानी....

रेवेन्यु-विभाग में जीवन व्यतीत किया हुआ होने के कारण इन विषयों को पढ़ने से रावबहादुर को पसीना आया। उन्होंने काग़ज़ों में देखा तो उनमें कोई निबन्ध नहीं था, भाषण नहीं थे, किन्तु योजना को कार्यस्वरूप देने के लिए क्या करना चाहिए, यह लिखा था। वे आखिरी बंडल को लेकर पढ़ने लगे। भारत में विदेशी कितने हैं, वे क्या करते हैं, उन पर निगरानी रखने के लिए कितने मनुष्यों की आवश्यकता है, निगरानी रखने वाले उस समूह की व्यवस्था कैसी होनी चाहिए, विदेशियों की अराष्ट्रीय-प्रवृत्ति को किस प्रकार रोका जाय, आदि सब उन काग़ज़ों में दरशाया गया था। उन्होंने चहुँओर देखा। स्वतः ब्रिटिश-साम्राज्य के नमकहलाल सेवक थे और उनका पुत्र राजद्रोही था! इसका परिणाम क्या होगा? क्या बुढ़ापे में लड़का मेरी सफेदी को बट्टा लगायगा? उनके मस्तिष्क में 'पीनल कोड' की अलग-अलग धाराएं घूमने लगीं।

इतने में दूर से आते हुए विद्यार्थियों की आवाज़ सुनाई दी, इससे उन्होंने काग़ज़ ठीक स्थान पर रख दिये और बाहर बरामदे में आकर बैठ गए। वे आज भाव से, वात्सल्य से पुत्र को सुधारने आये थे; पर पुत्र की लिखावट पढ़ उसे वह पहचान न सके। ऐसा भयंकर पुत्र अभी चला आ रहा है, यह विचार आते ही वे कांपने लगे। उन्हें पसीना छूटा, उसे वे पोंछने लगे। क्या उनका इकलौता बेटा भयङ्कर, विकराल, खूनी और क्रूर हो गया है? क्या वह क्रान्तिकारी हुआ है? क्या वह 'बम' बनाता होगा? 'राम! राम!' उनके मुंह से निकल गया।

दो-तीन लड़के ऊपर आये और रावबहादुर को खड़े हुए देख पूछने लगे, 'किससे मिलना है?'

'सुदर्शन को'

'सदुभाई आते हैं,' कह वे लड़के अपने-अपने कमरों की ओर गये।

दूसरे दो लड़के आ पहुँचे। एक ऊँचा, सशक्त लड़का था। उसका मुख तेजस्वी व प्रतापी था। दूसरा छोटा व सुन्दर दिखाई देता था।

रावबहादुर की दृष्टि में यह छोटा लड़का आया। क्षण-भर के लिए वात्सल्य ने उन्हें पागल बना दिया।

: ७ :

सुदर्शन छोटा पर सुंदर शरीर का था; सुंदर कहा जा सके ऐसा युवक था। वह गोरे रङ्ग था। उसके माथे पर बिना तेल लगाये हुए बाल बिखरे पड़े थे; उससे देखने वाले को बुद्धि की तेजस्विता की परख करने पर विलास दिखाई पड़ता था। उसके व्यक्तित्व पर लज्जा व संकोच की स्वाभाविक छाप थी। उसकी आँखें चंचल व तेज़ थीं, और मुख की ग्लानिदर्शक रेखाओं का वे बहुत बार विस्मरण कराती थीं। उसकी चाल का ढङ्ग आकर्षक था। उसे पहली बार दूर से देखने पर बड़े लड़कों को उसे 'लड़की' उपनाम देने की इच्छा होती थी; किन्तु निकट आने पर एक प्रकार की निश्चलता व प्रभावोत्पादकता उनकी दृष्टि में आती थी, और उपनाम देने की इच्छा जन्म लेने के पहले ही मर जाती थी।

उसने टोपी ऊँची रखी थी और कोट के बटन लगाये नहीं थे। उसकी धोती का छोर नीचे लटकता था। मैले दाक्षिणी जूते उसने ज्यों-त्यों पहने थे। उसकी वेश-भूषा से अत्यन्त ही तटस्थता दृष्टिगोचर होती थी।

उसने अपने पिता को देखा और शीघ्रता से वह आया। 'पिताजी, आप कहाँ से आये ?'

'मैं अभी ही आया। तुम कहाँ गये थे ?'

सुदर्शन ने पिता के सामने देखा। 'आज प्रोफेसर घोष का अन्तिम भाषण था। वे कल बड़ौदा छोड़कर जाने वाले हैं।'

'उन्होंने तो त्यागपत्र दिया है न ?'

'हाँ, राष्ट्रीयशाला में अध्यापक होकर जा रहे हैं।'

'ऐसा ! अच्छा, मुझे तुमसे कुछ काम है, इससे आया हूं ।'

सुदर्शन के मुख पर घबराहट दिखाई दी । 'क्या काम है ?'

'चलो, बाहर चलें, फिर कहूँगा ।'

एक क्षण के लिए सुदर्शन विचार-शून्य-सा मालूम पड़ा । तुरंत ही उसके मुख पर परिवर्तन हुआ । उसकी आँखें ऐसी हो गईं मानो स्वप्न देखती हों । उसकी मुखमुद्रा म्लान निश्चलता को प्राप्त हुई । मानो एकदम दूर से बोलता हो इस प्रकार उसने कहा, 'मैं अभी आया ।'

वह एकदम अपने कमरे में गया । 'पाठक,' उस कदवाले लड़के को उसने कहा 'पिताजी आये हैं और मुझे बाहर ले जाते हैं । मुझे देरी हो जाय तो प्रतीक्षा करना ।'

'वे कब जायंगे ?'

'कौन जाने, पर रात के ग्यारह के पहले तो मैं चाहे जैसे चला आऊंगा ।' सुदर्शन बाहर आया और प्रमोदराय पगड़ी पहन उसके साथ हुए । दोनों चुपचाप ज़ीना उतरकर कालेज की ओर गये । प्रमोद-राय क्षोभ का अनुभव करते थे । किस प्रकार बात करें, यह उन्हें सूझता नहीं था । अन्त में उन्होंने गला साफ कर कहा, 'जगमोहनलाल बेरि-स्टर यहां हैं ।'

'कब आये ?'

'मेरे साथ । उनकी सुलोचना यहां है ।'

'हां, मुझे जमना काकी ने बुलवाया था ।'

'क्या तुम गये थे ?'

'नहीं, मुझे समय नहीं था ।'

'वाह ! क्या ऐसा भी करना चाहिए ? देखो, इस समय हमें राजा-भाई के वहां भोजन करने जाना है ।'

'इस समय ?' जरा चिन्ताग्रस्त आवाज में सुदर्शन ने पूछा ।

'हां, तुम्हें सुलोचना को मिलना है । मुझे तुम्हारा विवाह उसके

साथ करना है।' रावबहादुर ने जरा प्रयत्न कर क्षोभ को जीता और कह डाला।

सुदर्शन के मुंह पर पुनः परिवर्तन हुआ। उसकी आंखें पुनः फिर गईं और मुखमुद्रा कड़ी हो गई।

'मुझे अभी विवाह नहीं करना है,' निश्चयात्मक आवाज़ में सुदर्शन ने कहा।

'विवाह करवाने की किसीको जल्दी नहीं है, पर विवाह कर डालना है।'

'पिताजी, अभी क्या जल्दी है ?'

'मैं वृद्ध होता जा रहा हूं।'

'पर मैं यह बला अभी कहां से लिपटाऊँ ?'

प्रमोदराय जरा अधीर हुए। 'पर जरा सुलोचना को मिलो तो सही। कोई अभी-के-अभी तुम्हें बांध डालने वाला नहीं है।'

'हां, उसकी मैं ना नहीं कहता,' सुदर्शन ने उत्तर दिया।

'और तुम बी० ए० हुए कि मुझे तुम्हें बम्बई भेजना है। मुझे तुम्हें आई० सी० एस० कराना है।'

सुदर्शन ने सिर हिलाया। 'मुझे सरकारी नौकरी नहीं करनी है।'

'तब क्या बैरिस्टर बनोगे ?'

'वह भी नहीं बनना है।'

'तब क्या हजामत करना है ?' प्रमोदराय चिढ़ गए। सुदर्शन चुप रहा। अपने पिता की उग्रता से वह दब जाता था। 'तुम्हें क्या करना है ?'

'मुझे एम० ए० होकर प्रोफेसर होना है।'

'छोटे रहने पर सब लड़कों का मास्टर बनने का मन होता है। तुम इस वर्ष बी० ए० हो जाओ, फिर सब विचार होगा', रावबहादुर ने यह बात बंद की। थोड़ी देर में उन्होंने दूसरी बातें प्रारंभ कीं। 'क्यों, कुछ पढ़ते भी हो या इस प्रकार भाषण ही सुना करते हो ?'

'पढ़ता हूँ। अभी परीक्षा में देरी है।'

'देरी क्या ? तीन महीने ही हैं। अच्छा जल्दी से पास हो जाओ, जिससे अपने जीते-जी तुम्हें ठिकाने लगा दूँ।'

सुदर्शन ने उत्तर नहीं दिया। पिता व पुत्र कालेज के सेंट्रल हाल के सामने आये।

'चलो, राजाभाई के यहां।'

'अच्छा, आप रात कहां रहेंगे ?'

'मैं तो रात की गाड़ी से जाऊंगा।'

'अच्छा', कह सुदर्शन ने निश्चिन्तता का निश्वास लिया।

दोनों किराये की गाड़ी में बैठकर राजाभाई के घर जाने के लिए रवाना हुए।

: ८ :

गाड़ी में पिता-पुत्र चुपचाप बैठे। रावबहादुर को बोलना सूझता नहीं था, और सुदर्शन को बोलना अच्छा नहीं लगता था। प्रमोदराय कितनी ही देर तक पुत्र के सामने देखते रहे। उन्होंने जो भयङ्कर 'नोट्स' पढ़े थे, क्या उनमें लिखे विचार इस सुकुमार बालक के मस्तिष्क में से निकले थे ?

क्या उनका पुत्र ऐसे षड्यन्त्र रच सकता था ? स्त्री इसके गले लिपटाये बिना वह कैसे सुधर सकता है ? अङ्गना के विलास-पाश के बिना यह पागल कैसे सीधा हो सकता है ?

सुदर्शन के मस्तिष्क में पिता के लिए, स्त्री के लिए, विलास के लिए स्थान नहीं था। श्रीयुत् घोष के हृदय में से निकले हुए शब्दों के स्मरण पर आरूढ़ होकर उसकी कल्पना राष्ट्रीय पराधीनता की पहेलियां सुलझाती थी, और उसके हृदय में विप्लवोत्सुक युग-प्रवर्तकों के हृदय में जलने वाली अग्नि जल रही थी।

दो

भावी वर-वधू

: १ :

राजाभाई बड़ौदा राज्य में पदाधिकारी थे, और उनका घर 'राव-पुरा टावर' के पास था। आजकल उस रास्ते पर जिस प्रकार के नाटक की 'सिनरी' के समान कामचलाऊ घर दिखाई देते हैं वैसा यह घर नहीं था, वह ऐसा दिखाई देता था मानो किसी सरदार की हवेली वान-प्रस्थाश्रम लेकर बैठी हो। उसकी पुराने ढङ्ग की बैठक में अर्वाचीनकाल का 'फर्नीचर' इस प्रकार का भास कराता था मानो कोई बुढ़िया बम्बई के ठाठ में निकली हो।

एक आरामकुरसी पर सुलोचना पैर-पर-पैर चढ़ाकर बैठी थी। धनाढ्य पिता की लाड़ली वह शानदार लड़की की वह पूरी कल्पना कराती थी। वह ऊंची और सुंदर थी; उसका रंग गोरा, लालिमारहित श्वेत था; और वह विचार में मग्न होने से संध्या के अन्धेरे में संगमरमर की मूर्ति का भास कराती थी। उसका मुख देखने वाले को 'पाऊडर' की शङ्का होती थी। उसकी आंखों में शैतानी, अभिमान व स्वच्छन्दता एक के पश्चात् एक चमकते थे। उसके हाथ व पैर लम्बे थे, इस प्रकार कि जिससे उसकी गति की छटा बढ़े, और शरीर की मुद्रा में विलास सूचित हो। एक हाथ उसने ठुड्डी के नीचे रखा था। उसने सिर खुला रखा था, और बाल की दो लटें संयम का त्याग कर गाल पर लटक रही थीं।

वह एक प्रख्यात धनाढ्य पिता की लाड़ली पुत्री थी। वह

'एलिफन्स्टन' कालेज में 'प्रीवियस' क्लास में पढ़ती थी। वह अंग्रेज़ी अच्छी बोलती थी और 'टेनिस' सुंदरता से खेलती थी। वह सुंदर थी, अभिमानी थी, जिद्दी थी। यह सब उसके व्यक्तित्व पर से स्पष्ट दिखाई देता था, और यदि न भी दिखाई दे तो भी उसे दिखाते ही रहने का उसका स्वभाव था।

माननीय जगमोहनलाल ने कहा था कि सुदर्शन भोजन करने आने वाला है।

उसके माता-पिता की योजना थी कि सुदर्शन के साथ उसका विवाह किया जाय और इस योजना के प्रति उसको आपत्ति थी। उसे एक आपत्ति नहीं थी, अनेकों आपत्तियां थीं। उसे बम्बई ही अच्छी लगती और बम्बई के ही लोग अच्छे लगते थे; और उनमें भी केवल धनाढ्य हो। बम्बई के बाहर आनंद भी नहीं और पैसा भी नहीं था; इससे वहां रहने वालों के प्रति उसे तिरस्कार था। बम्बई के बाहर सरकारी नौकरी के समान अधम धंधा करनेवाले के पुत्र के लिए उसकी यह पहली आपत्ति थी।

एलिफन्स्टन कालेज के अतिरिक्त और कहीं भी ज्ञान या संस्कार की प्राप्ति हो ही नहीं सकती, यह सिद्धान्त उस कालेज में फैले हुए वातावरण में से उसने स्वीकार किया था। बम्बई के बाहर बड़ौदा-जैसे देशी राज्य में, बड़ौदा-जैसे रद्दी कालेज में जो लड़का पढ़ता हो, उससे वह विवाह करे, क्या इससे बढ़कर और कोई अधमता हो सकती है ? यह दूसरी आपत्ति थी।

उसने जाति के कितने ही लड़कों से सुना था कि सुदर्शन गंवार है; वह केवल पढ़कर 'पास' होना जानता है; उसे न तो क्रिकेट और न टेनिस खेलना आता है। यह उसको सबसे बड़ी आपत्ति मालूम होती थी।

किन्तु इन आपत्तियों की परम्परा का यहीं अन्त नहीं होता था। वह मित्रों के साथ की बहुत शौक़ीन थी। उसे गड़बड़ी व स्वच्छन्दता

अच्छे लगते थे। विवाह करना वह पराधीनता में कदम बढ़ाना मानती थी। इससे ऐसे किसी भी कदम के लिए उसको बड़ी आपत्ति थी।

वह जब पति का विचार करती तब केकी रूख या गमन दलाल उसके मस्तिष्क में आता था।

केकी रूख दो घोड़ों की गाड़ी में कालेज आता था। टेनिस में उसके 'स्मैश' की बराबरी कोई नहीं कर सकता था। क्रिकेट में उसके 'बालिङ्ग' को कोई रोक नहीं सकता था। वह शानदार कपड़े पहनता था, और उसके बाल सुंदरता से उसके माथे पर जमे रहते थे। वह घोड़े पर बैठता था और सुलोचना के मन में होता कि यदि उसके समान पति मिले तो पूरा जीवन घोड़े पर बैठकर कूदने में ही व्यतीत हो जाय।

गमन दलाल अलग प्रकार का था। वह काला था तो भी ऊंचा, पतला और गठीला था। वह क्रिकेट नहीं खेलता था, केवल टेनिस खेलता था, पर उसकी ज़बान में जादू था। वह हंसता, बोलता और सब आनन्दित हो जाते थे। वह एक आनन्दप्रिय व्यक्ति के समान टेढ़ी टोपी लगाता था। उसका धोती पहनने का ढंग आकर्षक था। वह कालेज की प्रत्येक गड़बड़ में अग्रणी था। बम्बई के प्रत्येक नाटक का वह हिमायती था। उसके लिए जीवन एक अनन्त हास्य-जैसा था।

सचमुच, ऐसे व्यक्तियों को छोड़ क्या उसे उस गँवार से विवाह करना होगा? वह अंधेरे में भी हंसी। एक मज़ा होगा। इस मूर्ख के साथ की हुई बातचीत से 'टर्म'-भर मज़ाक करने का मजा आयगा।

'पपा' यदि जबरदस्ती विवाह कर दें तो? यह कैसे बन सकता है? उसने जिद में ओंठ-पर-ओंठ चढ़ाया। प्रेम के बिना वह विवाह न करेगी। गाय-जैसी भले ही दूसरी लड़कियां हों, पर वह तो वैसी न होगी। वह अपने 'पपा' को पहचानती थी, वे उसकी इच्छा के बिना कभी कुछ नहीं करते थे।

नीचे किराये की गाड़ी खड़ी थी। वह सुदर्शन—सदुभाई आया।

उसके मुख पर तिरस्कार का भाव था, तो भी अपरिचित युवक को, जिसे सब उसका पति बनाना चाहते थे, मिलते समय उसे जरा क्षोभ हुआ।

जीने पर पैर की आहट सुनाई दी। उसने सिर पर कपड़ा ओढ़ लिया। कमरे में एक मोटे सज्जन आनन्द के उभार के साथ जल्दी से आये और उन्होंने हाथ बढ़ाया। 'क्यों बहन सुलोचना !'

सुलोचना जरा गर्व से खड़ी हुई—'कौन, प्रमोद काका ?'

सुलोचना क्षण-भर के लिए विचार में पड़ी, कमरे के दरवाजे में खड़ा हुआ लड़का ही सुदर्शन था। इतने में जगमोहनलाल व राजाभाई आ पहुंचे। 'हलो सदुभाई !' माननीय महाशय ने हाथ बढ़ाया। सुदर्शन ने जरा हिचकिचाहट से हाथ मिलाया। 'अन्दर आओ। क्यों रावबहादुर—'

और बड़े लोग बातों में व्यग्र हो गए। 'रावबहादुर ! आइए, अन्दर बैठें। मुझे कुछ बात करनी है,' माननीय महाशय ने कहा, 'बच्चो ! तुम यहां बैठो। याद है सुलोचना ? सदुभाई व तुम माथेरान में मिले थे—उस समय प्रमोद काका आये थे ?'

सुलोचना ज़रा मिज़ाज़ से सिर ऊंचा कर हंसी। 'मैं तो उस समय लगभग चार वर्ष की होऊंगी।'

'तब पुरानी पहचान ताजी करो।' रावबहादुर ने भावी पुत्रवधू की ओर प्रसन्नता से देखकर कहा।

जब बड़े लोग अन्दर गये तब सुलोचना ने सुदर्शन की ओर दृष्टि डाली।

पहले उसकी हास्यवृत्ति उत्तेजित हुई। यह सुदर्शन ! यह लड़का—जिसकी प्रशंसा उसके माता-पिता करते थे वह ! यह उसका स्वामी बनने का इच्छुक, उमंगों से परिपूर्ण पति है !

इस अभिमानपूर्ण दृष्टि से उसने सुदर्शन को देखा। तटस्थता से ऊंची रखी हुई टोपी, पांच में से तीन बचे हुए बटनवाला 'चेक'

मैला कोट, खुले छोरवाली मोटी धोती, काले पड़े हुए दक्षिणी जूते ! यह तटस्थता, यह गंदगी, यदि उसके नौकर में भी होती तो जल्दी से उसे वह नौकरी से अलग कर देती ।

सुदर्शन ने हाथ मिलाने के लिए हाथ बढ़ाया—यह ग्राम्यता उसने देखी; उसके मुख की हास्यविहीन जड़ता उसने ध्यान से देखी । मुख ठीक कहा जा सकता है—पर सुन्दर तो नहीं ।

सुदर्शन उसकी ओर निस्तेज व नीरस आंखों से देखता रहा । स्त्री का उसे आकर्षण नहीं था, विवाह को वह त्याज्य मानता था। जितने रस से शुकजी ने रम्भा को देखा था, लगभग उतने रस से उसने देखा ।

दोनों थोड़े क्षुब्ध हुए । मिज़ाज़ी बाला व तटस्थ युवक, दोनों में से एक को भी चैन नहीं पड़ी ।

'क्या आप सीनियर बी० ए० में हैं ?'

'हां ।'

सुदर्शन उकताकर चारों ओर देखने लगा । बड़े लोग ऐसे प्रसंग क्योंकर उपस्थित करते होंगे ? 'आप प्रीवियस में हैं ?' उसने आखिर पूछा ।

'हां, आप टेनिस खेलते हैं ?'

'नाममात्र को ही । मुझे खेलना नहीं आता ।'

सुलोचना इस निर्जीव वचन के कहने वाले को तिरस्कारपूर्वक देखती रही ।

'क्रिकेट ?'

सुदर्शन ने म्लानवदन से सिर हिलाया ।

'आपका जीवन कैसे कटेगा ?' ज़रा अपमानपूर्ण हास्य से सुलोचना ने पूछा ।

सुदर्शन इस प्रश्न के पीछे का अपमान पहचाना । बड़ौदा कालेज में रहकर स्त्री-सन्मान के अधिक पाठ वह पढ़ा नहीं था । उसकी भौंएं मिल गईं । उसकी तटस्थ दृष्टि में तेज आया ।

'मेरे जीवन में खेल-कूद को स्थान नहीं है,' जरा गुस्से में उसने कहा।

सुलोचना उसके स्वर में व मुख पर हुए परिवर्तन को देख पहले तो चकित हुई, फिर ऐसे आडम्बरपूर्ण वाक्य पर उसे हंसी आई।

'आप 'बी० ए०' होकर क्या करेंगे ?'

'मैं यह विचार करता ही नहीं,' हठी बनकर सुदर्शन ने कहा।

'तब यह विचार कौन करेगा ?'

'वह—मेरी मां—'व्याकुल होकर सुदर्शन ने कहा। वह इस लड़की से उकता गया था।

'मां' शब्द सुनकर सुलोचना हंसी न रोक सकी। वह मुंह पर हाथ रख हंसने लगी। इतना बड़ा लड़का वधू को लिवाने आया है और माता की अनुमति बिना विचार तो कर नहीं सकता। हास्य में तिरस्कार था—निरंकुश स्वभाव का अभिमान उसमें दिखाई देता था। सुदर्शन के माथे पर बादल घिर आया। घनघोर आकाश में जिस प्रकार बिजली चमकती है उस प्रकार उसकी आंखें चमकने लगीं।

'आप क्योंकर यह सब पूछती हैं ?' उसने उकताकर कहा, 'आपको सब हंसने-लायक ही मालूम पड़ेगा। ये सब हम लोगों को क्यों यहां छोड़ गए, क्या आप जानती हैं ?'

यह प्रश्न इतनी प्रभावशीलता के साथ उपस्थित हुआ कि सुलोचना के मुख का हास्य जाता रहा—'नहीं।'

'आपके व मेरे पिताजी हम लोगों का विवाह करना चाहते हैं।'

उत्तर में सुलोचना के कंधे ऊंचे हुए। 'ऐसा ?'

'पर मुझे एक वचन चाहिए।'

'क्या ?'

'यदि वचन का पालन करो तो कहूं।'

'कहो तब पालूं।'

'बहन ! मुझे विवाह नहीं करना है। आप वचन दीजिये कि आप स्वीकार न करेंगी।'

एकदम सुलोचना ने ऊंचा देखा। बिना संवारे हुए बालों में शक्ति का संचार हुआ; आंखों में जोश की ज्योति जागृत हुई; मुख पर उसे जो जड़ता दिखाई दी उसने गाम्भीर्य का स्वरूप धारण किया था। एकदम उसे होश आया कि जितने तिरस्कार से वह सुदर्शन को देखती थी वह भी उतने ही तिरस्कार से उसे देखता था।

'क्यों ?' आश्चर्यान्वित हो सुलोचना ने एकदम पूछ लिया।

'मुझे विवाह नहीं करना है।'

सुलोचना को फिर से हंसी आई। यह लड़का ज़रा बहका हुआ मालूम पड़ता है। उसने हंसी रोककर पूछा—'क्यों ?'

'मां की आज्ञा नहीं है।' सुदर्शन ने मानपूर्वक धीरे से कहा।

'मां ?—आपकी माता आपका विवाह करना नहीं चाहतीं ?'

'हां—मेरी मां ?....मेरी माताजी नहीं।' सुदर्शन के मुख पर ग्लानि आई, और उसकी आंखें मानो दूरी पर पर देख रही हों उस प्रकार बाह्य अन्धकार पर स्थिर हुईं। 'मेरी भारतमाता।' सुदर्शन की आवाज़ में पूज्य-भाव था।

पर सुलोचना के निर्लज्ज हास्य से यह पूज्य-भावना कलङ्कित हुई—'क्या आप देश-भक्त हैं ?' सुलोचना ने जीभ निकालकर उपहास करते हुए पूछा।

'नहीं, मैं अपनी मां के चरण की रज हूँ।'

'क्या आप इण्डिया को मां कहते हैं ?'

'आपको जो इण्डिया मालूम पड़ती है, वह मेरी मां है। क्या आप मुझे एक वचन देंगी ?'

जरा तिरस्कार से सुलोचना ने एकदम पूछा, 'क्या ?'

'चाहे जो कुछ हो पर मुझे स्वीकार न करें।'

'हां, यह वचन देती हूं।'

सुदर्शन ने कहा, 'हम दोनों ब्याहने के लिए पैदा ही नहीं हुए हैं।'

'वह किस प्रकार ?'

'मैं देख सकता हूं।' आप शानदार व शौकीन हैं। मैं अल्पबुद्धि व वैरागी हूँ। आपके अन्तःकरण में मां के लिए स्थान नहीं है, मेरे अन्तःकरण में मां के अतिरिक्त और किसीको स्थान नहीं है। हम दोनों एक नहीं हो सकते।'

'धन्यवाद', जम्भाई लेकर सुलोचना ने कहा और वह हंसी।

'अब हम दूसरी बात करें।'

: २ :

राजाभाई ने तो बहुमूल्य बहनोई के मान में अतिथि-सत्कार की हद कर दी थी। उन्होंने चौक पूरकर पीढ़े रखवाये थे; अगरबत्ती की सुवास से मानो वातावरण में नशा हो ऐसा मालूम पड़ता था। पीतल के चमकते हुए 'वॉलसीट' दीये स्थान-स्थान पर प्रकाश डाल रहे थे।

माननीय जगमोहनलाल प्रसंग के उपयुक्त घर, जाति व देश से सम्बन्धित बातें कर रहे थे; तीक्ष्ण दृष्टि से सुदर्शन के रहन-सहन का निरीक्षण करते थे, और थोड़ी-थोड़ी देर में उसे बीच में बोलने का निमन्त्रण भी देते थे।

जगमोहनलाल मनुष्य के स्वभाव व शक्ति के गहरे अभ्यासी व परीक्षक थे। उन्हें सुदर्शन की अव्यवस्थित वेष-भूषा में तटस्थता दिखाई दी, गंदगी नहीं मालूम पड़ी। यह कोमल, बुद्धिशाली व अल्प-भाषी लड़का उन्हें पसंद आया। उन्हें विश्वास था कि जरा प्रोत्साहन, जरा संस्कार और जरा अच्छी सङ्गति से मिले तो वह हीरा चमक उठेगा। उसके साथ अधिक बातें कर उसके स्वभाव व विचारों से अधिक परिचित होने की उनकी इच्छा हुई। उन्होंने बात बदल दी।

'आजकल गहरा अध्ययन करने की किसको फुरसत है ? देखो, दीनशा-वाच्छा व गोखले कितने अध्ययन के पश्चात् आगे आये ? और आज तो हमारे सदुभाई भी राजनीतिज्ञ बन गए हैं', कहकर वे हंसते हुए सुदर्शन की ओर देखने लगे। 'क्यों, सदुभाई, सच है न ?'

नीचा सिर कर चुपचाप बैठा हुआ सुदर्शन इस सम्बोधन से जरा घबराया व शरमाया; किन्तु बड़े परिश्रम से तुरंत क्षोभ छोड़कर उसने उत्तर दिया—'देश-भक्त भक्ति से होते हैं, ज्ञान से नहीं।'

'याने वाच्छा व गोखले देश-भक्त नहीं हैं ?' जोर से हंसकर माननीय महाशय ने पूछा।

'ज्ञान-मार्ग से योगी अवश्य हो सकते हैं, पर भक्त भक्ति से ही हो सकते हैं।'

'याने मंजीरे लेकर "वंदेमातरम्" गाने से ही क्या देश का उद्धार होता है ?' माननीय महाशय प्रमोदराय की ओर फिरे। 'ये देखिए आजकल के देशोद्धारक !' वे ज़ोर से हंसे।

'यह तो सब मानते हैं कि "वंदेमातरम्" का गीत गाया कि अंग्रेज़ लोग देश में से भाग गए।' रावबहादुर ने कहा।

'It is stupid, यह मूर्खता है', माननीय महाशय ने कहा। "ब्रिटिशों की सहायता के बिना आपसे क्या हो सकता है ? सदुभाई ज़रा विचार करो, मुझे व तुम्हें शिक्षा किसने प्रदान की ? देश में शांति किसने स्थापित की ? यह नई स्वदेश-भक्ति किसने जागृत की ? बोलो सदुभाई !'

सुदर्शन को ऐसा वाद-विवाद अच्छा नहीं लगता था; तो भी उसे उत्तर तो देना ही पड़ा। 'यदि आप यह कहते हैं तो काकाजी, मैं पूछता हूं, देश को दरिद्र किसने किया ? मुस्लिम काल की समृद्धि का हरण किसने किया ? अपने ही देश में हमें निराधार किसने बनाया ?—'

'आप लोगों ने क्योंकर अंग्रेज़ों को आने दिया ?' प्रमोदराय ने बीच में कहा। 'सदुभाई,' माननीय महाशय ने हंसकर कहा,—'That's

not the point, यह बात नहीं है। पर अंग्रेज़ों को निकालने से क्या लाभ है? और यदि लाभ भी हो तो क्या वे निकलनेवाले हैं? आप सब व्यावहारिक बुद्धि नहीं रखते। राजनीति का पहला सूत्र व्यावहारिकता है। इस समय हम लोग क्या कुछ कर सकते हैं? और यदि कुछ कर भी सकें तो भी जब तक हम स्वतः निर्जीव हैं तब तक लाभ क्या होगा?'

'जगमोहन भाई! श्रीखण्ड मंगाऊं?' राजाभाई ने पूछा और बातों का सूत्र टूट गया। सुदर्शन चुपचाप खाने लगा। सुलोचना को राजनीति के प्रति तिरस्कार था, इससे वह आगामी 'टेनिस टूर्नामेंट' का विचार करती रही।

: ३ :

सब भोजन कर चुके। माननीय जगमोहनलाल की पत्नी गौरी बहन तो राजाभाई की स्त्री के साथ बातचीत करने लगी, सुलोचना सामान बांधने में लगी, और पुरुषवर्ग बैठक में बैठा। सुदर्शन एक कोने में बैठ अपने विचार करने लगा।

'सदुभाई', माननीय महाशय ने कहा। सुदर्शन ने चौंककर सिर ऊंचा किया, 'बी० ए० होकर तुम्हें क्या करना है?'

'अभी कुछ निश्चित नहीं हुआ है?'

'मुझे इसको सिविल-सर्विस के लिए भिजवाना है।' प्रमोदराय ने कहा।

'पर तुम्हारी क्या इच्छा है?' माननीय महाशय ने पूछा।

'मैंने कुछ निश्चय नहीं किया है।'

'यदि तुम सिविल-सर्विस में गये तो फिर तुम्हारे देश का उद्धार कैसे होगा?' जगमोहनलाल ने कटाक्ष किया।

'सरकारी नौकर ही देश का सच्चा भला करते हैं।' अपने पुत्र को

कलक्टर बनाने की अकांक्षावाले प्रमोदराय ने कहा।

'पर सदुभाई तो कुछ और ही विचार करते हैं।'

• 'क्या ?' प्रमोदराय ने पूछा।

'बोलो, सदुभाई, क्या विचार किया है ?'

'अभी तो मैं एक ही वस्तु का विचार करता हूँ। भारतमाता की सेवा के अतिरिक्त मैं और कुछ न करूंगा।'

जगमोहनलाल हँस पड़े। प्रमोदराय के चेहरे पर जरा गुस्सा दिखाई पड़ा।

'सब लड़के छुटपन में ऐसी ही बातें करते हैं।' माननीय महाशय ने हँसना खतम होने पर कहा, 'पर सदुभाई, बालपन के सपनों और बड़ी अवस्था के अनुभवों में ज़मीन-आसमान का अन्तर होता है। पांच वर्षों के पश्चात् तुम्हारे ये विचार तुम्हें हास्यजनक मालूम पड़ेंगे। पहले अपना भला करो, फिर देश का। छुटपन में सपने देखने से किसी का भला नहीं हुआ है।'

सुदर्शन चुप रहा। उसे माननीय जगमोहनलाल का दृष्टि-बिन्दु विषैली हवा के समान पीड़ित कर रहे थे।

और माननीय महाशय के पतवार के अनुसार बातचीत का जहाज़ अलग दिशा में जाने लगा।

: ४ :

बम्बई की गाड़ी छूटने का समय हुआ। 'सुलोचना, सदुभाई को बम्बई आने को तो कहो।' माननीय महाशय ने पुत्री को शिष्टाचार सिखाया।

'सदुभाई !. Do come positively (अवश्य आना)।' तिरस्कारपूर्ण तटस्थता से सुलोचना ने कहा।

'परीक्षा के लिए आओ तब हमारे ही यहां उतरना।' गौरी बहन

ने अपनी ओर से शिष्टाचार किया।

'और रावबहादुर, बन सके तो आप भी आइए।'

'मुझे तो 'केज़वल लीव' नहीं मिल सकती, तो भी देखूंगा।'

'अच्छा, सीटी बजी।'

'अच्छा, नमस्ते...।' गाड़ी रवाना हो गई—और मानो बुरे सपनों के समान जगमोहनलाल द्वारा निर्मित वातावरण सुदर्शन को जाता हुआ मालूम पड़ा। ट्रेन के जाने पर प्रमोदराय ने सुदर्शन की ओर देखा—'सुदर्शन, मैं जाता हूँ, पर जगमोहन भाई ने जो कुछ कहा उस पर विचार करना, और कुछ पागलपन हो तो निकाल डालना।'

सुदर्शन ने उत्तर नहीं दिया।

'सुलोचना के साथ अब तुम्हारी सगाई कर देंगे।'

सपने में से जागा हो, इस प्रकार सुदर्शन पिता की ओर देखने लगा।

'मुझे विवाह नहीं करना है,' उसने कहा।

'विवाह किये बिना कोई रहा है कि तुम रहोगे?' प्रमोदराय ने जरा आंखें निकालकर कहा—'खबरदार, यदि ऐसा मूर्ख बना।'

'मुझसे विवाह तो नहीं हो सकता।'

'क्यों?' रावबहादुर ने अधीरता से पूछा।

'मुझे अपनी मां की सेवा करनी है।'

'सदु! यह तुम्हारा पागलपन मैं जानता हूं। यह मेरे सामने नहीं चलेगा,' प्रमोदराय ने गरम होकर कहा। 'अधिक गड़बड़ करोगे तो घर से बाहर निकाल दूंगा।'

सुदर्शन जरा हंसा। 'पिताजी! बहुत चीज़ें घर व बाहर की अपेक्षा अधिक कीमती होती हैं।'

'क्या तुम्हारी देश-भक्ति?'

'नहीं, मेरी मां की सेवा।'

'मूर्ख! मूर्ख! इसके सिवाय और कुछ बोलना नहीं सूझता? कहां मैं सरकारी नौकर व कहां तू मेरा पुत्र!'

'आप सरकार के नौकर हैं, यों मानते हैं, पर सचमुच तो आप मां के नौकर हैं।'

'मेरे यहां ये सब बातें नहीं चलेंगी। मैं सरकार का नमक खाता हूँ,' उग्रता से रावबहादुर ने कहा।

'पिताजी! सरकार नमक विलायत से नहीं लाती। मां का नमक तो मां के पुत्र खाते हैं।'

'अच्छा, बहुत हुआ।'

सुदर्शन चुप रहा और थोड़ी देर में रावबहादुर अपनी गाड़ी में बैठकर चले गए।

बम्बई जानेवाली रेलगाड़ी में माननीय जगमोहनलाल सुलोचना के साथ बातें करने लगे।

'बेटी, क्यों, सदुभाई पसंद आया?'

'हां ठीक है,' नाक सिकोड़कर सुलोचना ने कहा। उसकी आवाज़ की कठोरता सुनकर माननीय महाशय ने सिर ऊंचा किया, और पुत्री के मुख पर इकट्ठा हुआ विरोध देखा। 'उसके साथ तुम्हारी सगाई करनी है,' उन्होंने कहा।

'Nothing of the kind' (ऐसा कुछ नहीं) बहुत ज़ोर के साथ माननीय महाशय की पुत्री ने उत्तर दिया। 'ऐसे व्यक्ति से मैं विवाह करूं?' सुलोचना ने कंधे ऊंचे किये।

'क्या बुरा है?' गौरी बहन ने पूछा, 'तुझे तो बम्बई के झपके ने चौंधिया दिया है।'

'यह लड़का क्या पढ़ता है, यह मैंने देखा। होशियार है, परिश्रमी है, सीधा है, देखने में अच्छा है। और तुझे क्या चाहिए?'

'आप इतने खुश हो गए हैं, तब मैं क्या कहूं?' तिरस्कार से लाडली पुत्री ने पूछा।

'कुछ भी नहीं, उसके साथ विवाह कर लेना चाहिए।'

'मैं विवाह नहीं करूंगी।'

'It's idiotic (यह मूर्खता है)। अपनी जाति में ऐसा लड़का है कहां ?'

'मुझे विवाह करने का जरा भी शौक नहीं है,' सुलोचना ने हंस कर कहा।

'मुझे तुम्हारा विवाह करवाने का शौक है। फिर तो हुआ ?'

'पर उसे करूंगी क्या ? जरा कुछ भी हुआ कि मां को पूछने जाता है।'

'वह तो पागलतापूर्ण क्षणिक देश-भक्ति की हवा है, कल बंद हो जायगी। जो लड़का छुटपन में ऐसा होता है वही बड़ा होने पर शैतान हो जाता है।'

'पपा ! मुझे तो बिलकुल पागल मालूम पड़ा।'

'तुझे तो एलिफन्स्टन कालेज ने बिगाड़ रखा है,' गौरी बहन ने कहा।

'मुझे पढ़ाया किसलिए ?' पुत्री ने लाड से जवाब दिया।

'सुलोचना, अब बहुत बातें हो चुकीं,' निश्चयात्मक वृत्ति से मुट्ठी हिलाते हुए जगमोहनलाल ने कहा, 'इस कान से सुन या उस कान से, पर सदुभाई से विवाह किये बिना गति नहीं है।'

'यह तो मान जायगी,' गौरी बहन ने पति का निश्चय देख धीरे से कहा।

'मानना ही पड़ेगा,' माननीय महाशय ने कहा। जगमोहनलाल विचार में पड़े; सुलोचना का विचार करने पर सुदर्शन का विचार किया, उसका विचार करने पर उसके सिद्धान्तों का विचार किया।

अभी तक वे किसी विप्लववादी के संसर्ग में नहीं आये थे। फीरोज़-शाही राजनीति को सार्वजनिक जीवन की अन्तिम सीढ़ी मानने के कारण उन्होंने विप्लववाद को समझने की परवाह नहीं की थी। पागल लड़कों को बदमाश लोग बहकाकर होली का नारियल बनाते हैं यही रहस्य उन्हें नये प्रकटित हुए राष्ट्रवाद में दिखाई देता था।

किन्तु सुदर्शन में उन्होंने विप्लववाद सदेह देखा। इस लज्जाशील लड़के के मानस में उन्होंने भयङ्कर वस्तुएं छिपी हुई देखीं। यदि ऐसे लड़के पैदा हुए तो सैकड़ों वर्षों की अशान्ति के पश्चात् जो शान्ति व व्यवस्था देश में स्थापित थी, उसका क्या होगा? क्या पूरे देश व समाज में क्रान्ति का प्रसार होगा? क्या वह ब्रिटिश-साम्राज्य को हिला सकेगी?

ब्रिटिश-साम्राज्य अत्याचारपूर्ण था—उसमें काले और गोरे का भेद किया जाता था; किन्तु उस साम्राज्य के बिना व्यवस्थित प्रगति असंभव थी, और उस साम्राज्य की सच्ची अधिकारिणी उस साम्राज्य की उदार, न्यायप्रिय व प्रजातन्त्र की भक्त अंग्रेजी प्रजा थी। उस साम्राज्य की रक्षा के बिना शान्ति, प्रगति या प्रभाव किसीकी भी प्राप्ति नहीं हो सकती। उसके बिना अलग-अलग जातियां इकट्ठी कैसे रह सकती हैं, धार्मिक झगड़े कैसे शान्त हो सकते हैं, और प्रजातन्त्र की भावना कैसे प्रकट हो सकती है? उसके बिना अफगान आ जायं, रशियन आ जायं, और अहमदशाह अबदाली व नादिरशाह द्वारा किया गया अत्याचार फिर से होने लगे।

—और समाज की प्रगति कैसे हो सकती है? अंग्रेज़ी शिक्षा ने ज्ञान-चक्षुओं को खोल दिया है; अंग्रेज़ी संस्कार ने समानता व स्त्री-स्वातन्त्र्य का पाठ पढ़ाया है। इस संस्कार के बिना भारत अधोगति से कैसे बच सकता है?

ऐसी तूफानी लहरें ज्यों-त्यों हृदय में समाकर माननीय जगमोहन-लाल सोने के लिए लेट गए।

: ५ :

घबराहट से अस्वस्थ सुदर्शन स्टेशन से वापस आया। उसके सपनों को माननीय जगमोहनलाल ने भङ्ग किया था। जिस सृष्टि को

उसने रचा था उसमें विनाशक भूकम्प हो रहा था।

भारतवासियों की देश-भक्ति पर और विदेशियों के प्रति उनके क्रोध पर उसने अपनी सृष्टि रची थी। प्रत्येक भारतीय भारत माता का भक्त था या होगा, और प्रत्येक भक्त माता की स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए विदेशी संस्कार व सत्ता का विरोधी बनेगा—इन निश्चल सिद्धान्तों के विरोध रूप में माननीय महाशय उसे दिखाई दिए। अपने पिता की राज-भक्ति को वह पुराने जमाने की अवशेष मानसिक वृत्ति मानता था, इससे उसे उसकी परवाह नहीं थी; पर फीरोजशाह व उसके अनुयायियों के मितवाद को वह द्रोहरूप मानता था। बड़े होने व सार्वजनिक जीवन की सत्ता अपने हाथ रखने के लिए वे राष्ट्रवादियों का विरोध करते थे, ऐसा उसका दृढ़ मन्तव्य था। पर फीरोज़शाही सम्प्रदाय का प्रतिनिधि अभी तक उसने आंखों से देखा नहीं था, सो आज देख लिया। अंग्रेज़ी वेष-भूषा, अंग्रेज़ी रीति-रिवाज़, अंग्रेज़ी भाषा की दासता, ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति प्रेम, भारत-माता में अश्रद्धा आदि पराधीनता की वृत्ति के सब अङ्ग उसने जगमोहनलाल में मूर्तिमान् देखे; और उनकी आत्म-श्रद्धा देख उसकी अपनी श्रद्धा डावांडोल होने लगी। इससे उसके हृदय में क्रोध व द्वेष की अग्नि धधकने लगी।

'क्या ऐसे लोग अंग्रेज़ों की सहायता करेंगे? क्या क्रान्तिकारियों के प्रयत्न वे निष्फल करेंगे?' उसने घबराकर सिर ऊंचा किया। चंद्र के प्रकाश में कालेज के गुम्बज चहुं ओर प्रभाव के संस्कार का प्रसार कर रहे थे। इसका असर उसके हृदय पर हुआ, वह हट न सका।

उसे याद आई कि मध्यरात्रि में भीमनाथ के तालाब पर उसके सहपाठी इकट्ठे होने वाले थे, वहां उसे जाना था; उसके द्वारा रची हुई सृष्टि को माननीय जगमोहनलाल ने भङ्ग कर दिया था। उसे मालूम पड़ा कि इस समय देश-भक्ति के जोश से खिंचकर उसके जो मित्र बड़ौदा आये थे उनसे मिलने के लिए वह अयोग्य था; उसकी सम्पूर्ण योजना व्यर्थ थी, उसके स्वदेशबन्धु कायर थे; उसके देश का भविष्य अन्धकार-

मय था....वह सिर नीचा करके सीधा ही चला। वह रोना चाहता था, किन्तु रो नहीं सका।

अपनी निर्बलता का भास होने पर वह काँप उठा। बालपन से उसे देश की लगन थी—ऐसी इच्छाएं जो किसीको न होतीं, ऐसे विचार जो किसीके मन में न आते—उसके मन में आते थे। कितने ही समय से वह राष्ट्रीय नेताओं की गलतियां देख सकता था और बड़ी-बड़ी समस्याओं को सरलता से सुलझा सकता था, और धीरे-धीरे डरते-डरते उसे विश्वास होने लगा था कि भारत-माता का स्वातन्त्र्य सिद्ध करने के लिए उसे महामाया ने जन्म दिया था।

इस समय अश्रद्धा का बादल आने से यह विश्वास कम हो गया, और उसे जीवन के झरने सूखते हुए मालूम पड़े।

'मां-मां! क्या इतने समय तक मैं मूर्खता में ही पड़ा था? मां, अपनी सेवा क्या मुझे न करने दोगी?'

एकदम अपनी निर्बलता के प्रति उसे क्रोध हुआ। वह निर्जीव मनुष्यजंतु के समान पराजित होता था।

'क्या मेरा पुण्य समाप्त हुआ? मेरी मां—आर्यों की देवी—जगत्-जननी—पराधीनता में, दुःख में, इस प्रकार पड़ी रहे—मेरे शरीर में प्राण रहने पर भी?' उसने मान लिया था कि भारत माता उसकी सेवा के लिए आतुर और उसके प्रयत्नों की प्रतीक्षा करती हुई वहां बैठी थी। उसकी इस अश्रद्धा व द्रोह से उसे क्या वेदना होती होगी?

'मां! मां! तेरा क्या होगा?' कह वह कालेज-हाल की सीढ़ियों पर बैठ गया। 'माँ! माँ!' वह चिल्लाने लगा........।

उसकी आंखें निस्तेज हो गईं....और क्षण-भर में मान व भय से फैल गईं...। जिन सीढ़ियों पर वह बैठा था उसके सामने एक खम्भे पर सूर्य की धूप व छाया से काल नापने का यन्त्र था। उस स्तम्भ के पास कोई हिला....सुदर्शन की श्वास रुँध गई.......।

वहां फैली हुई चांदनी के जादू-भरे प्रकाश में—कालेज की छोटी-

बड़ी छाया द्वारा रचित तेज व छाया के अद्‌भुत मोहजाल में एक रूप—चन्द्र-किरणों का बना हुआ व प्रकाशमान होने पर भी मानो पार्थिवता में मोहक हो ऐसा—वहां से आगे आया। उसकी तेजस्वी मुखमुद्रा में देवी या दयिता के ही देह में दिखाई देनेवाली मोहपूर्ण अस्पष्टता थी।

सुदर्शन उसकी ओर पागल के समान देखने लगा; उसका हृदय घबराहट से धड़कने लगा।

कौमुदी के जलधि में से सागर-कन्या लक्ष्मी आये उस प्रकार एक स्त्री उसकी ओर चली आई। उसका शरीर सुन्दर था, तो भी मानो निर्जीव मानवता के अल्प माप के परे हो ऐसा दिखाई पड़ता था। उसके वस्त्र के सुंदर मोड़ केवल चन्द्रिका की रजत तरङ्गों द्वारा ही दृष्टिगोचर होते थे; चहुंओर प्रसरित चन्द्रिका में भी वह जहां थी वहां काञ्चन-गङ्गा के हिम-शिखरों के समान अद्वितीय व सौम्य तेजोमयता प्रसारित होती थी।

सुदर्शन ने इस शान्त व सौम्य तेजोमूर्ति को देखा; उसके आगे बढ़ते पद का लालित्य देखा; उसकी अस्पष्ट तो भी पूर्ण मुखमुद्रा—परिचित हो इस प्रकार—देखी; उसके मस्तक पर भव्य सिकुड़न देखी; उसकी दृष्टि उसके मुख पर स्थिर हुई; अखण्ड यौवन का सनातन सौंदर्य—युग-परम्परा की समृद्धि से दीप्त ज्ञान-गाम्भीर्य—अनुकम्पा की अवधि में से उद्‌भूत परम वात्सल्य—स्रष्टा की सहचारिणी को सुशोभित करने वाला दुर्जय तथा दयार्द्र गौरव उसने देखे।

ये सब वस्तुएं सुदर्शन ने पहले जागृत व निद्रा के स्वप्नों में देखी थीं, और वह उनसे परिचित था; किन्तु आज उन सबका साक्षात्कार होने से उसका भक्तिपूर्ण हृदय पागल बन गया।

बहुत समय से अलग किये गए अधीर, भूखे बालक के समान वह बोल न सका, रो न सका, केवल दयार्द्र बन वह हाथ बढ़ा सका। उसके ओंठ खुले नहीं, और तो भी उसकी नस-नस में 'मां' शब्द की प्रतिध्वनि हुई।

वह देखता रहा—मां निकट आई, और उसके मुख पर दयार्द्र स्मित फैल गया।

'माँ' सुदर्शन ने उच्चारित करने का प्रयत्न किया और पास आये हुए तेजपुञ्ज का स्पर्श करने के लिए हाथ बढ़ाया। वह उसके चरणों को छुआ ही था कि 'माँ' परम स्नेहालुता से सिर झुकाकर पुनः हंसी। उस हास्य में भगीरथ-जीवन की प्रेरणा थी, मिट्टी की मूर्ति में भी वीरता का जोश प्रकट करने का जादू था। उसे आशिष देने के लिए 'माँ' ने हाथ बढ़ाया।

सुदर्शन ने सिर नीचा किया। उसकी आंखों के सामने असह्य तेज नृत्य कर रहा था, और पूज्यता के भार से दबकर वह सिर के बल भूमि पर गिर पड़ा।

और उसके कान में अनेक किन्नर-कण्ठों में से निकलती आवाज़ के समान आवाज सुनाई दी—

"अमलां—कमलां सुस्मितां
धरणीं—भरणीं—मातरम्।"

: ६ :

सुदर्शन ने सिर ऊँचा किया, कितनी देर तक वह गिरा रहा इसका भान उसे न रहा। उसने चारों ओर देखा तो निश्चेतन चन्द्रिका सजीव प्रताप से चमक रही थी। 'धरणीं–भरणीं–मातरम्' वह गुन-गुनाने लगा और खड़ा हो गया। श्रद्धा व भक्ति की लहरों में उसकी आत्मा निर्मलता प्राप्त कर रही थी।

आत्म-श्रद्धा के गर्व से वह चलने लगा। भारत-माता ने उस पर कृपा करके दर्शन दिये थे, अपनी बेड़ियां तोड़ने का शस्त्र उसे माना था। उसका जन्म सफल हुआ था। जगमोहन के समान द्रोही का, ब्रिटिश-साम्राज्य के समान अत्याचारी का उसे अब जरा भी भय नहीं

था। अपने जीवन का धर्म वह अधिक स्पष्ट रीति से समझा।

जब वह अपने कमरे में गया तब पाठक, केरशास्प व मगन पण्ड्या उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

केरशास्प उत्साही व बुद्धिशाली पारसी युवक था। वह बड़ौदा का रहने वाला था। पिता के पैसों की गरमी रहने के कारण उसने पढ़ने को छोड़ परदुःखभञ्जन प्रवृत्ति का आरम्भ किया था। कहीं भी क्लेश हो तो उसे शान्त करना, कहीं भी अत्याचार हो तो उसे रोकना, कहीं भी दुःख हो तो उसे मिटाना—यह उसके जीवन का उद्देश्य था। इस आदर्श के लिए जीवन अर्पण करने के लिए उसने सविस्तार एक योजना बनाई थी। अपने को वैद्यक-शास्त्र का अभ्यासी मान घर बैठ रोगियों को वह प्रतिदिन मुफ्त दवा देता था; सप्ताह में एक दिन गरीबों को कपड़े बाँटता था, और पहिचानवालों में किसी को भी आपत्ति में पाता तो पास के पैसे खर्च कर उसकी सहायता के लिए दौड़ पड़ता था।

वह ऊँचा व प्रचण्ड था। उसमें पहलवान का बल था। उसका बड़ा सिर, छोटी नाक और बड़ी आँखों में ईरान के प्राचीन वीरों का सादृश्य था। वह शुद्ध गुजराती व जोशीली अंग्रेजी बोलता था। वह मानता था कि प्रत्येक विषय-सम्बन्धी उसके विचार निर्विवाद हैं, और दूसरों से मनवाने की निरन्तर सिरपच्ची किया करता था। जब वह अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध बोलता था तब ऐसा दरशाता था कि अभी उस सत्ता को चकनाचूर कर डालेगा। जब वह भारतीयों की दुर्बलता पर विवेचन करता था तब ऐसा भय लगता था कि मानो सब भारतीय कल मर जायंगे और भारत उजड़ जायगा।

पाठक सुदर्शन व मगन पण्ड्या उसके परम मित्र थे; प्रतिदिन बोर्डिङ्ग में आते थे और घण्टों तक दुनिया के इन प्रश्नों को जल्दी से सुलझाने के लिए बैठे रहते थे। इस छोटे समूह का केरशास्प नायक था।

मगन पण्ड्या कालेज का विद्यार्थी था और विद्यार्थी-आश्रम में ही जीवन बिताने की इच्छा हो, इससे परीक्षा में पास होना उसे अच्छा नहीं लगता था। आठ वर्षों की बहादुरी के पश्चात् वह 'बी०एस-सी०' के अन्तिम वर्ष में आ सका था; और इस चिरायु कार्य के लिए उसे सर्वानुमति से 'पण्ड्या काका' की पदवी मिली थी, प्रोफेसरों व विद्यार्थियों की प्रीति का वह पात्र था।

पण्ड्या काका पढ़ने की अपेक्षा खेलने पर अधिक ध्यान देते थे और खेलने की अपेक्षा भोजन करने पर चित्त को अधिक आकर्षित करते थे। एक-दो परीक्षाएँ उसने सुदर्शन की सहायता से 'पास' की थीं, पर क्रिकेट, टेनिस, 'सोशियल गेदरिंग', रीडिङ्ग-रूम इत्यादि का मन्त्रीपद उसे अपनी योग्यता के कारण प्रतिवर्ष मिला ही करता था, और जब-जब छात्र-गृह में भोज होता था, तब-तब दूसरे विद्यार्थी स्वतः क्या खायंगे इसकी अपेक्षा पण्ड्या काका क्या-क्या वीरता प्रदर्शित करेंगे उसका विचार करने में रुकते थे। एक समय में छप्पन रोटियाँ या चौरासी पूड़ियाँ खानेवाले पण्ड्या की ख्याति सुन बड़ौदा व अन्य कालेजों के विद्यार्थियों के हृदय ईर्ष्या से व्याकुल हो जाते थे, और 'पण्ड्या के पेट माँहि पंचियाशी पूड़ियाँ' वाली प्रचलित कहावत के द्वारा उस महारथी की अमरकीर्ति का गान करते हुए अपनी निर्बलता को स्वीकार करते थे।

पाठक, सुदर्शन व केरशास्प की मैत्री के कारण सरल व स्नेहालु पण्ड्या ने राजकीय आदर्श स्वीकार किये थे। अंग्रेज़ों को देश से निकालना लगभग 'ओवर बाउन्डरी' जैसी ही सरल बात उसे मालूम पड़ती थी। केरशास्प का प्रभाव, पाठक की चालाकी और सुदर्शन की बुद्धि—इन तीन वस्तुओं की सहायता से तो 'ओवर बाउन्ड' मारने का भी परिश्रम न होगा ऐसा उसे बहुत बार मालूम पड़ता था। वह स्वतः महत्वाकांक्षी नहीं था, पर उसके तीन मित्र उसे जो कार्य करने को कहें करने के लिए वह तैयार रहता था।

केरशास्प, पाठक व पण्ड्या तीनों सुदर्शन को आशास्पद व लाडला छोटा भाई मानते थे।

'सदुभाई ! कहाँ थे ?' पाठक ने कहा।

'स्टेशन, पिताजी को पहुंचाने गया था।'

'चलो देर होती है, मध्यरात्रि हो रही है।' पैर पर हाथ ठोक केरशास्प खड़ा हो गया।

'अच्छा, मैं पानी पी लूँ।' सुदर्शन ने पानी के बड़े की ओर जाते हुए कहा।

'थैंक्यु—थैंक्यु—थैंक्यु—' तीनों ने कहा। इस मित्र-मण्डल में प्रचलित प्रणालिका के अनुसार इस 'थैंक्यु' के उत्तर में उसे कहने वाले को पानी पीने जाने वाले को भरा हुआ गिलास देना ही चाहिए। सुदर्शन ने चुपचाप पानी पिलाया और चारों वहां से भीमनाथ तालाब जाने के लिए रवाना हुए।

तीन

संस्कार-जागृति

: १ :

सुदर्शन की मानसिक स्थिति समझने के लिए लगभग बीस वर्ष पीछे जाना चाहिए।

जब प्रमोदराय के घर सुदर्शन का जन्म हुआ तो ऐसा मानने में आता था कि पिता व पुत्र दोनों के भाग्य खुले थे। प्रमोदराय के सौभाग्य का घड़ा अपूर्ण था, सो पुत्र-प्राप्ति से भर गया और सुदर्शन को प्रमोद-राय जैसे प्रतिष्ठित पदाधिकारी का पुत्रत्व प्राप्त हुआ।

इस सौभाग्य से पिता तो हर्षित हुए, पर पुत्र अधिक हर्षित होता मालूम नहीं पड़ा।

सामान्य बालक जितना रोते हैं उतना रोकर, जितना जागते हैं उतना जागकर, जितना सताते हैं उतना सताकर वह संसार-यात्रा की पहली मंजिल तय करने लगा। पिता, माता, बहन व सम्बन्धियों के नाना प्रकार के लाड व प्यार की कोई परवाह न हो इस प्रकार उसने साधारण बालकों की जीवन-प्रणालिका भङ्ग करना स्पष्टतया अस्वीकार किया। तो भी सब लाड-प्यार करनेवालों को इस विचित्र बालक में विचित्र शक्ति दृष्टिगोचर होती थी।

जब वह चार वर्ष का हुआ तब सबको मालूम पड़ने लगा कि उसका विशिष्ट गुण गाम्भीर्य है। रोने या तूफान करने के बदले जहां-कहीं कोई बैठा दे वहीं बैठे रहकर चारों ओर आँखें फाड़कर देखने में ही उसे जीवन की सार्थकता प्रतीत होने लगी। हाईकोर्ट के जज को शोभा

देनेवाला गाम्भीर्य उसके कोमल मुख पर देख सम्बन्धियों को विश्वास हुआ कि यह कोई पुण्यशील आत्मा विश्व का अवलोकन करने उतर आई थी।

किस वर्ष में वह घुटनों के बल चलने लगा, किस वर्ष में वह बिना गिरे चल सका, किस वर्ष में वह बोलने लगा आदि सबमें प्रेम के कारण अथवा बड़े आदमी का इकलौता पुत्र होने के कारण सम्बन्धियों के हृदयों में अङ्कित हो गया। वह कितना खाता, कितना पीता, कितना सोता आदि सूक्ष्म शारीरिक क्रियाएँ अस्पताल की नर्स की अथक चिन्ता से वे स्मरण रखते थे और जिस प्रकार महादेव देसाई महात्मा गांधी की बीमारी के समय उनकी ये बातें देश-भर में फैलाते थे, उस प्रकार और वैसे ही रसपूर्वक व आतुरता से वे उसकी साधारण क्रियाओं को जाति में व रिश्तेदारों में फैलाते थे।

बालक बढ़ने लगा; और बहुत छोटी उमर में उसकी बुद्धि की तीव्रता पर मोहित होकर पिता ने भानुशङ्कर गुरूजी की देहाती पाठशाला में उसको प्रविष्ट किया। भानुशङ्कर गुरूजी का शिष्य के प्रति प्रेम उभर आया, और उसने अपने आप ही इस आशास्पद शिष्य को घर से लेजाने व शाला से ले आने का काम अपने सिर पर ले लिया। गुरूजी के दूसरे शिष्य इस नये शिष्य को दिये जाने वाले मान को ईर्ष्या से देखते थे, और आपस में द्वेष से बड़बड़ाने लगे कि सुदर्शन के घर से एक मुट्ठी के बदले दो मुट्ठी चावल मिलने की लालसा से उसे विशेष मान देते थे। भानुशङ्कर गुरूजी ने साठ वर्ष के जीवन में पूरे गांव के लड़कों के हाथों पर जिस निष्पक्षपात वृत्ति से बेंत लगाकर न्याय-वृत्ति का प्रमाण दिया था उसको ध्यान में रखते हुए इस बात में जरा भी शङ्का नहीं थी कि वह बड़बड़ाहट केवल द्वेष से ही प्रेरित हुई थी।

किन्तु बालक ने अपनी हमेशा की तटस्थता से कुछ भी पक्षपात प्रदर्शित नहीं किया। गुरूजी की पाठशाला में जो पहाड़े सीखता था,

उन्हें भूलकर घर आकर पढ़ना सीखने का शौक वह बढ़ाने लगा। थोड़े समय में उसका यह शौक इतना बढ़ गया कि प्रमोदराय ने उसे गुरूजी की शाला में से उठाकर घर पर मास्टर रख पढ़ाना शुरू किया। इस समय सुदर्शन के मस्तिष्क में उत्पन्न होने वाले विचार उसके प्रति की गई आशाओं को शोभा देने वाले थे।

जब प्रमोदराय घर से दफ्तर जाते तब वह चुपचाप बैठक में आकर अपने पिता की कुरसी पर बैठ जाता था। क्षण-भर में वह कुरसी सत्ता का आसन बन जाती थी। टेबल पर पड़े हुए रेवेन्यु-विभाग के कागजों में राज्यों को उथल-पुथल करने के रहस्य आकर बस जाते थे। वहां पड़ी हुई सात-आठ कुरसियों पर वृद्ध व व्यवहार-कुशल मन्त्री आकर बैठते और उसकी आज्ञा की प्रतीक्षा करते थे। भूमि पर पड़े हुए गादी-तकियों पर अगणित राजनीतिज्ञ नीचा सर किये किन्हीं आवश्यकीय समस्याओं पर विचार करते हुए दिखाई देते थे; दरवाज़े के पास पड़े हुए 'स्टैंड' पर कतार में रखी हुई लकड़ियां चौकीदार बन उसके हुक्म की प्रतीक्षा करती हुई खड़ी रहती थीं। इन सबका आधार उस पर था। बहुत बार इन सबको डाँटने के लिए वह अपनी कुरसी पर कूदता था, और सब भयभीत हो देखने लगते थे। तुरन्त वह ज़ोर से अपनी मुट्ठी कुरसी पर ठोकता था और सब पुनः कार्य-निमग्न बन जाते थे।

वह संध्या समय चपड़ासी को लेकर 'सरकारी बाग' में फिरने जाता था। वहां जाकर चपड़ासी को एक कोने में बैठने को कहकर हाथ में छोटी बेंत लेकर वह अकेला एक निर्जन स्थान में जाता था। वह चहुँओर गर्व से दृष्टिपात करता था। कटी हुई घास में उसे अगणित पैदलों का दल दिखाई देता था। फूल के पौधे घोड़ों की पलटन बन जाती थी, और उनके पत्ते-पत्ते पर अधीर बने घोड़ों के सिर नीचे-ऊँचे होते थे और बड़े वृक्षों का गजराज-यूथ उनके मान में सूँड हिलाता था। इतने में शत्रु के आक्रमण का सन्देशा आ पहुंचता था। बाएं

हाथ की अंगुलियों की म्यान में से दाहिने हाथ से वह अपना खड्ग—अपनी बेंत निकालता था और उसकी समस्त सेना शत्रु का विदलन करने के लिए तैयार हो जाती थी ।

वह खड्ग लेकर घूमता था। चहुँओर शत्रु उसे घेर लेते। वह अश्रुतपूर्व वीरता प्रदर्शित करता था व शत्रुओं के व्यूहों को चकनाचूर करता था। वह घायल हो जाता था, उसे रक्त निकलता था। एक पेड़ पर लगे हुए फूल के रूप में हाथी पर छिपकर बैठा हुआ शत्रु का राजा उसको दिखाई देता था। वह एक छलांग मार उसकी ओर कूदता था और तलवार के एक झटके से उस पापी राजा को मारकर भूमि पर गिरा देता था। उसकी विजय होती थी, और संध्या की मंद वायु में नीचे झुकते हुए पौधों के रूप में पराजित शत्रु प्रणिपात करते थे। बहुत बार वायु न रहने से हठीले शत्रु झुकने से इनकार करते थे। वह थोड़ी देर तक प्रतीक्षा करता था। यदि इतने में हवा आती तो कोई निराधार शत्रु झुक जाता था, नहीं तो मरते हुए शत्रु को मारना नहीं चाहिए, इस सूत्र को याद कर गर्विष्ठ शत्रु भले ही न झुके ऐसा कह वह विजय का औदार्य प्रदर्शित करता था।

नदी के किनारे खड़े रहना उसे बहुत पसंद था। वह अकेला शांत व दुर्जय वहां खड़ा रहता था। तरंगें व तरङ्गों की शत्रु-सेना उस पर चढ़ आती थी, तो भी उसके पास आने में वह असमर्थ थी। उसकी अद्भुत शक्ति से वह अस्पर्श्य था। नदी की लहरों के असफल आक्रमण के प्रति तिरस्कार से हँसता था।

बहुत बार दसों दिशाओं के राजा उसके पास सुलह के संदेशे भिजवाते थे, और वह कृपापूर्वक उन्हें स्वीकारता था।

इस प्रकार प्रतिदिन घंटों तक वह रुका रहता था। इतनी सब सत्ता का वह अकेला स्वामी था, तो भी इस सम्बन्ध में कोई कुछ जानता नहीं था, यह देख उसे बहुत आनंद होता था। वह और सबके प्रति विशेषकर अपनी उमर के लड़कों के प्रति बिलकुल तटस्थ था।

वे सब इस सम्बन्ध में कुछ जानते ही नहीं थे।

धीरे-धीरे इस स्वप्न-सृष्टि का प्राबल्य बढ़ता गया। उसके पिता चपड़ासी के साथ ही आते थे; गांव के लोग उन्हें सम्मानपूर्वक मिलने आते थे। वे प्रतिदिन अनेक काग़ज़ों पर हस्ताक्षर कर दुनिया का व्यवहार चलाते थे। उसके मन में स्पष्ट होता गया कि उसके व उसके पिता के ऊपर ही सब दुनिया चलती थी।

: २ :

अहमदाबाद में तथा प्रमोदराय की जहां नौकरी थी वहां सुदर्शन का मकान चौराहे पर था, इससे दोनों स्थानों से खिड़की में बैठकर 'माणभट्ट' सुना जा सकता था।

'गागरिया भट' सुदर्शन के मन में समझ में न आए ऐसा व्यक्ति था। उसे ख्याल नहीं था कि वह एक गरीब देहाती ब्राह्मण था। उसे पता नहीं था कि वह एक पैसा, चिपटी, चावल या लड्डू के लिए कथा करता था। दोनों में से एक को भी पता नहीं था कि वह घड़ा और वह भट गत गुजरात में विनोद व लोककथा, पौराणिक ज्ञान, राष्ट्रीय व सांस्कारिक आत्मभाव का प्रसार करने व संरक्षण करने का एक महान् साधन था।

और आज उपन्यास, पौराणिक साहित्य, व प्राथमिक शिक्षा हमारे प्राचीन गौरव के साथ जो तदात्म्य स्थापित नहीं कर सकते, उसे वह कथाकार एक पैसा, चिपटी व चावल के लिए स्थापित कर सकता था। सुदर्शन तो उसे दैवी पुरुष मानता था। जिन देव व दानव के सम्बन्ध की वह बातें करता था, उन सबों के साथ उसकी व्यक्तिगत मैत्री थी, यह तो स्पष्ट मालूम होता था। और यदि किसी समय वह महान् पुरुष मिले तो उसकी कृपा से कितने ही देवों, वीरों व रावणों जैसे

दानवों के साथ मैत्री स्थापित करने का लाभ उसे भी मिले, ऐसी वह आशा रखता था।

प्रत्येक दिन-रात में लड्डूभट्ट के लड्डू निश्चित होते थे और अन्तिम आरती होने तक सुदर्शन कथा सुना करता था। सुनते-सुनते भट्ट की आवाज़ सर्जकशक्ति का रूप धारण कर लेती थी। ध्रुव, प्रह्लाद व परशुराम; और्व, सगर व भगीरथ; विश्वामित्र, राम व रावण; भीष्म, द्रोण व कर्ण; कृष्ण, भीम व अर्जुन आदि निःसीम व त्रासदायक महत्तावाले सजीव महात्मा निर्जीव पृथ्वी को सजीव करने के लिए निकल पड़ते थे; और अपने विजयी पराक्रमों से वे घड़े की आवाज़ से कम्पायमान सृष्टि को वीरों के योग्य बना देते थे। कथा पूरी होने पर भी इस सृष्टि का अन्त नहीं होता था। रात को जब सब सो जाते थे, तब वे सब, सुदर्शन ही समझ सके इस प्रकार, अपने साहस के काम चालू रखते थे, और सवेरे जब सूर्य व्यावहारिक जीवन का प्रारम्भ करता था तब भी वे सब पराक्रम, सुदर्शन ही देख सके इस प्रकार, किया करते थे।

बहुत बार अपना समय, स्थान व ऐतिहासिक स्थल छोड़कर सब इकट्ठे आते, और सुदर्शन को अपनी प्रीति व विश्वास का पात्र बना, उसके सामने अपना हृदय खोलते थे। ध्रुव तो उसका मित्र था। प्रह्लाद अग्नि से परितप्त स्तम्भ का आलिङ्गन करने के पहले उससे प्रेरणा मांगता था। परशुराम सहस्रार्जुन का विनाश करने के पहले उसके साथ मंत्रणा करते थे। स्रष्टा के समवयस्क विश्वामित्र उसके प्रति बहुत ममत्व दरशाते और नई रची हुई सृष्टि की योजना बनाने का रहस्य बहुत बार कहते थे। वैर-भाव से परितप्त और्व अपने दयाहीन जोश से विनाशकता का प्रसार करते समय उसे कुछ पूछ जाते थे। युगों तक वह भीष्म के साथ विचरण करता था और पिता के आनन्द के लिए भीषण प्रतिज्ञा से जीवन को भावनात्मक बनानेवाले पितामह उसे मित्र के समान मानते थे। कृष्ण कालयवन से भागते समय, भीम दुर्योधन

को चकनाचूर करते समय उसकी सलाह लिये बिना न रहते थे।

बड़े-बड़े पराक्रम होते थे; महत्वपूर्ण बातें पूरी की जाती थीं; बड़े-बड़े राष्ट्र स्थापित होते व नष्ट होते थे। जीवन निर्जीव बन जाता था; केवल महान् उद्देश व भगीरथ भावनाएं विश्व में विचरण करते थे; और इन सब के सहभोगी सुदर्शन के दिन व रात जल्दी से चले जाते थे।

उसे यह प्रतीत हुआ ही करता था कि वह बहुत बड़ा, विकराल व जोशीला था; आर्यावर्त की महत्ता व कीर्ति उसके हाथ में सौंपे गए थे, और सम्पूर्ण सृष्टि संरक्षण की याचना करती हुई उसके सामने खड़ी हुई थी। जब कांच में वह अपने को छोटा सुकुमार बालक देखता तब वह बिगड़ जाता था; पर कृष्ण के समान लोगों को मोहित करने के लिए उसने ऐसा छोटा स्वरूप धारण किया है, और यदि वह चाहे तो बहुत प्रचण्ड हो सकता है, ऐसा विश्वास होने पर उसे शान्ति होती; नहीं तो उसका परम मित्र ध्रुव उसे हिम्मत दिलाता था कि बालपन के पराक्रम भी बड़ी अवस्था-जैसे ही ज्वलन्त व फलदायक होते हैं।

वह आठ वर्ष का हुआ तब उसका यज्ञोपवीत हुआ। प्रमोदराय ने इस अवसर पर बहुत खर्च किया। घर रंगा गया, हांडी फानूस जलाये गए, नगारखाने बैठाये गए, गीत गाये गए व नर्तकी का नृत्य भी हुआ। प्रमोदराय ने ब्राह्मण की हैसियत से प्रतिष्ठा संरक्षित रखने के लिए समारम्भ प्रारम्भ किया। उनकी पत्नी गंगा भाभी ने आनन्द महोत्सव माना। लोगों ने वाह-वाह की, और सुदर्शन के समवयस्कों ने विवाह की प्रस्तावना के रूप में इस प्रसङ्ग का सौभाग्य प्राप्त होने के लिए उसका अभिनन्दन किया।

किन्तु सुदर्शन की स्वप्न-सृष्टि में इस प्रसङ्ग से खलबलाहट मच रही थी। यज्ञोपवीत धारण करने से वह ब्राह्मण बन जायगा। गौतम, अत्रि, वसिष्ठादि उसे अपने साथ बैठायंगे। अब वह केवल वीर ही नहीं किन्तु ऋषि भी होगा; उसे गायत्री पढ़नी होगी, ब्रह्मचर्य का

पालन करना होगा, त्रिकाल संध्या करनी होगी, और ब्राह्मणत्व का प्रताप पहले के समान दुर्जय रखना होगा।

यज्ञोपवीत-संस्कार के समय सुदर्शन का हृदय धड़कने लगा। वेदी में से निकलते हुए धुंए से उसकी आंखें भर आईं, और उसे मालूम पड़ा मानो वह सूक्ष्म, अपार्थिव व अनिश्चित वातावरण में विचरण करता हो।

अन्तरिक्ष में ऋषि व महारथी अस्पष्ट वातावरण में पृथक् न हो जायं, इससे आ पहुंचे। प्रतापी आंखें, फड़फड़ाती हुई दाढ़ियां, तेजस्वी मुख चहुंओर घिर गए। गदा व धनुष, परशु व त्रिशूल के वन गौरव व भयानकता का प्रसार करने लगे। प्रचण्ड व भव्य आर्यों ने उसे आदरपूर्वक निमंत्रित किया.......उसने यज्ञोपवीत धारण किया....... और वह इन सबों में मिल गया। वह छोटा बालक नहीं था, बीसवीं शताब्दी का व्यक्ति नहीं था, पर कृतयुग का कर्मवीर बन गया था। सतयुग के देव-सम नरपुङ्गवों ने उसे अपने बराबर का मान लिया......।

वेदी के गहरे धुंए में उसने एक वृद्ध का परिचित किन्तु अस्पष्ट मुख देखा। उसकी मुखमुद्रा तेजस्वी थी, उसका गौरव अपार था। सुदर्शन सम्मानपूर्वक कांप उठा। वह क्षण-भर तक कुछ समझ न सका.......।

धुंए के उस पार से आवाज़ आई—'कौशिकगोत्रोत्पन्नोऽहम्। वह भी बोला—'कौशिकगोत्रोत्पन्नोऽहम्।' और उसे ख्याल आया कि वह कौशिक के समान प्रतापी गोत्र का है........।

उसका हृदय एकदम नाचने लगा; वह पहचान गया। वह परिचित मुख, वह जाज्वल्यमान तेजस्विता, वह अवर्णनीय भव्यता, आर्यों के श्रेष्ठ, वीर व द्रष्टा स्रष्टा के प्रतिस्पर्धी गाधिराजा के महाप्रतापी पुत्र व अपने आदि पितामह कौशिक का......।

और चहुँओर उछलते हुए अनन्त धूम्रमय सागर के उस पार से ध्वनि गूंजने लगी।

'विश्वामित्र ऋषिः। सविता देवता। गायत्री छंदः—ॐ भूर्भुवः स्वः। ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ॥' और यह गर्जित होती ध्वनि धीरे-धीरे चहुँओर प्रसारित हुई....।

ये उसके पूर्वज द्वारा उच्चारित सनातन शब्द थे। युगों की परम्परा का उल्लङ्घन कर उसके पूज्य पिता उसका आलिङ्गन करने आते थे। उसकी नसों में राजर्षि भगवान् कौशिक का उत्साह-प्रेरक रुधिर उछलने लगा। समय व स्थान का लोप हो गया। वेदकाल के विप्र-श्रेष्ठ के साथ उसने तादात्म्य स्थापित किया। काल के दोनों छोरों पर खड़े हुए पिता-पुत्र की एकता स्थापित हो गई। इस भान के भार से दबकर सुदर्शन ने आंखें बन्द कर लीं........।

प्रमोदराय ने उसे हाथ पकड़कर हिलाया। उसने आंखें खोलीं। हंसते हुए स्नेहीजन आनन्द से देख रहे थे। उसके पुरोहित अपने घर ले जाने के लिए धोती में चावल व सुपारी बांध रहे थे।

सुदर्शन ब्रह्मचारी हुआ। उसका सिर मुँडा हुआ था। छोटी लंगोटी लगाकर वह फिरता था, और सब हंस-हंसकर उसे 'भैंसचारी' कहते थे, जिससे वह बहुत चिढ़ता था। उसे इस शब्द से अपमान मालूम पड़ता था, पर वह चुपचाप अपना काम करता था। वह अकेला ही जानता था कि वह पितामह के समान मालूम पड़ता था। उसे अकेले को ही पता था कि उसके पितामह के समान सबका उद्धार करने की उसमें शक्ति थी। इस ज्ञान के गर्व से वह सबकी ओर तिरस्कारपूर्वक देखता था।

किन्तु रात-दिन अपनी नई पदवी के उत्तरदायित्व से वह दब जाता था। कभी-कभी क्या-क्या करना है इसका विचार करते हुए उसकी नींद उड़ जाती थी। वह जानता था कि उसे वशिष्ठ के साथ लड़ना पड़ेगा, हरिश्चन्द्र को दुःख देना पड़ेगा, और आवश्यकता पड़ने पर नया स्वर्ग भी बनाना पड़ेगा। उसे मालूम पड़ता था कि उसके हाथ में जो छोटा-सा दण्ड था, उसमें परशुराम के फरसे के समान

पृथ्वी को निःक्षत्रिय करने की शक्ति थी; आवश्यकता पड़ने पर उसे वैसा करना होगा। जब बड़ी बहन के साथ वह भिक्षा लेने जाता था, तब मानो दिग्विजय करने जाता हो ऐसा मालूम पड़ता था। 'भवति भिक्षान्देहि,' वह आज्ञा करता हो ऐसे रोब से बोलता था।

उसके दण्ड में अद्भुत प्रभाव था। वह विशुद्ध फरसे के समान मालूम पड़ता था। बहुत बार उसको बंधा हुआ लाल कपड़े का टुकड़ा फौलाद के समान चमक उठता था। किसी समय ऐसा दिखाई देता मानो किसी दैत्य का रक्त उस पर पड़ा हो। यह प्रभावशाली शस्त्र उसके पास है यह देख इन्द्र भी अवश्य त्रसित होगा। घबराकर कदाचित् शेषशायी भगवान् के पास भी जाय, और वे इन्द्र को अभय देने के लिए किसी वीर को यह शस्त्र उसके पास से छीनने के लिए भी भिजवाएं। तो फिर क्या होगा? वह स्वतः अकेला क्या करेगा? किसी देव की सहायता तो चाहिए। उसके पड़ोस में महादेव का मंदिर था, और वहां उसका पुरोहित उसे सन्ध्या सिखाने ले जाता था। महादेव—शंकर! प्रत्येक वीर को शस्त्र तो वे ही देते थे, प्रत्येक महारथी की रक्षा वे ही करते थे, और साथ ही भोले, कृपालु व शस्त्र-कुशल तो थे ही। आवश्यकता पड़ने पर नंदी बैल पर बैठ सहायता के लिए दौड़ भी पड़ते थे। उनकी कृपा के बिना कुछ न हो सकेगा, ऐसा उसका विश्वास हुआ। एक रात को वह चुपचाप दण्ड लेकर महादेव के मंदिर में गया। उसने दण्ड महादेव के पास रखा और सब बातें कीं; विश्वामित्र का परिचय दिया; इन्द्र के द्वेष का भय कह सुनाया; विष्णु का भय कह सुनाया और विनती करने लगा। उसने भूमि पर सिर रखा। वह रोया। थोड़ी देर में शंकर प्रसन्न होने लगे। उन्होंने अभय-वचन दिया। वह कूदकर खड़ा हो गया और अभिमानपूर्ण दृष्टिपात से देवों को डराने लगा। उसे अब देवाधिदेव महादेव की सहायता प्राप्त थी।

उसी रात में एक बड़ा प्रश्न उपस्थित हुआ। वह दण्ड तो था

पर उसका उपयोग क्या हो सकता था? लोग लड़ना भूल गए थे, ऐसा मालूम पड़ता था। केवल उसके पिता जंग खाई हुई नंगी तलवारें शोभा के लिए दीवाल पर कमान बनाकर रखते थे, और जिले का दौरा करने जाते तब एक पिस्तौल साथ में रखते थे। इस वस्तु का उपयोग तो कभी नहीं होता था। अब क्या होगा? शस्त्र का क्या उपयोग होगा? देव-दानवों को मारने के लिए शस्त्र लाते थे; परशुराम क्षत्रियों को मारने के लिए परशु का उपयोग करते थे; सगर ने विदेशियों को निकाल बाहर करने के लिए जामदग्नेयास्त्र और्व से प्राप्त किया था। जब यज्ञों का भङ्ग हो, गो-ब्राह्मण की हत्या होती हो, दुःखित पृथ्वी 'त्राहिमाम्' करती हुई शरण में आती हो, तब ऐसे शस्त्र का उपयोग हो सकता है; और अब तो यज्ञ भी निर्विघ्नरूप से होते थे, ब्राह्मण निश्चिंततापूर्वक फिरते थे, गायें गली-गली विचरण करती थीं, और पृथ्वी को रक्षा की आवश्यकता दिखाई नहीं देती थी। परशुराम के समय में क्षत्रिय लोग पृथ्वी को त्रसित करते थे; सगर के समय में शक व पह्लव त्रासित करते थे; अभी तो मुसलमान भी उसके पिता को मिलने आते, साथ में बैठते व डालियां भिजवाते थे; अंग्रेज़ उसके पिता के साथ अच्छा व्यवहार रखते थे, और फलों की डालियां—क्रिस्मस के समय केक–स्वीकार करते थे। अंधेरी रात में अकेले पड़े-पड़े उसने दाँत पीसे। वह जन्मा तब पृथ्वी को दुःखी होने की भी फुरसत या सौजन्य नहीं था, यह देख उसे बहुत खराब लगा। अपने पर बहुत ही अन्याय होता हो, ऐसा मालूम पड़ा।

दूसरा कौनसा मार्ग है? पृथ्वी को दुखित करने वाला कोई न हो तो भी उसके संरक्षण के लिए तैयार रहने की आवश्यकता प्रतीत हुई। यदि कल कोई असुर पैदा हुआ तो? उसे विचार आया कि अपने समान ब्राह्मणों को सब सिखाकर तैयार रखना चाहिए कि काम पड़ने पर कोई कठिनाई न हो। तत्पश्चात् ब्रह्मचारी के भेष में हाथ में शस्त्र लेकर पैर में खड़ाऊं पहन पृथ्वी व यज्ञ की रक्षा करते हुए

व धर्म की विजय पताका ले फिरते हुए ब्राह्मणों के समूह देखने के लिए वह लालायित हुआ। वे सब थे सही, पर कहां, यह समझ में नहीं आया। यह तो उसे निःसंशय प्रतीत हुआ कि वे सब उसकी प्रतीक्षा करते थे।

सातवें दिन उसे गृहस्थ बना, दौड़ाने की रस्म करनी थी। प्रमोदराय बरात निकालने की तैयारी करने लगे, पर ब्रह्मचर्य छोड़ना सुदर्शन को अच्छा नहीं लगा। यदि सम्पूर्ण जीवन नहीं तो कम-से-कम बारह वर्ष तक ब्रह्मचारी रहने की उसकी बहुत उत्कण्ठा थी। उसने यह बात प्रमोदराय के सामने एकाएक छेड़ी पर उन्होंने उसे हंसी में उड़ा दिया। उसे यह विचित्र लगा कि इतने बुद्धिशाली लोग इतनी-सी बात क्यों नहीं समझते; पर पिता के भय से वह कुछ न बोला। रात को असंतुष्ट मन से वह सो गया। सोने पर उसे स्मरण हुआ कि विश्वामित्र के पुत्र थे। विवाह किये बिना क्या पुत्र हो सकते हैं ?

उसने एकदम उठकर पूछा, 'मां—मां !' गंगा भाभी घबराकर उठ बैठी, 'क्यों बेटा ?'

'विश्वामित्र को पुत्र थे न ?'

उकताहट से माता ने उत्तर दिया, 'हां।'

'तब क्या वे ब्रह्मचारी नहीं थे ?'

'नहीं।' कह माता पीठ फेर सोने लगी। सुदर्शन शान्त हुआ। वह गृहस्थ बना और यज्ञोपवीत-सम्बन्धी गड़बड़ कम हो गई, पर उसकी धुन कम नहीं हुई। वह शिव-कवच बोलकर महादेव की आराधना करने लगा। त्रिकाल संध्या कर ब्राह्मणत्व की रक्षा करने लगा; और विश्वामित्र, परशुराम, सगर, भीष्म आदि के साथ मित्रता चालू रखी। प्रतिदिन इतनी कठिनाई व इतने प्रश्न उपस्थित होते थे कि उनका निराकरण नहीं हो सकता था। पर दिन-पर-दिन एक ब्राह्मण-सेना तैयार करने की योजना स्पष्ट होती गई।

: ३ :

सुदर्शन होशियार होने लगा। उसकी उमर को ध्यान में रखते हुए वह अध्ययन में आगे बढ़ा और एक वर्ष में गुजराती की चार पुस्तकें पूरी कर पांचवीं कक्षा में प्रविष्ट हुआ। उसकी उमर के साथ उसके सपने बढ़ते गए।

एक दिन प्रमोदराय उसे नाटक दिखाने ले गए। 'श्री वांकानेर आर्य-हितवर्धक-नाटक-मंडली' का 'शूरवीर शिवाजी' नाटक था। वह आंखें व मुंह फाड़कर नाटक देखने लगा। भवानी माता का वरदान, शिवाजी का शौर्य व युक्ति, मुसलमानों का अत्याचार, शिवाजी का स्वदेश को स्वतंत्र करने का संकल्प, उसका दिल्ली की ओर प्रस्थान, और उसका राज्याभिषेक आदि घटनाओं ने उसके छोटे-से मस्तिष्क को पागल बना दिया। 'छोटे त्र्यम्बक'[1] की जोशीली कला शिवाजी को हमेशा सजीव करती थी, और उस कला से उत्तेजित कोमल बालक की कल्पना-शक्ति ने नये दृश्य व दृष्टि-बिन्दु देखे। यह नाटक था उसे याद न रहा। त्र्यम्बक केवल काल्पनिक शिवाजी का चित्र उपस्थित करने का प्रयत्न करता था, इसका उसे ख्याल न था। यह गुजराती बोलनेवाला पुरुष उसके मन में साक्षात् शिवाजी था। अभी तक वह केवल कल्पना ही करता था, और इस समय यह प्रभावशाली पुरुष मुंह से बोलता था। नाटक पूरा हुआ तो भी वह स्तब्ध होकर देखता रहा। घर आने पर भी वह शिवाजी की आवाज़ सुनता रहा। रात-दिन उसने मरहटों की सेना इकट्ठी की। दिल्लीश्वर को पराजित किया और हिन्दू-सत्ता की विजय-घोषणा चारों दिशाओं में फैली।

शिवाजी के बारे में उसने एक शिक्षक से पूछा। उन्होंने जब कहा कि बहुत वर्षों पूर्व शिवाजी का देहान्त हुआ है और दिल्ली के बादशाह

---

१. स्वर्गीय त्र्यम्बकलाल रामचन्द्र—'शिवाजी', चन्द 'वारोट', 'वीरेन्द्र' व अन्त में 'नरसिंह मेहता' के नाम से ख्याति प्राप्त किया हुआ नट।

मर चुके हैं, तब उसकी निराशा का पार न रहा।

'पर शिवाजी का राज्य कहां गया ?'

'अंग्रेज़ों ने ले लिया।'

'और बादशाह का ?'

'वह भी अंग्रेजों ने ले लिया।'

'क्योंकि अंग्रेज़ सरकार का राज्य न्यायी है,' डिप्टी कलक्टर के पुत्र को शिक्षक ने सिखाया। 'देखो, कवि दलपतराम की कविता पढ़ता हूं।'

शिक्षक ने पुस्तक में से कविता निकालकर पढ़वाई। सुदर्शन को फार्ब्स के पीछे पागल कवि की कविता बहुत अच्छी लगी।

"ज़हर गये और बैर गये, काले क़हर गये सब ही
यह उपकार मान ईश्वर का हर्षित हो हे हिन्दुस्तान।"

दिन-भर वह यह कविता बोलता रहा। पर मुसलमान अत्याचारी हैं और हिन्दुओं पर अत्याचार करते हैं, यह भाव उसके मस्तिष्क में से नहीं गया, और थोड़ी देर के लिए वह परशुराम व सगर के जोश से मुसलमानों की ओर देखने लगा। क्या मुसलमान हिन्दुस्तान के शत्रु हैं ? क्या उनका नाश करना होगा ? क्या इस्लामी विदेशी हैं ?

महीनों तक उसे कुछ चैन न पड़ी। क्या मुसलमान हिन्दू होंगे ? क्या ब्राह्मण-सेना उन्हें पराजित करेगी ? क्या शिवाजी के समान कोई उसे बांधकर इस्लामी सत्ताधीश के पास ले जायगा ? अन्त में विजय किसकी होगी ? प्रतिदिन सपने में त्रिपुण्डधारी ब्राह्मण और बड़ी दाढ़ी वाले मुसलमान लड़ा ही करते थे। वह एकदम जाग उठता और घबराहट में विश्वामित्रादि अपने प्राचीन मित्रों को सहायता के लिए प्रार्थना करता था। दिन में वह मार्ग से जाते मुसलमानों को देखता था, शाम को मुस्लिम मुहल्ले की ओर घूमने जाता था। नाटक के प्रभाव से पड़े

हुए संस्कारों के कारण मुसलमान शत्रु मालूम पड़ते, और तो भी उनका कोई दोष दिखाई नहीं देता था।

अंग्रेज़ी शिक्षा ने राजनीति में 'पान इस्लाम' और खिलाफत ने विरोध को प्रविष्ट किया, उसके पहले गुजरात में यह विचार तक नहीं था कि हिन्दू व मुसलमान अलग हैं, और गुजरात में उछेरे जाने के कारण सुदर्शन को उनमें दोष न दिखाई देना स्वाभाविक था। दोष के चिह्न देखने का उसने प्रयत्न किया।

उसके घर दो मुसलमान चपड़ासी थे। वे रसोईघर में नहीं जाते थे, दाढ़ी रखते थे, पायजामा पहनते थे, और 'ओं राम' के बदले 'या अल्लाह' कहते थे। इसके अतिरिक्त उनमें व हिन्दू नौकरों में कोई भी अन्तर नहीं था। वे उसे खिलाते और घूमने ले जाते थे, वे अन्य नौकरों के समान बोलते थे, और उसे कहानियां सुनाते थे। कहानी कहते समय हमेशा मुस्लिम नौकर कहता था, 'इस्ताम्बुल में एक राजा था।' और अन्य नौकर 'एक राजा था' से प्रारम्भ करते थे। दोनों परिश्रमी, सादे, आनंदी व नमकहलाल थे।

उसके 'बड़े मियां काका' भी मुसलमान थे। तीनों पीढ़ी के वे सम्बन्धी थे। वे उसके पिता के बड़े भाई के मित्र थे और उनकी मृत्यु के पश्चात् प्रमोदराय के साथ उन्होंने सम्बन्ध जारी रखा था। वे बूढ़े, ऊँचे व दुबले थे, लाल दाढ़ी रखते थे, और सफेद गोल पगड़ी व लम्बा कड़ा अंगरखा पहनते थे। वे एक-दो दिनों के पश्चात् उसके घर पर आते और उसे देख प्रेमपूर्वक कहते, 'क्यों बे लड़के!' और उसे हाथ में उठाकर फिराते थे। प्रमोदराय न हो तो भी वे आकर सबके समाचार पूछकर जाते थे।

उनके बोलने की, बुलाने की व सलाम करने की रीति में जैसा गौरव, सौन्दर्य व माधुर्य था, वैसा और किसी में नहीं देखा गया। त्यौहार के दिन वे भोजन करने आते थे और सबसे दूर बैठकर, कटोरा दोनों हाथों से पकड़कर दाल या खीर पीते थे; और उनकी लाल दाढ़ी

बिगड़ती थी, यह देख सुदर्शन को मज़ा आता था। कभी-कभी 'बड़े मियां काका' उसे और उसके पिता को भोजन करने के लिए बुलाते थे, और अपने बाड़े में ब्राह्मण पाचक बुलाकर उनके लिए भोजन बनवाते थे, और पिता-पुत्र दोनों रेशमी धोती पहन उनके वहां भोजन करते थे।

'बड़े मियां काका' उसे अकेले को बहुत बार अपने घर ले जाते थे। कभी-कभी एक मखमल की जिल्दवाली पुस्तक सामने रख समझ में न आय ऐसा कुछ बोलते थे, और फिर उस पुस्तक के अक्षरों के सोने के चित्र बताते थे। वे चित्र इतने अच्छे थे कि वह पुस्तक उसे अच्छी लगने लगी थी।

काका उसे घर ले जाकर गादी पर बैठाते थे, और हुक्का सुलगाकर गुड़गुड़ाते थे। सुदर्शन के मन में 'बड़े मियां काका' याने लाल दाढ़ी, जरीवाला हुक्का, मखमल की गद्दी, निश्चिततासूचक हुक्के की गुड़गुड़ाहट और वृद्ध मुख पर फैला हुआ आनन्द की मौज का निश्चिन्ततापूर्ण मंद हास्य आदि थे। आधी बन्द की हुई आंखों में से वे उसकी ओर देखते रहते थे, और कभी-कभी 'थू' कर, बैठाते हुए चौंकाने वाली आवाज़ में सम्बोधन करते थे—'क्यों बे लड़के!' सुदर्शन चौंककर सिर ऊँचा करता था; 'बड़े मियां काका' उसे चौंका हुआ देख कहकहा मारकर हँसते थे, और सुदर्शन भी धीरे से हँसने लगता था।

'बड़े मियां काका' की लाल दाढ़ी पहले उसकी समझ में नहीं आती थी। उसने ऐसी दाढ़ी किसीकी नहीं देखी थी। पहले वह ऐसा मानता था कि हुक्का पीने से वह लाल होती है। पर एक बार 'बड़े मियां काका' बीमार पड़े, तब वह सफेद हो गई। सुदर्शन के आश्चर्य का पार न रहा। उसने धीरे से पूछा, 'बड़े मियां काका आपकी दाढ़ी तो सफेद होने लगी।' अपनी आदत के अनुसार काका हंसे। 'देख तो सही लड़के! कल अच्छा हुआ कि लाल हो जायगी,' वे बोले। और हुआ भी ऐसा ही। वे अच्छे हुए तब दाढ़ी जैसी थी वैसी लाल हो गई। सुदर्शन को यह अद्भुत मालूम पड़ा, और तत्पश्चात्

उसके स्वप्नमित्र ऋषि भी लाल दाढ़ी बनाकर आने लगे।

'बड़े मियां काका' हमेशा पहले दो शब्द अपनी भाषा में बोलते थे, फिर सब उसके समान बोलते थे। वे पहले पुलिस इन्स्पेक्टर थे और नवाबी परिवार के दामाद थे। वे हमेशा छुटपन में किये गए पराक्रमों की बातें करते थे, और वह सुनकर सुदर्शन आश्चर्यचकित होता था।

'बड़े मियां काका' की 'बीबी काकी' हमेशा घर के कोने में ही रहती थीं। 'बड़े मियां काका' ने एक दिन उसके कान में कहा था कि 'बीबी काकी' के दादा के पिता गांव के राजा थे। सुदर्शन को जब 'बीबी काकी' बुलातीं, तब उसका हृदय गर्व से उछलने लगता था। हरे व लाल रङ्ग की ओढ़नी, नाक में बड़ी नथ, पैर में मखमल के मोजे, हंसता हुआ व सदा ही पान चबाता हुआ मोटा मुख आदि स्थानीय मुस्लिम राज्यलक्ष्मी के अवशेष के चिह्न अनाकर्षक नहीं थे। जब वह उनको मिलता तब वे बहुत ही लाड़-प्यार करती थीं, और उससे सुदर्शन को उकताहट होती थी, पर राजा की लड़की के स्नेह का अनादर शोभा नहीं देता, ऐसा मानकर वह इस दुःख को सहन करता था। और बहुत बार जब वे 'नवाब चाचा' के ठाट-बाट का वर्णन करतीं तब उसे आनंद होता था। बकरीद के दिन सुदर्शन को बुलाकर एक रेशमी रूमाल में दो रुपये बाँधकर वे देती थीं।

सुदर्शन की मुस्लिम दुनिया में एक और महत्व के सज्जन अब्दुल हुसेन हकीम थे। वे एक घुड़साल-जैसे मकान में रहते थे, और दिन-भर दवाएं पीसा करते थे। प्रमोदराय के यहां वे कभी-कभी आया करते थे, और जरा भी किसीको कुछ होने पर स्वतः ही पुड़िया देते थे। सब घरवालों को उनकी पुड़ियों में बहुत ही विश्वास था।

वे छोटे-मोटे बहुत गोरे व बहुत ही आनंदी थे। वे आँखों में काजल लगाते थे, और सिर पर मलमल की टोपी रखते थे। वे सुदर्शन को कभी-कभी अपने यहां ले जाते थे और 'हातमताई' के पराक्रम की

कहानी सुनाते थे। वे उसे 'कादिर साहब' में भी ले जाते थे, और वहां गाड़े गए पीर की बातें सुनाते थे।

'कादिर साहब' में उन्हें पीर साहब मिलते थे। पीर साहब बहुत ही वृद्ध थे व लाल पगड़ी पहनते थे। उनकी दाढ़ी बहुत ही लम्बी थी। चाहे जो कुछ भी बात करते हों पर वे काँच के मनकों की माला फेरा ही करते थे। वे हमेशा सुदर्शन को प्रेम से बुलाते थे और पीठ पर हाथ फेर कर पूछते थे, 'कादिर साहब को सलाम की?' सुदर्शन को इस वृद्ध व कबर में सोये हुए उसके पूर्वज के प्रति बहुत मान था, और वह हमेशा 'कादिर साहब' को तीन सलाम करता था। पीर साहब जाते समय हमेशा हकीम साहब से कहते थे, 'हकीम साहब, इस लड़के के लिए कादिर साहब का तावीज़ ले जाना।'

ये और मुसलमान किसान, दूकानदार और मिलने आने वाले सुदर्शन का मुस्लिम जगत् थे। उसे ये सब अच्छे लगते थे। उनके आसपास जो आनंद व निश्चिन्तता का वातावरण था, वह भी उसे अच्छा लगता था। ये सब उससे किस प्रकार अलग थे? ये सब इकट्ठे होकर क्या औरों को सताते हैं? ये खानदानी मुसलमान जो कि आनंदी व स्नेही हैं, क्या अन्तर में द्वेष रखते थे? क्या 'बीबी काकी' के पिता 'नवाब चाचा' जीते होते तो उसे मार डालते? शिवाजी इन सबों को मारने के लिए क्यों तैयार हुए? उसकी समझ में न आया।

इन विचारों के चक्र में छोटे सुदर्शन को कुछ समझ न पड़ा। उसके ऋषि-मित्र, उसकी ब्राह्मण-सेना, शिवाजी, 'बीबी काकी' के 'नवाब चाचा' व परदुःखभञ्जन हातमताई आदि सब उसे प्रिय थे। उसकी स्वप्न-सृष्टि में पचरङ्गी ताना-बाना बुना जाने लगा।

: ४ :

थोड़े महीनों के पश्चात् सुदर्शन अंग्रेज़ी पढ़ने लगा, और अपनी बुद्धिमत्ता से तथा पिता के प्रभाव से वह आगे बढ़ने लगा। प्रमोदराय के मन में पुत्र को कलक्टर बनाने की आशा थी, और वह अठारह वर्ष की अवस्था में बी० ए० पास हो जाय, इसलिए नीचे की कक्षाओं में से उसे जल्दी पास करवाने की योजना उन्होंने बनाई थी। चुपचाप पढ़ते हुए व सपने देखते हुए सुदर्शन पांचवीं कक्षा में गया। शांत व सीधे लड़के के जीवन में कोई विशेष बात नहीं हुई।

पांचवीं कक्षा में उसे औरङ्गज़ेब तक भारत का इतिहास और एलिज़ाबेथ तक इंगलैण्ड का इतिहास उसे पढ़ाना पड़ा। दोनों विषयों से उसकी स्वप्न-सृष्टि की मर्यादा बढ़ गई।

और जो भारत का इतिहास पढ़ाने में आता था, वह अधूरा, निर्जीव, उत्साहरहित पादरीकृत इतिहास था तो भी सुदर्शन को उसमें आनंद आया, और साथ ही हंटरकृत इतिहास का गुजराती अनुवाद भी वह पढ़ गया। उसने बार-बार उसे पढ़ा, और एक महीने तक उसने उसके जीवन को स्फूर्ति प्रदान की।

सुदर्शन को गौतम बुद्ध के साथ चैन न पड़ा। चित्र में व चारित्र्य में वे बहुत पूज्य मालूम पड़ते थे; किन्तु उनकी अपूर्वता व निर्विकारता उन्हें हिमवान गौरीशंकर के समान शान्त व अस्पर्श्य बना देती थी। उनके साथ किसी प्रकार का मानव-सम्बन्ध उसे संभव नहीं मालूम पड़ा। बहुत बार वह दिग्विजय, पृथ्वी निःक्षत्रिय करने का, ब्राह्मण-सेना या शिवाजी का विचार करता, तब वे एकदम आ पहुँचते थे। उनका स्थिर पालकी मारा हुआ आसन भयङ्कर निश्चलता के ज़ोर से उसके उत्साह को दबा देता था। उनकी पत्थर की स्थिर निर्जीव आँखें उसके अन्तर को निश्चेतन क्रूर अनुकम्पा से कोर डालती थीं। वे उसे बहुत अच्छे नहीं लगते थे।

चंद्रगुप्त के ब्राह्मण मंत्री के साथ उसकी पहचान जल्दी हो गई। कुछ दूसरी पुस्तकों में से भी उसे गाढ़ परिचय प्राप्त करने का अवसर प्राप्त हुआ। परिचय बढ़ने से वे प्रिय बन गए। तक्षशिला के इस ब्राह्मण में भीष्म की दृढ़ता थी व और्व का जोश था। उसका तेज भगवान् कौशिक के समान दैवी न था, तो भी प्रभावोत्पादक था। वह नवनंद का नाश करने के लिए सर्वदा उत्सुक दिखाई देता था, और प्रतिज्ञा करके जटा खुली हुई ही रखता था, जल्दी से वह स्वप्नमित्र हो गया, और हमेशा आने व बातें करने लगा। सुदर्शन को बहुत बार मालूम पड़ता कि इस नये मित्र के प्रति उसका जो सद्भाव था उससे पुराने मित्र ज़रा ईर्ष्या करते थे। किन्तु उसकी न्यायवृत्ति में यह बात न रुची कि देरी से मित्र होने के कारण किसीको पुराने मित्रों से कम मानना चाहिए।

इस नई पहचान में उसे महमूद ग़ज़नवी पर क्रोध आया। उसकी बहुत बड़ी दाढ़ी थी। उसकी आँखें विकराल थीं। न मालूम क्यों उसका एक दाँत बाहर दिखाई देता था। वह लूटने का व मंदिर तोड़ने का ही काम करता था। उसने उसे नहीं आने की आज्ञा दी थी, तो भी वह आता ही था, और किसी महादेव को फोड़ने या भण्डार को लूटने का प्रयत्न करता था। तुरंत ही वह (सुदर्शन) स्वतः गर्जना करता था, उसकी सेना आ पहुँचती थी, और घबराया हुआ ग़ज़नवी पर्वतों में छिप जाता था। इस दुष्ट व उसके मध्य दारुण वैर स्थापित हो गया था; जहां हो वहां उस पापी को पराजित करने की उसने दृढ़ प्रतिज्ञा की थी।

पृथ्वीराज चौहान उसका बड़ा आश्रित था। वह जानता था कि पृथ्वीराज अकेला अच्छी तरह से लड़ नहीं सकता था। संयोगिता के मोहपाश में पड़कर वह शक्ति व समय का व्यय करता था, इससे सुदर्शन को उसके प्रति तिरस्कार होता था। बहुत बार तो वह उसे कहता था कि यदि इस प्रकार स्त्री के पीछे पागल हुए तो फिर मदद

न की जायगी; पर वह चंदवरदाई को चाहता था। वह हमेशा आकर सुदर्शन को मना जाता था, और चौहान की सहायता करता था, और गौरी की सेना पीछे हटती थी। न मालूम क्यों गौरी की सेना उसे रीछ की टोली के समान मालूम पड़ती थी; और कोई मदारी रीछ का खेल करने आए, तो उसका शौर्य उसके हाथ में नहीं रहता था। वह तलवार लेकर पृथ्वीराज की सहायता के लिए दौड़ता, गौरी की सेना के टुकड़े कर डालता, और फिर निश्चिन्तता से भारत की व्यवस्था करने बैठ जाता था। उदारता से वह पृथ्वीराज को चक्रवर्ती के सिंहासन पर बैठाता था और आर्यावर्त में धन-धान्य व कीर्ति का पार नहीं रहता था।

उसके पश्चात् के पृष्ठ हिन्द के इतिहास में हैं ही नहीं, ऐसा वह मानता था, और अकबर के पश्चात् उसकी सृष्टि का प्रारम्भ होता था।

अकबर को उसके प्रति बहुत ममता थी। वह लाल दाढ़ी बिना 'बड़े मियां काका' के समान मालूम पड़ता था। वह उनके समान आनन्द व प्रेम से हंसता था। वह सदा वृद्ध था व मखमल की गद्दी पर बैठ हुक्का गुड़गुड़ाता और जब-तब देश को जीतने का काम सुदर्शन को सौंपता था। वहां एक हिन्दू स्त्री थी। वह हमेशा उसे बुलाती थी। पर उसे उसके पास जाना अच्छा नहीं लगता था। वह प्रतापसिंह का भी मित्र था, और दोनों के संदेशे ले जाने में उसका बहुत समय चला जाता था।

यदि अकबर 'बड़े मियां काका' के समान न होता तो वह अवश्य प्रताप की सहायता करता। और बहुत बार उसके न जाने बिना वह मेवाड़ जाता था। वह व प्रताप—दोनों पुराने मित्र—घोड़ों पर चढ़ कर पर्वतों पर व खाइयों में घूमते थे। दोनों मृत्यु-पर्यन्त मित्र रहने की प्रतिज्ञा करते थे। उसके छोटे इतिहास में प्रताप के बारे में विस्तार-पूर्वक लिखा न था, इससे उसके साथ का परिचय कम ही रहा।

किन्तु जहांगीर, नूरजहां व शाहजहां के ऐश्वर्य में उसका भी भाग

पूर्वक देखता था, और झूलते हुए हाथियों की कतारें देख गर्व से फूल जाता था। यह समृद्धि व ऐश्वर्य उसके व उसके आर्यावर्त के थे।

उसे महलों में फिरती हुईं स्त्रियां और हमेशा चालू रहने वाला संगीत अच्छे नहीं लगते थे। बाकी की दुनिया जीतनी थी, इससे उनका इस प्रकार समय गंवाना उसे अच्छा नहीं लगता था। कभी-कभी क्रोध में वह इन बादशाहों को ब्रह्मचर्य का उपदेश देता था और भीष्म के समान जीवन व्यतीत करने का सद्बोध देता था। यह सीख वे बादशाह झुककर स्वीकार करते थे, पर फिर जैसे थे वैसे ही रहते थे। उसे इस निर्बलता के प्रति तिरस्कार होता था।

पर नूरजहां उसे अच्छी लगती थी। रंगरेलियों में भी उसकी महत्वाकांक्षा अमर्यादित थी। उसे वह जब-कभी मिलता जहांगीर को जोश दिलाने की सूचना देता था। वह बेचारी हमेशा उसकी सलाह के अनुसार करती थी, पर जहांगीर को अमन-चैन इतनी अच्छी लगती थी कि उस सलाह को वह कार्यरूप दे ही नहीं सकता था। एक बार सुदर्शन को शंका हुई कि उसकी दृढ़ता व अडिग महत्वाकांक्षा देख नूरजहां ने पराई स्त्री को शोभा न दे, ऐसे प्रशंसापूर्ण भाव से उसकी ओर देखा। भीष्म को भी दुष्प्राप्य, भयङ्कर व दृढ़ निर्मलता से उसने नूरजहां के सामने देखा; साम्राज्ञी की दृष्टि का विकार उसी क्षण पैदा होते-होते ही नहीं-सा हो गया।

और फिर तो उसका पुराना व प्रिय मित्र शिवाजी नाना त्र्यम्बक की मुखमुद्रा लेकर आया। वह गुजराती में बोलता रहा; और सुदर्शन को साथ में रख छोटे-से इतिहास में वर्णित सब पराक्रमों को काल्पनिक रङ्गमञ्च पर हार्मोनियम-तबले के संवादसहित पुनः कर बताया।

और इन सब वीरों के साथ मिल अनेक प्रकार के पराक्रम करते हुए वे सुदर्शन के बालजीवन को आगे खींचते गये।

: ५ :

इन सब से मैत्री होने पर सुदर्शन उनके साथ परिचय बढ़ाने के प्रसङ्ग खोजने लगा; और पादरीकृत इतिहास छोड़ मोरबी व बांकानेर के ऐतिहासिक नाटकों के भय से परिपूर्ण 'गुजराती' की भेंटों और नारायण हेमचन्द्र के अनुवादों के विशाल क्षेत्रों में इन मित्रों के साथ वह विचरण करने लगा। कोलम्बस के समान उसकी आश्चर्यचकित आंखों के सामने नये खण्ड की अपरिचित समृद्धि फैल गई; और इस समृद्धि के तेज में पुराने परिचितों को उसने नये स्वरूप व नये सम्बन्ध में पहचाना।

सृष्टि में विप्लव प्रसारित हुआ। पुरुष, मुद्दे, भावनाएं परिवर्तित हो गए। पुराना सुवर्ण नई कीमत में आंका गया। पुराने सम्बन्ध में नये प्रेम का सञ्चार हुआ। चहुंओर भय का प्रसार हुआ। देश व धर्म आपत्ति में पड़े। भरतखण्ड की स्वतन्त्रता जाने लगी। देव-मंदिरों की पवित्रता भ्रष्ट होने लगी। असंख्य इस्लामी भारत पर मंडराने लगे।

सुदर्शन की बेचैनी बहुत बढ़ गई। उसे खाना अच्छा नहीं लगता था। उसे रात को नींद नहीं आती थी। मध्यकालीन राजपूत शौर्य व मुस्लिम क्रूरता ने उसका जीवन अशांत कर दिया। कितने ही प्रश्न निराकरण की प्रतीक्षा करते थे। सोमनाथ की विशुद्धता की रक्षा उसे करनी थी। मेवाड़ का डगमगाता स्वातन्त्र्य उसे स्थिर करना था। अकबर की कुटिल राजनीति को मात देना था। शिवाजी के प्रयास सफल बनाने थे। हिन्दू व हिन्दुस्तान दोनों का क्या होगा?

ये कठिनाइयां दिन-प्रतिदिन बढ़ती गईं। उसे भोजन में, पढ़ने में या खेलने में आनंद नहीं आता था। वह जागते व सोते हुए ये ही विचार किया करता था। परिस्थिति गम्भीर थी। राजपूत लोग अभिमान में एक-दूसरे का गला काटते थे। मुसलमानों की एकाग्र शक्ति आक्रमण करती थी। छोटी-सी, अंधेरी गलियों में महमूद गज़नवी

आक्रमण करने के लिए तरसता था। अंधेरी रात में परछाईं में गौरी व गुलामों की सेना उसकी प्रतीक्षा करती थी। मध्यरात्रि में अगणित इस्लामी खून के प्यासे बनकर उसके बिस्तरे को घेर लेते थे। प्रत्येक छत पर मस्जिद की मीनारें बनाई जाती थीं, अर्धचन्द्राकार विजय-चिह्न प्रतिदिन आकाश में चमकते थे। प्रत्येक हल्ले-गुल्ले में 'या अल्लाह' की आवाज़ आती थी। वह जानता था कि उसे पकड़ने के लिए, मारने के लिए, वे सब उत्सुक थे। उस पर इस्लामियों का क्रोध हुआ था, क्योंकि भारत को स्वतन्त्र रखने की उसने प्रतिज्ञा की थी। वह जहां जाता वहां पठान लोग उसका पीछा करते थे। उन्होंने पैगम्बर की दाढ़ी की सौगन्द ली थी कि उसे पकड़ना चाहिए। उसकी शिखा काटने के लिए वे तलवार घिसते थे। मौलवी लोग उसे भ्रष्ट करना चाहते थे। वह बहुत बार चौकन्ना हो चहुंओर देखता, और अनेक बार घबराता था, मानो हांपता हो उस प्रकार बिस्तरे में बैठे-बैठे भागता था।

जो स्त्री वह देखता वह राजपूतनी होती थी। वह पठानों से त्रसित होती थी। अनेक इस्लामी उसके पीछे दौड़ते थे, उसका शील लूटने का अवसर आ जाता था; धर्मभाई मान वह उसे संदेशा भिजवाती थी। वह जाता था, और स्कूल जाते समय वही स्त्री यदि उसे पुनः मिलती तभी उसे सन्तोष होता था।

प्रत्येक मंदिर को रक्षा की आवश्यकता थी। प्रत्येक के नीचे तह-खाने में शताब्दियों के भण्डार पड़े थे। वह अकेला उनका रक्षक था। जितनी देर तक वह उनके पास से होकर जाता था, उतनी ही देर तक उसे दारुण युद्ध करना पड़ता था।

किन्तु उसकी विजय विधि-निर्मित थी। कहां से व कौन उस पर आक्रमण करता था, इसका पता उसे लग जाता था। प्रत्येक घर राजपूत वीर का दुर्ग था। उसमें से ठीक क्षण पर दुर्जय योद्धा सहायता के लिए दौड़ते थे। अनङ्गपाल, भीमदेव व पृथ्वीराज आ पहुंचते थे। जयचंद के समान द्रोही भय से छिप जाते थे। प्रतिदिन तुमुल युद्ध

होते थे। प्रत्येक गली में हल्दीघाट रचा जाता था। प्रत्येक घर में स्त्रियां जौहर करती थीं। प्रत्येक आवाज़ में 'हरहर महादेव' की घोषणा की प्रतिध्वनि रहती थी। घर से स्कूल, बगीचे या नदी तक स्थान-स्थान पर वीर-रुधिर की सरिता बहती थी।

ज्यों-ज्यों समय बीतता गया त्यों-त्यों उसने एक युक्ति खोज निकाली। उसने घर से स्कूल तक राजपूत-सेना का व्यूह रचा। संयोगिता के पीछे पागल पृथ्वीराज को अपनी आंखों के सामने ओटे के पास रखा। भीमदेव चौराहे पर मंदिर की चौकी करता था। अनङ्गपाल का स्थान म्युनिसिपैलिटी के लालटेन के पास रखा। रास्ते में एक मस्जिद आती थी, वह शत्रु-सेना का अड्डा था। वहां उसने राणा सांगा व प्रताप दोनों को बैठाया। एक बार उन दोनों ने इस व्यवस्था के विरुद्ध आवाज़ उठाई। उन्होंने कहा कि उनके बीच में बहुत-सी पीढ़ियाँ हो गई थीं, इससे वे साथ में न बैठेंगे। सुदर्शन ने क्रोध से पैर ठोका। भारत की रक्षा के महाप्रश्न के सामने उसे इस प्रकार की आपत्ति निर्जीव मालूम पड़ी। सांगा व प्रताप को ज़बरदस्ती उसकी आज्ञा माननी पड़ी, पर सुदर्शन को सन्तोष न हुआ। सामने के मकान की छत पर प्रतापगढ़ बना शिवाजी को बैठाया और उन दो राजाओं को मुस्लिम-केन्द्र पर चौकी रखने की आज्ञा दी। उसने प्रत्येक स्त्री को शस्त्र व संरक्षक दिये और ऐसी प्रेरणा की कि उन्हींकी पवित्रता पर भारत का स्वातन्त्र्य टिका है।

उसके पुराने मित्र व ब्राह्मण-सेना भी आवश्यकीय सहायता प्रदान करने के लिए तैयार थी। मुस्लिम आक्रमण के बलशाली होने पर परशुराम व सगर कभी-कभी सहायता के लिए दौड़ पड़ते थे। विश्वामित्र व चाणक्य भारत के राजतन्त्र को चलाने के विषय में उससे मंत्रणा करते थे। उसकी ब्राह्मण-सेना इस सब व्यूह को व्यवस्थित रखने का काम करती थी, और आवश्यकता पड़ने पर उसकी आज्ञा का उल्लङ्घन करने वाले को दण्ड भी देती थी। पर बहुत-से राजपूत व मराठे

बहादुर व विश्वासपात्र रहते थे। उनके पराक्रम से प्रसन्न होकर सुदर्शन उन्हें ब्राह्मण बना अपनी सेना में स्थान देता था। जहां तक वीर हिन्दू हो वहां तक वह श्रेष्ठ था।

इन सब युक्तियों के प्रताप से धीरे-धीरे मुसलमानों का बल कम होने लगा। हिन्दुस्तान बच गया। गौ, ब्राह्मण व सती निर्भय हुए। देवमन्दिर की विशुद्धि सुरक्षित रही। चहुंओर यज्ञों का धुंआ आकाश में फैलने लगा। वेदोच्चार का नाद सब जगह सुनाई देने लगा। गीत-ध्वनि घंटानाद के साथ मिल शान्तिमय वातावरण का प्रसार करने लगी। उसकी प्रतापी सेना का उपयोग करने के लिए—भारत की दिग्विजय करने के लिए—वह विदेश व परराज्यों पर दृष्टिपात करने लगा।

: ६ :

वह अंग्रेज़ी की छठी कक्षा में गया, तब भी उसके भाग्य में चुपचाप बैठना नहीं था। उसके हाथ में ' एम्पायर हिस्ट्री ' आई। 'एम्पायर हिस्ट्री' याने पादरीकृत पुस्तक नहीं, पर अंग्रेज़ी राष्ट्रीय आत्म-भाव से उभरता हुआ छोटा किन्तु सजीव इतिहास। अंग्रेज़ी में स्कॉट की 'आईवेन्हो' के कितने ही भाग उसने पढ़े।

भारत मुसलमानों से निर्भय हो गया था, इससे उसे दूसरी दुनिया की ओर ध्यान देने के लिए समय मिला। उसने इतिहास व 'आइवेन्हो' पढ़ डाले। उसके पिता ने स्कॉट के उपन्यास उसे भेंट में दिलवाये थे। उन सब को वह बिना समझे पढ़ गया। किङ्स्ले की एक-दो कहानियां भी वह ज्यों-त्यों पढ़ गया।

महीनों तक विश्राम लिये बिना ये पुस्तकें वह रात-दिन पढ़ता रहा। वह अंग्रेज़ी पूरी तरह से समझता नहीं था। कितनी ही बातों का उद्देश्य समझ में नहीं आता था, तो भी स्त्री-पुरुषों की महत्वाकांक्षा

व पराक्रम उसकी समझ में आ गये। बहुत बार पुस्तक अपूर्ण रख, उसके पात्रों के पराक्रमों की पूर्ति वह स्वतः करने लगा।

धीरे-धीरे एक नया, विचित्र भूगोल व नई, विचित्र कालक्रमवाली सृष्टि प्रकट होने लगी।

बेचारे 'क्रूसेडरों' को—पापी सलादीन के हाथ में से जेरुसेलम को बचाने के लिए निकले हुए धर्मवीरों की भटकती सेनाओं को—उसकी सहायता की आवश्यकता हुई। उसने 'ब्लेक नाईट' के समान लोहे का काला बख्तर पहन लिया; सिर पर टोप रख मुँह ढंक लिया, और काले घोड़े पर चढ़ हाथ में भाला ले सलादीन को परास्त करने वह निकल पड़ा। शहर से थोड़ी दूर पर स्थित एक रुद्रालय जेरुसलम बना। गांव के बाहर जहां खेतों की बांड़ शुरू होती थी, वहां से हिन्दुकुश पर्वतों के शृङ्गों में इस्लामी सत्ता छिपकर बैठी थी; और इन शृङ्गों के पीछे जहां गज़नवी का पापी दल छिपा हुआ था, उसकी बाजू में ही उसके मित्र सलादीन की सेना थी। रुद्रालय—जेरुसेलम को इन राक्षसों के पास से वापस लेना था।

वह अब बहुत बार 'जेरुसलम' की ओर फिरने जाता था। उसके साथ चलने वाला काला कोट पहना हुआ चपड़ासी उसका परम मित्र इंगलैंड का सिंहहृदयी प्रथम रिचार्ड—'ब्लेक नाइट'—काले योद्धा के नाम से सुविख्यात महारथी था। उसके बाएं हाथ पर हमेशा उसके छोटे भाई के समान 'आइवेन्हो' चलता था, और उसकी सेना यज्ञो-पवीत व त्रिपुण्ड धारण कर बख्तर से सज्जित होकर उसके पीछे आती थी। बहुत बार सलादीन की जीत होती थी, और वह तथा 'काला योद्धा' अपने नाम छिपाकर अनेकों कठिनाइयां सहकर स्वदेश में आते थे।

अनेकों शताब्दियों की घटनाएं एकत्रित कर उन्हें एक ही स्थान व काल में सजीव करने की सुदर्शन की शक्ति दिन-पर-दिन बढ़ती ही

गई, और इस बढ़ी हुई शक्ति को इंगलैंड के इतिहास में बहुत आनन्द आया।

वह घर से निकलता तब जंगली इंगलैंड को हाथ में लेकर निकलता था। तुरन्त बोआडिशिया रानी अपनी वीरता प्रदर्शित करती हुई उसके साथ में हो जाती थी। वे बिचारे तीनों ज्यों-त्यों आगे बढ़ते और इतने में नारमन्डी का डयूक विलियम उन्हें पकड़ लेता था। थोड़ा समय बहुत ही दुःखपूर्ण रहता था। तो भी अन्त में विजय प्राप्त कर बड़े साम्राज्य की स्थापना करने का उसका विश्वास रहता था। यदि कुछ भी हो तब भी उसकी सेना की सहायता तो थी ही।

धीरे-धीरे वह शक्तिशाली बनता गया। एडवर्ड प्रथम आ पहुंचता था। फिर एडवर्ड तृतीय उसे मिलता और चौराहे पर पहुंचने पर प्रथम स्कॉटलेण्ड पर विजय प्राप्त की जाती थी। फिर फ्रान्स के साथ सतत युद्ध करना पड़ता था। वह हमेशा फ्रांसीसियों का आदर करता था। उन्हें वह अनुनय से कहता था, 'किसलिए लड़ते हो? मैं तुम्हारी रक्षा करूंगा, तुम्हें सुख पहुंचाऊंगा।' पर वे नहीं मानते और हेनरी पञ्चम को भेज उन्हें परास्त करना पड़ता था।

फिर वह छोटी-सी 'जोन आफ आर्क' आती थी। वह शत्रु के दल को प्रेरित करती थी, तो भी वह उसे बहुत अच्छी लगती थी। कभी-कभी तो उसे अपनी ओर ले लेने का उसका मन हो जाता था, पर उसके समान स्थिर संयमी को जरा भी स्त्री-साहचर्य नहीं होना चाहिए, यह संकल्प कर वह मन को दबा देता था। वह बड़ी वीरता प्रदर्शित करती थी। वह चाहे तो उसे चुटकी में पद्दलित कर सकता था, पर ऐसी सुकुमार बाला को हताश करने को उसका मन नहीं हुआ। उसने अपने प्रिय मित्र भीष्म के समान स्त्री के साथ लड़ना अस्वीकार किया। स्त्री को जान-बूझकर उसने विजयी होने दिया।

सात पटरानियों के साथ आता हुआ वह मोटा हेनरी उसे अच्छा

नहीं लगता था। पर ऐलिज़ाबेथ का उसने पक्ष लेकर स्पेन का जल-नौकाओं द्वारा आक्रमण रोक दिया। चार्ल्स प्रथम उसे जरा ही अच्छा लगता था। वह बड़ी कठिनाई से उसे डरा-डराकर सीधा रखता था, और इतने में तो उसका मित्र ऑलिहर क्रॉमवेल आ पहुंचता था।

क्रॉमवेल उसका परम मित्र था। वह भी उसके समान कड़ा, संयमी व सत्ताशील था। उसके आने पर सुदर्शन और सब को भूल-कर अंग्रेजी सत्ता का पाया रचता था।

उसके पश्चात् का और कोई उसे अधिक अच्छा नहीं लगता था, इससे वह क्रामवेल को ही साथ में रखता था; और उसके द्वारा अंग्रेजी इतिहास की बहुत-सी गलतियां सुधरवाता था। पर पिट के आने पर उसकी आवश्यकता नहीं होती थी। भारतवर्ष, केनाडा आदि शीघ्रता से जीते जाते थे।

किन्तु इतने में पानी जाने का परनाला आता था; वहां रास्ता भी संकरा था। वहां नेपोलियन मिलता था। उसे वही योग्य प्रतिस्पर्धी मालूम पड़ता था। उसे सहायता करने को उसका मन होता था। पर क्या इंगलैंड छोड़ा जा सकता है? वह तुरंत नैपोलियन को हराकर दूर टेकड़ी पर जो घर था वहां उसे कैद करता था। इतने में स्कूल आ पहुंचता था। उस मैदान में म्युनिसिपैलिटी, गिरजाघर, सरकारी दफ्तर व स्कूल थे। यह अंग्रेजी साम्राज्य था। बड़े परिश्रम से उसने बनाया था। उसके पिता इस साम्राज्य के स्तम्भ थे। उसे बहुत ही गर्व होता था और इसे हमेशा सुरक्षित रखने की वह प्रतिज्ञा करता था।

"ज़हर गये और बैर गये, काले कहर गये सब ही।
यह उपकार मान ईश्वर का हर्षित हो हे हिन्दुस्तान॥"

वह बोलता था।

सुदर्शन के मन में भारत अंग्रेजी-साम्राज्य में था, इससे अंग्रेजी गौरव से युक्त था। क्रॉमवेल, पिट व नेलसन उसके ही पूर्वज थे।

'ब्रिटेन लोग कभी गुलाम न होंगे,' ये शब्द उच्चारित करते हुए उसकी छाती उभर आती थी।

विश्वामित्र, परशुराम व सगर का अनुज और सांगा, प्रताप व शिवाजी का भक्त यह छोटा-सा ब्राह्मण बालक शताब्दियों की अपूर्व संस्कृति की अपनी पैतृक सम्पत्ति को अंग्रेजी कीर्ति के झपके से चमकाकर साम्राज्य को विश्वविजयी बनाने के सपने देखता था।

चार

अधमता का आस्वाद

: १ :

एक दिन सन्ध्या-समय सुदर्शन प्रमोदराय के साथ गाड़ी में बैठकर आ रहा था, पीछे से एक अंग्रेजी घुड़सवार आता हुआ मालूम पड़ा।

जब सुदर्शन गाड़ी में बैठता था तब उसके सपनों का वेग बढ़ जाता और जल्दी-जल्दी परिवर्तन होते थे। वह चुपचाप सब देखता रहता था और बोलता बहुत कम था। उसकी दृष्टि में तो गाड़ी के आसपास दौड़ती हुई उसकी सेना की टुकड़ी ही दिखाई देती थी; और रास्ते से जाने वाले सब लोग उसकी आज्ञा धारण कर किसी बड़े कार्य को सिद्ध करने चले जाते थे। सुदर्शन ने उस आते हुए घुड़सवार को कब से देखा था, और उसे अपने बालमित्र 'आईवेन्हो' को संदेशा लेकर आनेवाले अनुचर के रूप में कब से ही पहचाना था।

रावबहादुर का एक हाथ पगड़ी ठीक करने गया। दूसरे हाथ से उन्होंने कोट खींचकर सीधा किया। उन्होंने सुदर्शन का हाथ दाब मानपूर्ण स्वर में धीरे से कहा, 'कलक्टर साहब आते हैं, सलाम करना।'

अपने रावबहादुर पिता को ऐसे स्वर में बोलते हुए देख उसे आश्चर्य हुआ। उसने अपने पिता की ओर देखा। विश्वामित्र से मिलते समय जो नम्रता उसके मुख पर रहती थी वैसी प्रमोदराय के मुख पर छा गई थी। मानपूर्ण हँसी हँसकर, गाड़ी में भी नीचे झुक-

कर उन्होंने घुड़सवार को सलाम की। सुदर्शन ने 'आईवेन्हो' के अनुचर की ओर देखा, पिता ने 'सलाम करो' कान में कहा, सो सुना और यन्त्र के समान हाथ उठाया। सिर झुकाकर घुड़सवार ने सलाम का जवाब दिया, और पास आकर घोड़ा धीमा किया।

'हलो प्रमोदराय!' उसने सुदर्शन को तुच्छ मालूम पड़े, ऐसी आवाज़ में कहा, 'क्या यह तुम्हारा लड़का है?'

'हां साहब, मेरा इकलौता बेटा है।' प्रमोदराय का मुख हर्ष से चमक उठा।

'प्रमोदराय,' साहब ने कहा, 'मिसेस स्मिथ का कल जन्म-दिवस है, आप सबेरे दस बजे आइएगा।'

'जी हां, साहब, बहुत ही आनंदपूर्वक आऊंगा।'

'और आपने इस लड़के को भी लाना,' कह उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना घोड़े को एड़ मारकर कलेक्टर साहब चले गये, और लड़के को देखते ही साहब ने आमंत्रण दिया, इससे प्रमोदराय उसे गर्वपूर्वक देखते रहे।

पर उस लड़के के हृदय में आग सुलगी थी। उसके पिता के स्वरूप व स्वर का परिवर्तन, उस अंग्रेज़ का बोलने व आमन्त्रण देने का ढंग आदि ने उसकी स्वप्नसृष्टि में भूकम्प उत्पन्न कर दिया था। समझ में न आए ऐसा, वश में न रहे ऐसा क्रोध उसके छोटे शरीर में व्याप रहा था।

अपने पिता की ओर उसने ध्यान से देखा। ऋषियों की महत्ता व अंग्रेज़ी गौरव के वे स्तम्भ नहीं थे। वे प्रतापी व दुर्जेय अधिकारी न थे, पर इस 'आइवेन्हो' के अनुचर के सामने छोटे व निर्जीव पराधीन मनुष्य थे। पगड़ी ठीक करने के लिए बढ़ाया हुआ हाथ, कोट सीधा करने के लिए फैलाई हुई अंगुलियाँ, सलाम करने के लिए उनके द्वारा की गई आज्ञा, प्रत्येक वाक्य के साथ मिलाया हुआ नम्रतापूर्ण हास्य व जोड़ा गया 'साहब' शब्द आदि सब उसके हृदय को जलाते

थे। ये ही उसके पिता थे जिनको वह पूजता था।

अभी तक बहुत बार उसने दूर से अंग्रेज़ों को देखा था, और अपने साम्राज्य वे हैं यह मानकर गर्व धारण किया था। पर उनके साथ के इस प्रथम परिचय से उसकी आत्मा घायल हो गई। वह साहब तिरस्कार से उनकी ओर देखता था, लापरवाही से आमन्त्रण देता था। उसके सम्पूर्ण व्यवहार में निर्लज्ज लापरवाही थी। उसके मन में अंग्रेज़ याने सुशील, स्वातंत्र्य-प्रेमी, प्रसन्नचित्त, शिष्टाचार व सद्व्यवहारपूर्ण सज्जन था। इस अंग्रेज़ को देखकर उसे क्रूर 'ब्रीग्रां-द-ब्वा गिलबेर' सदेह आया हो, ऐसा मालूम पड़ा। वह चुपचाप क्रोध से जलने लगा।

वह घर आया और प्रमोदराय ने सहर्ष गङ्गा भाभी को कहा, 'यह तुम्हारा लड़का तो जबरदस्त है। आज साहब ने इसे देखते ही तुरंत कल बंगले पर बुलवाया है।'

'ओहो! ऐसी बात है।' गङ्गा भाभी ने कहा और पिता-पुत्र में जिसका जीवन समाया हो ऐसी ही स्त्री के मुख पर दृष्टिगोचर होती गर्व व ममता से परिपूर्ण हँसी वह हँसी। 'मोर के अंडों को कहीं रंगना पड़ता है?' दोनों हँसे, पर सुदर्शन अपने को मक्खी के अंडे के समान मानने लगा।

प्रमोदराय ने उसके अच्छे-से-अच्छे कपड़े निकालने को गङ्गा भाभी से कहा। सुदर्शन कांपने लगा।

रात में प्रमोदराय उसे कैसे बोलना, कैसे चलना, कैसे प्रणाम करना चाहिए आदि सिखाने लगे।

उसने पिता के कहने पर ध्यान नहीं दिया और कलक्टर के वहां जाने में आनाकानी करने लगा। प्रमोदराय ने क्रोधित होकर उसका कान ऐंठा और तैयार होने की आज्ञा दी।

वह अकेला बिस्तरे में जाकर रोने लगा। उसके पिता पराश्रित नौकर थे; स्वतः 'रतनबाई' था; विश्व में उनके लिए स्थान नहीं था। क्या उसके स्वप्नमित्र उसे छोड़ गए थे।

: २ :

दूसरे दिन उसे अच्छे कपड़े पहनाये गए। उसने चुपचाप कपड़े पहन लिये, किन्तु लज्जा से उसका मुख लाल हो गया। उसके स्वप्न-मित्र चारों ओर से उसका उपहास करते थे। 'कैसा अच्छा मालूम पड़ता है?' गङ्गा भाभी ने कहा।

'रतनबाई-जैसा' सुदर्शन ने कहा। उसकी माता उसका अर्थ नहीं समझी और चुप रही। प्रमोदराय गर्व से लड़के को साथ ले गाड़ी में बैठ कलक्टर के बंगले पर गये।

नगर के बाहर नदी के किनारे सरकारी कर्मचारियों के लिए अच्छे व सुव्यवस्थित बंगले बने हुए थे। वहां रास्तों पर 'रोलर' फिराये जाते, पानी छींटा जाता और दोनों ओर ध्यानपूर्वक पेड़ लगाये जाते थे। वह स्थान म्युनिसिपैलिटी को बहुत प्रिय था।

सुदर्शन इतने दूर घूमने नहीं आता था, इससे यह साहब-मुहल्ला देख उसे आश्चर्य हुआ। यदि उसकी मानसिक स्थिति अच्छी होती तो यह स्थान देख उसकी कल्पना-शक्ति उत्तेजित होती, पर इस समय तो वह मंद हो गई थी। उनकी गाड़ी बंगले के कम्पाउण्ड के बाहर खड़ी रही और वे उतरे। दरवाजे पर खड़े हुए पुलिसमैन ने रावबहादुर को सलाम की। बंगले से इतनी दूर रास्ते पर उतर पड़ना सुदर्शन को विचित्र मालूम पड़ा।

'पिताजी! क्या गाड़ी अन्दर नहीं लेजानी है?'

'नहीं। अन्दर ले जाने की आज्ञा नहीं है,' कहकर रावबहादुर अन्दर जाने लगे। सुदर्शन अपने उग्र स्वभाव के पिता को अच्छी तरह से पहचानते थे। मेहमान होकर आना और इस प्रकार रास्ते पर उतरना, इससे उसके पिता अवश्य क्रोधित होंगे ऐसा उसे मालूम पड़ा। उसने डरते-डरते प्रमोदराय की ओर देखा तो उनका मुख सौम्य दिखाई पड़ा। उसके मन में एक विचार आया। यदि और किसी ने उसके पिता

को इस प्रकार उतरने की आज्ञा दी होती तो उसके घर वे कभी न जाते; पर यह साहब था, और वे नौकर थे, इससे यह आज्ञा सहन कर लेते थे। अपने पिता के प्रति उसे लज्जा हुई, और वहां से भाग जाने का उसका मन हुआ।

बिना आवाज़ किये पैर बढ़ाते हुए वे अन्दर गये। चबूतरे की सीढ़ियों के पास एक सिपाही मिला। उसने रावबहादुर को सलाम कर ठहरने को सूचित किया और वह अन्दर गया। थोड़ी देर में वह वापस आया और उसने चबूतरे पर दो कुर्सियां रखीं, और उन्हें बैठने के लिए कहा। 'साहब काम में हैं,' उसने कारण बताया।

सुदर्शन का आत्माभिमान घायल होकर सतेज हुआ था; उसकी अवलोकन-शक्ति तीव्र हुई थी; और उसकी असहिष्णुता बढ़ गई थी। सिपाही के व्यवहार में उसे अपमान दिखाई दिया। साहब ने उन्हें चबूतरे पर बैठाया, इसमें अवगणना प्रतीत हुई। उसके पिता तो सौम्य-मूर्ति थे। वे हमेशा कहते थे कि उनका साहब लोगों से अच्छा निभता था। क्या यही अच्छा निभाव था?

थोड़ी देर में वह घुड़सवार हाथ में बीड़ी रखकर आया और राव-बहादुर ने झुककर सलाम की। सलाम करते समय उसके पिता कितने झुके यह सुदर्शन ने सूक्ष्मता से देखा, और स्वतः उसने भी सलाम की। उस समय भी वह अपने को 'रतनबाई' कहे बिना न रहा।

'हलो मास्टर, कैसे हो?' साहब ने उसकी पीठ पर हाथ रखा।

'ठीक है,' उसने कहा। रावबहादुर ने उसे खूब रटवाया था कि साहब को 'थेंक्यू' कहना चाहिए, किन्तु वह उन शब्दों का उच्चारण नहीं कर सका।

'क्या पढ़ता है?

'मेट्रिक में है,' प्रमोदराय ने कहा।

'तुम्हारी 'सेकण्ड लेंग्वेज़' क्या है?'

'संस्कृत,' सुदर्शन ने कहा।'

'क्यों तुम भी रावबहादुर के समान डेप्युटी कलक्टर बनोगे न ?'

सुदर्शन का पूछने का मन हुआ, 'क्या आपकी खुशामद करने के लिए ?' पर उसके जवाब देने के पहले मेम साहब आ गईं।

'हलो रावबहादुर !' उसने तेज़ आवाज़ में कहा। श्रीमती स्मिथ ऊंची, पतली व निस्तेज थी। उसके लम्बे हाथों की कुहनियां सचमुच में कोण बनाती थीं। प्रमोदराय उठे और मुगल-काल के उपयुक्त सलाम उन्होंने की। सुदर्शन को इस प्रकार सलाम करने की रीति के प्रति तिरस्कार हुआ। उसने स्वतः तो केवल माथे को हाथ लगाया।

'मेरी ओर से अभिनन्दन स्वीकार कीजिए,' हंसकर प्रमोदराय ने कहा। 'क्या इसको स्वीकार करेंगी ?' रावबहादुर ने जेब में से एक डिब्बी निकालकर भेंट उपस्थित की।

'How lovely (कितना सुन्दर) !' श्रीमती स्मिथ ने चीख मार भेंट को स्वीकार करते हुए कहा। उसके मुख पर हास्य छा गया। उसने डिब्बी खोल एक छोटी-सी 'पोंची' (हाथ की कलाई पर पहनने का एक आभूषण) निकाल आनन्द से हाथ पर रखी। 'जॉन, देखो तो सही प्यारे ! 'Isnt Rao Bahadur a dear ?' (रावबहादुर कैसे प्रियजन हैं !)।' तुरन्त उसने सुदर्शन को देखा और मुंह को कृत्रिमतापूर्वक बनाकर उसके सामने देखा। 'यह किसका लड़का है ?'— उसने पूछा और गुजराती भाषा का ज्ञान प्रदर्शित करने के लिए 'छोकरा' शब्द उपयुक्त किया। 'आपका है न ?'

'जी हां, मेम साहब,' हंसकर प्रमोदराय ने कहा।

जरा तिरस्कारपूर्वक उच्चारित किये गए 'छोकरा' शब्द ने सुदर्शन के मस्तिष्क में ज्वाला प्रकट की थी। 'यहां आओ, शरमाओ नहीं,' श्रीमती स्मिथ ने कहा। पर क्या करना चाहिए, इसके सुदर्शन को सूझने के पहले एक नये आनेवाले ने सबका ध्यान आकर्षित किया।

सुदर्शन ने उसे जल्दी पहचान लिया। वृद्ध रावबहादुर माधवलाल प्रमोदराय के मित्र, रिटायर्ड डेप्युटी कलक्टर, म्युनिसिपैलिटी लोकल-

बोर्ड आदि सरकारी संस्थाओं के प्रधान, कौंसिल के सदस्य और सरकार के मान्य थे। सम्पूर्ण नगर उनके प्रभाव के नीचे दबा रहता था, और प्रत्येक कलक्टर जाते समय नये आनेवाले कलक्टर को इस बहुमूल्य सहायकरूपी बपौती सौंप जाता था। उन्होंने आकर साहब व मेम साहब से झुक-झुककर हाथ मिलाया, प्रमोदराय से भी हाथ मिलाया और सुदर्शन को 'क्यों दोस्त ?' कह उसके अस्तित्व पर दृष्टि-पात किया।

रावबहादुर स्वतन्त्रता से बातचीत करते हुए दिखाई दिये, पर सुदर्शन को तुरन्त मालूम पड़ा कि मित्रभाव के आडम्बर से परिपूर्ण बातचीत में खुशामद का समावेश था। प्रत्येक बात में साहब या मेम साहब के प्रति अप्रत्यक्ष या प्रत्यक्ष धन्यवाद था। प्रत्येक हास्य में समानता का आडम्बर व दीन वृत्ति का भाव था।

सुदर्शन कितने ही वर्षों से इन महाशय की प्रतिष्ठा से प्रभावित हुआ था। वे उसे हमेशा सरल, दयालु, उदार-हृदय व गौरवशील मालूम पड़ते थे। इस समय उनका व्यवहार देख उसे लज्जा हुई। उसकी तुलना में अपने पिता का व्यवहार गौरवपूर्ण व सरल मालूम पड़ा।

माधवलाल ने भी अभिनन्दन कर भेंट उपस्थित की और श्रीमती स्मिथ ने उनकी भेंट को 'lovely' शब्द से सम्बोधित किया, और उन्हें भी 'dear' के वर्ग में रख दिया; और वृद्ध गांव की गप हांकने लगे, और साहब को रुचिकर मालूम पड़ने वाली बातें करने लगे। साहब व मेम की मीठी बातों में वृद्ध को न मालूम पड़े ऐसा उपहास सुदर्शन को न जाने क्यों मालूम पड़ता रहा।

इतने में सिपाही फिर से दौड़ता आया। कम्पाउण्ड के बाहर प्रतीक्षा करते हुए महाभाई सेठ ने अपना कार्ड भिजवाया था।

साहब ने उनका कार्ड देखा। 'Oh! This eternal Mabhai,'

(अरे, पुनः यह हमेशा का माभाई !) कह, मुंह बनाकर तिरस्कार से उन्होंने कार्ड पढ़ा—

'Sheth Mabhai'

Land-lord and Big Leaf-Dish and cup Merchant.'

'रावबहादुर ! यह Leaf-Dish क्या है ?' मेम ने हंसकर पूछा।

'देखिए मेम साहब !' माधवलाल ने कहा, 'हमारे यहां गरीब लोग भोजन करने के लिए पत्तों की थाली बनाते हैं, उसे हम पत्तल कहते हैं। कटोरे को दौना कहते हैं। माभाई पत्तल-दौने के बड़े-से-बड़े व्यापारी हैं।' साहब व मेम, दोनों हंसे।

सुदर्शन माभाई सेठ को अच्छी तरह पहचानते थे। जिले में दो गांवों के वे स्वामी थे और तीन पीढ़ियों के पत्तल-दौने के बड़े-से-बड़े व्यापारी थे। वे बड़े मकान में रहते व बड़ी घोड़ागाड़ी में फिरते थे। थोड़े समय से रावबहादुर माधवलाल ने उन्हें सार्वजनिक जीवन का रसास्वादन कराने के लिए कलक्टर साहब की पूजा सिखाई थी और परिणामस्वरूप म्युनिसिपैलिटी के सदस्य और तीसरे दर्जे के अवैतनिक मजिस्ट्रेट वे बने थे। अब उनके हृदय में रावसाहब—गांव के मसखरों की भाषा में 'रावछास'—होने की महत्वाकांक्षा प्रकट हुई थी।

'साहब ! मैंने इन्हें कल कहा था कि मेम साहब का आज जन्म-दिवस है,' माधवलाल ने कहा।

'अच्छा, यह आपका मित्र है। सिपाही, उसे बुलाओ।'

धड़कते हुए हृदय से भयपूर्वक सुदर्शन ने दरवाज़े की ओर देखा।

: ३ :

माभाई छोटे कद के, रंग में 'पक्के काले पत्थर' के समान थे। उनकी छोटी नाक ेढ़ी आँखों के बीच चेचक के दागवाले मुख पर

विराजमान होती थी। आंख का रङ्ग हमेशा काला बना रहता था। काले ओंठ सतत किये हुए धूम्रपान से खराब हो गए थे। बड़ी भौंहें व बड़ी मूंछें इस मुख की शोभा के अपूर्व तत्व थे। उनके सिर पर लाल रङ्ग की दाक्षणी पगड़ी शोभायमान होती थी। हाथीदाँत-सा पीला पड़ा हुआ कॉलर उनके कोट में से बाहर निकला हुआ था, और उसके ऊपर लगाई हुई घर में बनाई हुई ऊन की 'टाई' सीधा रहा जाय या न रहा जाय इसके प्रति संशययुक्त प्रतीत होती थी। नया चमकता हुआ कोट दुबले शरीर को ढकने के लिए बड़ा बनाये जाने के कारण थैले की स्मृति दिलाता था, और 'डक' की संकरी पतलून के छोर जरा बड़े होने से रस्सी के बदले रबर से अलंकृत 'होलबूट' में से बाहर निकलते थे।

उनके मुख पर प्रयत्नजन्य व खुशामद-भरा हास्य था। उनके चलने के ढङ्ग में दुर्बल कमर व दुर्बल पैरों की सहायता से यथाशक्य सौन्दर्य लाने का इरादा दिखाई देता था। और यह इरादा सभ्यता के लिए पुरुष कहाने वाले व्यक्ति को शोभा दे ऐसी लचकती हुई चाल द्वारा व्यक्त होता था।

माभाई सेठ आये। सामान्यता के दोष, अज्ञानता के चिह्न और खुशामद के लक्षण सबके-सब मालगुज़ारों के इस अग्रणी में दिखाई देते थे, और कहीं स्वतः पीछे न रह जाय इस भय से प्रकृति ने भी अपनी ओर से उन्हें तिरस्करणीय बनाने में सब-कुछ किया था। लक्ष्मी और अंग्रेज़ सरकार दोनों के ही वे लाड़ले थे।

इस लाड़ले के हाथ में एक डब्बा था। आने पर माभाई ने डब्बा नीचे रखा और मानो हाथ पर धूल पड़ी हो इस प्रकार जोर से हाथ-पर-हाथ घिसे। उनके ओंठ व शरीर साहब को रिझाने की इच्छा से एंठते थे। तिरस्कारयुक्त दृष्टि से स्मिथ इस सज्जन की ओर देखने लगे। श्रीमती स्मिथ मुँह पर हाथ देकर हँसने लगी। माधवलाल पिता के स्नेहपूर्ण वात्सल्य से देखने लगे। प्रमोदराय गम्भीरता व कड़ाई से दूसरी ओर देखने लगे, और सुदर्शन नीचे से ऊँचा न देख सका। इसे एकदम ख्याल

आया कि माभाई उसके थे, स्मिथ पराये थे। माभाई का वर्ताव, उसकी दिखावट आदि से उसकी अधमता प्रमाणित होती थी। जलते हुए अँगारे के समान लज्जा उसे जलाती रही।

थोड़ी देर तक स्मिथ देखते रहे, और माभाई के बैठने के लिए सिपाही से कुरसी तक नहीं मँगवाई।

'वेल!' पाँच मिनट की क्षोभपूर्ण शान्ति के पश्चात् कलक्टर ने कहा।

'Good Morning Sahib—Good Morning, Madam Sahib' प्रत्येक शब्द पर झुककर टूटी-फूटी अंग्रेजी में माभाई ने कहा। I hear to-day Madam's birthday. Great joy. I came. Madam Sahib—noble woman, mother of people. I honour, give no flattery.' (नमस्ते साहब, नमस्ते मेम साहब, मैंने सुना आज मेम साहब का जन्म-दिवस है। बहुत आनंद है। मैं दौड़ता आया। मेम साहब अच्छी स्त्री, लोगों की माता—मैं आदर करता हूँ, खुशामद नहीं।)

इस अंग्रेजी भाषा का अनुपम प्रयोग कर माभाई सेठ यह देखते रहे कि उसका क्या प्रभाव होता है। पर इतने में दो चपड़ासी फलों की एक बड़ी भारी पिटारी उठाकर लाये। यह देख मेम साहब पिघलीं।

'ओह! यह तुम्हारी है?' उत्साह से खड़े होकर श्रीमती स्मिथ ने कहा।

माभाई सेठ यह कृपा देख बहुत ही नम्रता से कहने लगे, 'Yes, Madam Sahib, all garden—your humble servant, all under your hononr's feet, great joy. Madam Sahib, birthday.' (जी हाँ, मेम साहब, सब बगीचा आपके नम्र सेवक का। सब फल भी आपके नम्र सेवक के। सब आपके शुभ चरणों में। बहुत आनंद। मेम साहब का जन्म-दिवस।)

मेम साहब ने पिटारी का ढकन खोला और आनंद की किलकारी

से वातावरण गूंज उठा, 'Oh lovely ! lovely ! de-light-ful' उन्होंने कहा। और इस आनंद में भाग लेते हों ऐसा बताने के लिए सब एक प्रकार का कृत्रिम हास्य मुख पर लाकर देखते रहे। रावबहादुर माधवलाल वृद्ध दरबारी के अधिकार से ज़ोर से हँसे। माभाई सेठ यांत्रिक वेग से हंस पड़े।

एकदम स्मिथ ने जोर से ताली बजाई और जोर से आवाज़ दी, 'यू जमादार ! गधा ! बेवकूफ ! कुरसी ला। देखता नहीं, माभाई सेठ के लिए।' साहब की आवाज से सब लोग चौंके, पर सबने देखा कि यह केवल मज़ाक था, इससे सब जोर से हंस पड़े। हंसी-मसखरी में सिपाही ने कुरसी लाकर रखी, और माभाई सेठ, स्मिथ व श्रीमती स्मिथ को सलाम कर, 'Don't mention, don't mention' (बोलिए नहीं, बोलिए नहीं) बड़बड़ाते हुए कुरसी पर बैठे। जब तक श्रीमती स्मिथ पिटारी में टटोलती रहीं तब तक सब देखते रहे। फिर उन्होंने उठकर माभाई सेठ से कहा, 'माभाई सेठ, इस बॉक्स में क्या लाये ?''

हाथ घिसते हुए माभाई सेठ उठे, पगड़ी ठीक करने के लिए सिर पर हाथ रखा, और काली पेटी की ओर गये। 'Madam Sahib! Your birthday —great joy, auspicious day,—I humble servant, Madam Sahib. I think—think, —Special day— special honour. I bring my water—my tea—my milk—my sugar—my stove—my kerosene. I Make tea my hands. Madam Sahib, drink tea her auspicious hand. Special day—Special honour.' (मेम साहब, आपका जन्म-दिवस, मंगल दिवस, मैं मेम साहब का नम्र सेवक, मैंने विचार—विचार—विचार किया—किया। विशेष दिन को विशेष मान। मैं लाया हूं—अपना पानी—अपनी चाय, अपना दूध, अपनी शक्कर—अपना स्टोव, अपना घासलेट, चाय

बनाता हूँ—अपने हाथ से, मेम साहब चाय पियें अपने शुभ हाथों से, विशेष दिन को विशेष मान।)

इतना अधिक बोलने का जोर पड़ने से हाथी दाँत-से कॉलर में अँगुलियाँ डालकर सेठ ने कॉलर चौड़ा किया।

सब स्तब्ध हो गए। पहले तो किसीकी समझ में नहीं आया कि माभाई सेठ क्या बोलते हैं। पर उनके हाथ के इङ्गित, उनके मुंह पर का भाव, उनकी टूटी-फूटी भाषा आदि से कुछ प्रकाश पड़ा। पर ओटे पर पैरों के बल बैठकर जब वे पेटी में से, मानो मदारी की झोली हो, इस प्रकार सब निकालने लगे तब सब भौंचक्के-से रह गए। इन प्रशंसा-चकित प्रेक्षकों के सामने माभाई ने खेल जारी रखा।

'This new stove-purchase Bombay. This milk-my milk, Madam Sahib, my cow's milk. This tea, China tea. I bought Ving-chang-chi shop,Kalba-devi Road, Bombay.' (यह नया स्टोव, बम्बई में खरीदा है। यह दूध—मेरा दूध, मेम साहब ! मेरी गाय का दूध। यह चाय, चीनी। यह चाय मैंने खरीदी है, वींग-चंग ची की दूकान से, कालबादेवी रोड, बम्बई पर।)

ज्यों-ज्यों माभाई सेठ इन सब वस्तुओं को निकालते गए त्यों-त्यों दूर खड़े हुए सिपाही, स्मिथ, श्रीमती स्मिथ तथा माधवलाल के हंसने का पार नहीं रहा। प्रमोदराय का मुंह गम्भीर हो गया था। उनकी आंखों में उग्रता आई थी, और ओंठ अधीरता से कांपते थे। पिता के इस स्वरूप को सुदर्शन ने गर्व से देखा।

: ४ :

इतने में कम्पाउण्ड में कोई आया और चपड़ासी कार्ड लेकर आया। स्मिथ ने वह कार्ड पढ़ा और उनकी भौंएं टेढ़ी हुईं।

'कौन है ?' वृद्ध माधवलाल ने पूछने का साहस किया।

'अरे वह घृणा उत्पन्न करने वाला कांग्रेस वाला।' कड़े तिरस्कार से स्मिथ देखते रहे। श्रीमती स्मिथ ने कंधे ऊंचे किये। नये आने वाले प्रतिष्ठित वकील थे; पर थोड़े समय से कलक्टर-पूजा की अवगणना करने से साहब के यहां उनका नाम नहीं लिखा हुआ था।

'कौन दलाल !' माधवलाल ने कहा, 'ये अब आपके पास आने लगे हैं। All roads lead to Rome (सब रास्तों से अन्त में रोम ही पहुँचा जाता है।) कांग्रेस में तो बहुत वर्षों पहले सम्मिलित हुए थे।'

'प्रमोदराय अधिक जानते हैं,' स्मिथ ने कहा, 'उन्हें सरकारी वकील बनना है, इससे चक्कर काटते हैं। दो-तीन बार तो मैंने मिलने से भी इनकार कर दिया था। आज अब इसे इसका स्थान बताता हूँ।' स्मिथ क्रोध से उठे और उनके मुख पर अपमानजनक व मनोभावों को दुःखित करने के सब भाव आये। 'उसको बुलाओ।'

स्मिथ वहां से उठे और चबूतरे पर 'पोर्टिको' के पास जाकर खड़े हो गए। दोनों ओर चपड़ासियों की कतार खड़ी थी। दूर ओटे पर मान्य मंडल देख रहा था। साहब अकड़कर कमर पर हाथ देकर मुँह अपमानकारक बनाकर खड़े रहे, और सामने से दलाल वकील नया अल्पाका का कोट, सफेद स्टॉकिङ्ग व सफेद दुपट्टे में शान से चलते हुए आ पहुंचे। जो कृत्रिम व अधम हास्य इस बंगले में प्रवेश करते हुए प्रत्येक दरबारी के मुख पर प्रसारित होता था, वह उनके मुख पर भी प्रसारित हुआ था।

एकदम बिजली की कड़क हो इस प्रकार स्मिथ गरजा, 'What do you want ?' (क्या चाहिए ?)

'Good morning, Sir !' झुककर व हंसकर दुपट्टा ठीक करते हुए सरकारी वकील बनने के इच्छुक ने कहा, 'Nothing Sir !

I came to see you, Sir !' (प्रणाम, साहब ! कुछ नहीं साहब, आपको देखने-मिलने आया हूं।)

स्मिथ का छः फुट का शरीर पल्टन की कवायद में हो इस प्रकार अकड़ा हुआ व निश्चेष्ट हो गया। उसने एकदम दोनों हाथ सिर पर सीधे ऊंचे किये।

'Well, here I am. See me. Did you ? Now, good morning.' (यह मैं हूं। देख लो। देखा ? अच्छा, प्रणाम) कह स्मिथ तिरस्कार से घूमकर लम्बे पैर रखते हुए वहां से चले गए।

सिपाहियों की हंसी व माधवलाल, श्रीमती स्मिथ तथा माभाई के दूर से सुनाई देते अट्टहास के साथ मानभग्न वकील साहब कड़े कपड़ों की दयाजनक शान में अल्पता का अनुभव करते हुए, बहुत समय से सरकारी वकील के पद के देखे हुए स्वप्नों को अदृष्ट होते देखते हुए वहां से चल दिए।

जब स्मिथ दलाल से लिने गये तब प्रमोदराय माभाई की ओर फिरे।

'सेठ, यह सब किसलिए लाये ?'

'Special day—Special honour,' (विशेष दिन व विशेष मान) माभाई ने सूत्र उच्चारित किया।

'अरे, पर खराब दिखाई देता है। चाय तो यहां साहब देंगे।' अपने देश-भाई का पराक्रम देख प्रमोदराय भी लज्जित होने लगे थे।

माभाई सेठ ने जरा शान से देखा—'मेरे हाथ की चाय मेम साहब कब पियेंगीं ?'

प्रमोदराय चुप हो गए। सुदर्शन ने पिता की ओर उपकार की दृष्टि से देखा। इस चिकने मक्खन के अगाध सागर में केवल यही स्थिर-बिन्दु दिखाई देता था।

साहब दलाल को बिदा कर लौट आए, और वे आरामकुरसी पर निश्चिन्तता से बैठ गए। क्या और किस प्रकार बोलना चाहिए यह

निश्चित करने वहां बैठे हुए भारतीय—बोने के लिए तैयार किसान जिस प्रकार बादल के सामने देखता है उस प्रकार—अंग्रेज़ की ओर देखते रहे।

'well-served,' (अच्छा बनाया), श्रीमती ने दाम्पत्य-भाव से सहानुभूति प्रदर्शित की।

'ऐसे व्यक्ति मुझे नहीं चाहिएं। अच्छा, माभाई ! अब तुम्हारी चाय का क्या ?'

'Yes Sir ! Yes, Madam Sahib,' माभाई एकदम कुरसी पर से उठ खड़े हुए और स्टोव की ओर बढ़े। 'My tea ready five minutes,' (मेरी चाय पांच मिनट में तैयार।)

'धन्यवाद,' श्रीमती स्मिथ ने कहा, 'पर मैं ही चाय मंगवाती हूँ। आपको बनाने की आवश्यकता नहीं है। बाय, चाय लाओ।'

'No ! No ! Madam Sahib ! my tea, my milk, ready my hands. Special day, secial honour—must take. My tea. Your tea—thanks, but my tea take. Meharbani on poor servant—me. My tea—Madam Sahib', बहुत ही नम्रता से माभाई सेठ बोलते रहे। (नहीं, नहीं, नहीं, मेम साहब ! मेरी चाय, मेरा दूध व मेरे हाथों से तैयार। विशेष दिन व विशेष मान। मेरी चाय ही ली जानी चाहिए। आपकी चाय के लिए धन्यवाद। पर मेरी चाय लीजिए और गरीब सेवक पर मेहरबानी कीजिए। मेरी चाय मेम साहब !)

किन्तु श्रीमती स्मिथ दृढ़ रहीं। माभाई सेठ की सेवावृत्ति मेम को भी खलने लगी, और अन्त में समाधान हुआ। सेठ की सामग्री मेम ने अपने 'बाय' को दी और 'बाय' द्वारा लाई गई चाय माभाई ने सबको दी। गांव की गप्पों व साहब की खुशामद में आधा घंटा बीत गया। चाय पूरी होने पर सब इजाज़त लेने लगे। माभाई ने बहुत ही नम्रता से अपना कर्तव्य पूरा किया, और अंग्रेज़ी भाषा को कत्ल करते हुए

उन्होंने अपनी प्रतिभा से सबको प्रभावित किया। जाते समय स्मिथ ने हँसकर पीठ पर हाथ रखा, और सेठ के हर्ष का पार न रहा।

'You are a downright'—साहब ने हिचककर शब्द बदला—'a rotter—well,' we will expect you on Mrs. Smiths next birthday,' (आप सचमुच.......'राटर' हैं। अच्छा श्रीमती स्मिथ के आगामी जन्म-दिवस पर आपके आने की आशा रखते हैं।)

फिर प्रमोदराय की बारी आई।

'प्रमोदराय, आपका लड़का आपके समान ही समझदार है' कह श्रीमती स्मिथ ने सुदर्शन की ठुड्डी अंगुली से ऊंची की। मैं 'समझती हूँ, कि माभाई सेठ ने उसे घबरा दिया है।'

माथे पर हाथ रख अपना प्रणाम कर सुदर्शन ने इजाज़त ली। लौटते समय सब माधवलाल की 'फिटन' में आये। माभाई सेठ 'रोटर-रोटर' शब्द रटते थे। इस शब्द तक उनका अंग्रेज़ी भाषा का ज्ञान पहुंचा नहीं था; पर वे इस बात का विचार करते थे कि उसमें सम्राट् के आगामी जन्म-दिवस पर उन्हें 'रावसाहब' बनाने की शक्ति थी या नहीं।

: ५ :

सुदर्शन बेहोशी की दशा में घर आया। यह पूरा प्रसङ्ग उसके लिए प्राणघातक बन गया।

कल का निमन्त्रण उसे खलता था। अपने पिता की पराधीनता से उसे चोट पहुँची। कम्पाउन्ड के बाहर गाड़ी रख अन्दर जाने के अनुभव ने उसे दुःखित किया; और उसके पिता व माधवलाल के खुशामद-भरे व्यवहार ने उसे क्रुद्ध किया; पर माभाई सेठ के रूप, रङ्ग व व्यवहार, उनकी खुशामद व बोलचाल, दलाल के प्रति स्मिथ का व्यव-

वहार आदि बातों ने उसके गौरव व अभिमान को प्राणघातक धक्का दिया था। इस धक्के के ज़ोर से उसका गर्व निश्चेतन हो गया था।

उसको एक बात का होश रहा। उसका व उसके पिता का गर्व, उसकी व उसके पूर्वजों की महत्ता आदि सब मिथ्या कल्पना मात्र थी। वे सब भारतीय—माधवलाल, प्रमोदराय व स्वतः—अलग-अलग रूप में माभाई सेठ व दलाल वकील थे। ये सब ऐसे कार्यों में जीवन बिताते थे—

'लाङ्गूलचालनमधश्चरणावपातं
भूमौनिपत्य वदनोदरदर्शनं च।'

उसकी पीड़ित कल्पना-शक्ति ने एक बड़ी श्वान-सृष्टि उपस्थित की। सब स्मिथ के बङ्गले पर जाते थे। वे माभाई सेठ के समान बङ्गले में बैठकर चाय पीकर पूंछ हिलाते थे; दलाल के समान बङ्गले में न जा सकने के कारण हृदय-भग्न हो बाहर पूंछ हिलाते थे; और चबूतरे पर बैठ चाय पीने के सौभाग्य के लिए एक-दूसरे की ओर गुर्राते थे।

परशुराम व सगर, भीष्म व कृष्ण, चाणक्य व शिवाजी आकाश के मेघों के समान थे। क्रॉमवेल, पिट, जॉन ऑफ आर्क, नेपोलियन आदि पराये वीर—स्मिथ के वीर—मृगजल के समान थे। वह स्वतः तो केवल छोटा-सा माभाई था। वह उनके समान पूंछ हिलाता था। उसके सम्बन्धी दूसरे से भीख मांगकर जीते थे, पराये के पैर चाटकर नाचते थे। उनकी मनुष्यता पराये के टुकड़े खाकर जीने में समाई थी। मक्खी की नहीं, 'रतन बाई' की नहीं, पर उससे भी निर्जीव माभाई सेठ की पराधीन अधमता के आस्वादन में उनके जीवन का साफल्य था।

भग्न-गौरव सुदर्शन में इस प्रकार लज्जा की गहराई में तड़फड़ाने की शक्ति भी नहीं रही। अपनी प्रिय पुस्तकों को अपने पतित व रोगिष्ट स्पर्श से वह कलुषित नहीं कर सका। अपने स्वप्नमित्रों के पवित्र गौरव को अपने अधम व अस्पर्श्य साहचर्य से वह भ्रष्ट नहीं कर सका। वह निर्जीव, अधम, चापलूस पराधीन जीव था। उसके समान व्यक्ति

की अधमता जगविख्यात थी। उसका कलङ्क दसों दिशाओं में फैलाने के लिए सूर्य प्रतिदिन उदित होता था, और तीनों भवनों में ऐसा स्थान नहीं था जहां रहकर वह अपनी अल्पता की लज्जा को छिपा सके।

अपने को व अपने-जैसों को धिक्कारता हुआ सुदर्शन दिन-भर सिर दुःखने का बहाना कर सो रहा। उसकी आंखों में से बहुत बार आंसू बहते थे, बहुत बार सिसकियां भरकर रोने का उसका मन होता था। इस निर्जीवता का अनुभव करते हुए उसने अनेक बार मृत्यु को भी निमन्त्रित किया।

पर रात्रि को उसकी व्याकुलता का पार नहीं रहा; अन्धकार के प्रताप ने उसकी अधमता को भी क्षुद्र व निर्जीव बना दिया। उसे किसी प्रकार भी नींद नहीं आई।

आज प्रत्येक रास्ते से कुत्ते जीभ बाहर निकाल दौड़ते हुए आते थे; चारों दिशाएं हिलती हुई पूंछों से उभरा रही थीं, पूंछ पूर के पानी के समान आगे बढ़ी आ रही थीं। कितने ही पूंछवाले पगड़ी पहने हुए थे, कितने ही टोपी पहने हुए थे; पर सब उसकी ओर आते थे। उस अन्धकारपूर्ण श्वानमय सृष्टि में भी वह माधवलाल, साभाई व अपने पिता की पूंछ पहचान सकता था। बहुत-से दुबले, हड्डियों के ढांचे के समान, मरने के लिए ही जीवित कम्प उत्पन्न करने वाले अहमदाबाद की गलियों के गंदे कुत्तों के समान थे।

आसपास के कुत्ते इकट्ठे हो गए थे और उनका समूह क्षितिज पर जहां तारे चमकते थे, वहां तक विस्तृत था।

बीच में वह खड़ा था। उसे स्वतः को भी बहुत ज़ोर से हिलने-वाली पूंछ थी। उसकी कमर व पैर में 'रतनबाई' के घुंघरू बंधे हुए थे। उन घुंघरुओं की झुनझुनाहट से सब आकर्षित होते और जीभ लटकाये हुए व पूंछ हिलाते हुए आगे ले जाने के लिए प्रार्थना करते थे। किसी स्थान पर—जो कि निश्चित नहीं था—वे सब जाना चाहते

थे, और वहां जाने का रास्ता केवल उसे ही मालूम था। उसका हृदय भर आया था। वह अकेला ही रास्ता जानता था, तो भी वह रास्ता बेताना नहीं चाहता था।

समूह बढ़ता गया। आकाश में पूंछ, जीभ, आंख आदि उड़ती थीं। सब उसकी प्रार्थना करते थे, और साथ ही उसे डराने के लिए गुर्राते थे, सब जहां जाना चाहते थे वहां का रास्ता केवल वही जानता था। वह चलने लगा, पर उससे चला नहीं गया। उसकी पूंछ को हिलाने की शक्ति भी घटने लगी।

किसी स्थान पर कोई आवाज़ हुई और सब डर गए। सब भयभीत होकर एक-दूसरे पर कूदने लगे। पुनः आवाज़ हुई और भगदड़ मच गई। चारों ओर सब भागने लगे। किसीका जी ठिकाने नहीं था। किसी की पूंछ पैरों के बाहर दिखाई नहीं देती थी। एक-दूसरे पर कूदते हुए, एक दूसरे को पीछे करते हुए सब भागे और विशाल पर्वतों के गह्वरों में छिपने लगे।

पर उसके लिए कहीं भी स्थान न था। जहां वह जाता वहां उसे अनिर्वाच्य भय दिखाई देता था। चारों ओर से रास्ता घिर जाता और वह लौट जाता था। वह न तो भूंक सकता था और न पूंछ हिला सकता था। वह दौड़ा मीलों तक—युगों तक; पर न भय घटा और न दौड़ना घटा, न समय घटा। दिशाएं उसे स्थान नहीं देती थीं, गिरि उसे आश्रय नहीं देते थे, नदियों का जल उसे डूबने नहीं देता था। उसने कुछ ऐसा किया था, जिससे विश्व ने उसका बहिष्कार किया था। भयङ्कर शाप से त्रस्त होकर वह अनंत काल तक पूंछ पैरों में दबाकर दौड़ा ही करता था...इसका कारण समझ में नहीं आता था।....आखिर समझ में आया....। उसने माभाई सेठ की गाय का दूध उंडेल दिया था, और उस अपराध के लिए क्षमा करने की शक्ति क्षीर सागरवासी में भी नहीं थी।

सुदर्शन कांपता हुआ पसीने से भीगकर उठ बैठा और आंखें

मलने लगा। तेल के बारीक दीये में पुनः पूंछ हिलती हुई दिखाई दी। पर थोड़ी देर में उसने गंगा भाभी और प्रमोदराय को अपने-अपने बिस्तर में सोये हुए देखा। यम से भी अधिक भयङ्कर त्रास से कांपता हुआ वह सिर पर कपड़ा ओढ़कर पड़ा रहा।

सबेरा हुआ, तब रात की पीड़ा जाती रही। पर अधमता का भान अधिक तीव्र हो गया था। सेंट हेलेना में दुःखित होते विश्वविजेता नेपो-लियन की जोश-भरी निराशा ने उसके हृदय में घर किया था। सुदर्शन में हिम्मत थी, इससे वह तुरन्त इस निराशा की सीमा व गहराई खोजने लगा। सगर से शिवाजी तक जिसने दिग्विजय का गौरव धारण किया था वह आज माभाई सेठ कैसे बन गया? उसे अपनी बाल बुद्धि की प्रतीति हुई, उसके अध्ययन, विचार या स्वप्न में इस प्रश्न का निरा-करण उसे नहीं मिला था।

कल के प्रसङ्ग में उसे स्मिथ का अधिक अपराध नहीं मालूम पड़ा। उग्र प्रमोदराय नम्र होवें, प्रतिष्ठित माधवलाल खुशामद करें, धनवान् माभाई विदूषक की हास्यजनक अधमता बतावें, विद्वान् दलाल लालच के मारे नाक घिसे, तब स्मिथ और क्या कर सकता है? स्मिथ दृढ़, स्वतंत्र व सत्ताशील थे; इन सबों को दृढ़, स्वतंत्र व सत्ताशील बनने से कौन रोकता था? ये सब इस प्रकार निर्जीव, पराधीन, दयनीय, दीन पूंछ हिलानेवाले क्यों बन गए थे?

अपने पादरीकृत भारत के इतिहास का वह विचार करने लगा, और सिंहगढ़ से स्मिथ के बंगले तक के कारनामे समझने का उसने प्रयत्न किया। पादरी ने अंग्रेज़ी गर्व से इतिहास लिखा था, और भारतीयों की शक्ति या न्याय या भावनाओं का आदर करने की परवाह नहीं की थी। उसके मन में भारतीय याने जंगली व निर्वीर्य प्रजा, अंग्रेज़ याने देव के दूत, और इतिहास याने काले रावण पर गोरे राम की प्राप्त विजय की रामायण। सुदर्शन ने इस अधमता का विष घूंट-घूंट करके पिया। प्रत्येक बार पीते समय पराजय, निर्वीर्यता व अव्यवस्था मूर्ति-

मान हुए। 'कम्पनी' आई, पट्टे प्राप्त किये, थाने स्थापित किये, भारतीयों को भारत के विरुद्ध तैयार किया, देशी राजाओं को आपस में लड़ाया। प्लासी के युद्ध-क्षेत्र में विदेशी 'कम्पनी' ने स्वदेशी रक्त द्वारा सत्ता मोल ली, मैसूर का पतन हुआ, अवध का पतन हुआ, बङ्गाल का पतन हुआ; अंधेरे में घबराते हुए सैनिकों के समान भारतीयों ने भारतीयों के गले काटे। मुगल-साम्राज्य का भभकेदार गौरव मिट्टी में मिल गया। मराठों की सत्ता का अशक्त पाये के कारण पतन होने लगा। खड़की के युद्ध-क्षेत्र में व्यापारी कम्पनी भारत की स्वामिनी बनी। सत्तावन के बलवे से अंग्रेज़ी साम्राज्य ने मुगल-सिंहासन पर पदार्पण किया, और सुदर्शन फटी हुई आंखों से लज्जा से कम्पित हो पराजय की तीव्र वेदना से तड़पता हुआ हाथ में से पुस्तक फेंक ज़मीन पर गिर पड़ा, और देश की अधमता के लाञ्छन को गरम आंसुओं से धोने का निष्फल प्रयत्न करने लगा।

: ६ :

निराशा के पाताल में सुदर्शन दब गया था, तो भी उसकी कल्पना का प्राबल्य व निरीक्षण शक्ति की सूक्ष्मता कम नहीं हुई थी। लज्जा की तीव्र-से-तीव्र वेदना का वह अनुभव करता था; तो भी अपनी अल्पता का स्पष्टीकरण व उसके मूल का संशोधन उसने जारी रखा।

अपनी अल्पता का स्पष्टीकरण उसने इतनी अवस्था के लड़के के निर्भय अविचार से किया। उसने देखा कि वह और उसके समान सब निर्जीव थे, उससे उन्होंने प्लासी व खड़की में भारत गंवाया, और भेड़ों के समान वे सब हांके जाते थे।

कितने ही प्रश्न उसके कानों में हमेशा सुनाई देते ही रहे। वे सब माभाई क्यों थे? स्मिथ सत्ताधारी क्यों था? प्लासी व खड़की में वे क्यों हारे? स्मिथ क्यों जीता? इंगलैण्ड ने भारत क्यों जीता? भारत

ने जाकर इंगलैण्ड क्यों नहीं जीता? भयङ्कर प्रश्न थे। इतिहास, समाज-शास्त्र, राजकीय विकास के इन गहन प्रश्नों को एक अज्ञान बालक की धृष्टता से उसने निराकरण की इच्छा की। त्रिकालज्ञ को भी दुष्प्राप्य ऐसा यह निराकरण न होने पर वह जिद में आकर अधिक गहरा अध्ययन, निरीक्षण व संशोधन करने लगा।

थोड़े दिनों में अपने पिता के साथ वह क्लब में गया। उसके माधवलाल प्रधान व माभाई सेठ तथा दलाल अग्रगण्य सदस्य थे। सुदर्शन को ऐसा मालूम पड़ा कि यह क्लब एक-दूसरे को केवल सरकार की कृपादृष्टि में आगे करने या पीछे रखने के उद्देश्य से बनाया गया था। वहां के वातावरण में खुशामद, स्वार्थ, ईर्षा व अधमता थे। वहां सबकी दृष्टि जज, कलक्टर, सुपरिण्टेण्डेण्ट पर अनिमेष नयनों व पूज्य भाव से स्थिर हो गई थी। वहां जाने से उसे माभाइयों की मनोदशा की कुछ समझ पड़ने लगी।

उसके नगर में थोड़े महीनों के पश्चात् वाइसराय पधारने वाले थे। इस महोत्सव को खूब शान से मनाने के लिए नगर में एक 'कमेटी' बनाई गई थी। माधवलाल प्रधान थे, माभाई मन्त्री थे, और उसके उत्साह-प्रेरक थे। सब एकत्रित हुए और चन्दा किया गया, बंदनवार बांधी गई, और एक दिन नौ बजे चार घोड़ों की गाड़ी में एक गोरे साहब नगर के बीच में घोड़े दौड़ाते हुए गए। दोनों ओर पुलिस ने लोगों को रोक रखा था। लड़कियों ने गीत गाकर फूलों की वृष्टि की। सभा की गई व इनाम बांटे गए। रात को कलक्टर के बंगले में आतिशबाजी छोड़ी गई।

जब पूरा नगर महोत्सव का आनन्द लेता था, तब सुदर्शन ओंठ-पर-ओंठ दाबकर अत्यंत ही घबराहट का अनुभव करता था।

उसके पिता के हाथ में महोत्सव का तन्त्र था, और किस प्रकार यह मुलम्मेवाला मान दिया गया था, उसने देखा था। और स्मिथ को खुश करने के लिए उत्साह प्रकटित करने के जो प्रयत्न किये जाते

थे, उन्हें वह स्वतः देखता था व सुनता था। वह लज्जा के मारे आंखों पर हाथ रख निश्वास लेता था।

उस दिन उसका अंग्रेज़ी इतिहास सम्बन्धी विचार बदल गया। क्रॉमवेल व पिट ने जिस सत्ता को बनाया था वह इन दो-चार अंग्रेज़ों की थी और ये दो-चार अग्रेज़ लाखों माभाइयों पर राज्य करते थे। कम्पपूर्वक वह उस 'एम्पायर' इतिहास को देखता रहा। जिस परम मित्र ने उसे शरण दी थी, जिसे पढ़कर वह आनन्दित होता था, जिसके वीर उसके मित्र थे, वह आज पराये का इतिहास मालूम पड़ा। इस विजय-कथा में उसका काम केवल बाहर खड़े रहकर सुनने का ही था। इस कथा का महोत्सव वह स्वतः तैयार करता था, पर पराये उसे मानते थे।

पर तो भी इस इतिहास का जैसा आकर्षण था वैसा न रहा। उसे पढ़ने से उसे अपने लोगों की निर्बलता का अधिक-ही-अधिक ख्याल होने लगा। उसकी बाल-न्यायवृत्ति उसे प्रभावोत्पादकतापूर्वक कहा करती थी कि अग्रेज़ महान् थे, क्योंकि वे महत्व के योग्य थे, और वे सब निर्जीव थे क्योंकि उस दुर्दशा के लिए वे स्वतः ही उत्तरदायी थे। और क्रूर निष्पक्षपात से वह अग्रेज़ों की महत्ता की प्रशंसा पढ़ा करता था, और उसके भार से रसपूर्वक अपने को दबने दिया। स्वतः ऐसा था तब ही तो ? क्योंकर दैवी न्याय की तुला का सामञ्जस्य स्थापित नहीं होने देना चाहिए ?

वह अपने सब लोगों को तिरस्कार से देखने लगा। ये सब किस लिए गर्व धारण करते थे ? किसलिए वे अपने को सुखी मानते थे ? ऐसी दुर्दशा में रहने पर भी माधवलाल प्रतिष्ठा से, प्रमोदराय सत्ता से, माभाई धन से, क्योंकर आनन्दित होते थे ? यह निर्लज्जता देख वह आगबबूला होता था। ऐसी निर्लज्जता क्योंकर होती होगी ?

वह कौशिक वंशज आज ऐसा निर्जीव था तो भी अभी तक गर्व कैसे धारण करता था ? किसने उसके मस्तिष्क में गर्व पैदा किया था ?

क्या 'माणभट्ट' ने झूठी बातों से यह धुन पैदा की थी? क्या उसकी माता द्वारा कही बातें पोषित हुई थीं? क्या उसके पुरोहित ने यज्ञोपवीत देकर यह भ्रम पैदा किया था? उसे अपनी स्थिति का ख्याल अभी तक क्यों नहीं हुआ? अभी तक पानीपत, प्लासी व खड़की की बात किसीने क्यों न की? और उसके पिता सबसे बड़े थे, यह भ्रम क्यों पैदा हुआ? स्मिथ बड़े सत्ताधीश थे; उसे अधिक वेतन मिलता था। वह वाइसराय समस्त देश का राजा था; उसे लाखों रुपये मिलते थे। उसके पिता कभी स्मिथ या वाइसराय न होंगे, और तो भी उनके आसपास के लोग उन्हें 'देव' व 'राजा' व 'अन्नदाता' कहकर बुलाते थे। क्या उसके पिता नगर व जाति में पैसावाले व सत्तावाले थे, इससे यह भ्रम होता था? क्या चार सौ परिवारों की छोटी-सी जाति के क्षुधार्त व अशिक्षित जन-समूह पर सत्ता चलाने वाले पुरुषों में उसके पिता अग्रगण्य थे? जब लोग प्रतिष्ठा व महत्ता की बातें करते थे, तब क्या केवल चार सौ परिवारों को उद्देश कर बोलते थे? सुदर्शन घबराहट से, द्वेष से, ऐसे प्रश्न अपने को पूछने लगा। प्रत्येक नगर में सौ-पचास जातियां थीं, और प्रत्येक जाति में दस-पन्द्रह 'राजा' व 'देव' थे। ऐसे अगणित नगरों से भारत बना था। भारत के समान अनेक देश दुनिया में थे, और उन सब पर एक कोने में पड़े हुए द्वीप के पुत्र—क्रॉमवेल व चेथम के उत्तराधिकारी—थोड़े स्मिथ जाकर सत्ता चलाते थे; और तो भी प्रत्येक जाति के 'देव' व 'राजा' अज्ञानता के अन्धेरे में अभिमान से कैसे छाती फुलाते थे?

और क्या यह भ्रम माभाई सेठ उपस्थित करते थे? क्या प्रत्येक व्यक्ति स्मिथ की कृपादृष्टि के अनुसार अपनी महत्ता का माप न करते थे? क्या स्मिथ को जो अधिक प्रिय हो वह अधिक बड़ा था?

सुदर्शन के हृदय में अग्नि जलने लगी, और भ्रम में भटकते हुए अन्धे की आंखें खोल उनकी अधमता का दर्शन कराने का जोश प्रकट करती थी।

पांच

विप्लव-प्रेम

: १ :

निराश हृदय में सपनों का उद्‌भव नहीं होता, इससे स्वप्नरहित सुदर्शन सरलता से मैट्रिक की परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ। पिता, माता, सगे-सम्बन्धी आदि सब लोग बहुत खुश हुए। केवल सुदर्शन के मन में हुआ कि 'रतन बाई' को एक घुंघरू अधिक बांधा गया।

इस समय सुदर्शन गंभीर, अकेला व मितभाषी बन गया था। निर्जीवता के विचार ने उसका सब उत्साह ले लिया था, पर प्रथम प्रयास में मैट्रिक में उत्तीर्ण हुए विद्यार्थी को कोई निरुत्साही मानेगा?

अवस्था व अनुभव के साथ उसकी व्यवहार-बुद्धि बढ़ी और उसकी तीव्र दृष्टि में वस्तुएं सच्चे स्वरूप में दिखाई देने लगीं और परीक्षा के पश्चात् छुट्टियां उसने चारों ओर देखने में, यथासम्भव पढ़ने में व सपनों के भग्न-गौरव खण्डहरों में भटकने में बिताईं।

अल्पता के विष का सम्पूर्ण आस्वाद लेने का विचित्र शौक उसे हो गया, और जिन पुस्तकों से इसका पोषण हो, उन्हें वह पढ़ने लगा। अपनी अधमता अपनी दृष्टि से देखने की अपेक्षा दूसरे की दृष्टि से देखने की उसे इच्छा हुई।

जोश से भरी हुई व द्वेषयुक्त तृषा से उसने मेकाले का बंगाली बाबू का वर्णन पढ़ा। वे माभाई-बाबू थे, झूठे थे, निर्जीव थे, धोखेबाज थे। फिर आणंद स्टेशन पर मिलने वाली पादरियों की टीका से समलं-कृत पुस्तकें उसने पढ़ीं। 'मानव-धर्मशास्त्र', 'रामायण' व 'महाभारत'

की टीकाओं के अन्तर्गत विष उसने अघोरी की लिप्सा से पिया। राम महत्वहीन, भीष्म निर्वीर्य, व कृष्ण बदमाश था; ब्राह्मणत्व में नीति नहीं थी, योग में शक्ति नहीं थी, शास्त्रों में संस्कृति नहीं थी और बुद्धिमत्ता, विनय, नीति व संस्कृति पेलेस्टाइन के मल्लाहों के गुरू नेज़रथ के पास ही थी। इस दृष्टि-बिन्दु से सुदर्शन बहुत दुःखित हुआ।

टेलर ने उसे प्रमाणित कर दिया कि जिस प्रकार त्रस्त जनता को बचाने के लिए ईसामसीह आये थे, उस प्रकार भारत को बचाने के लिए अंग्रेज़ आए थे। रुडयार्ड किपलिङ्ग और कितने ही अंग्रेज़ी उपन्यासकारों की कहानियां पढ़कर उसे विश्वास हो गया कि भारत में साहब व मेमसाहब के अपूर्व युग्म बसते हैं; और बाकी बदमाश, आलसी व नीच बबर्ची लड़के, पंखा खींचनेवाले नौकर और मदारी साहबों को रिझाने के लिए जन्म धारण करते हैं। अंग्रेज़ी पत्रों में प्रकाशित चित्रों का उसने विषपान किया, जिनमें भिखारियों को भावी भारतीय और मदारी तथा वेश्या को भारत की विशिष्टता के रूप में चित्रित किया गया था। ये सब राष्ट्र का अपमान करने वाले विजय के नशे में केवल अपने संसर्ग में आये हुए थोड़े से क्षुद्र मनुष्यों को ही भारतीय कहते हैं, इस सत्य का सुदर्शन को ख्याल न रहा। उसे तो पहले ऐसा ही मालूम पड़ा कि ये सब बातें सत्य हैं। उसके जंगली व निर्जीव पूर्वजों ने अज्ञान व अन्धकार से परिपूर्ण संस्कारों की रचना की; उसके नपुंसक व नीच स्पर्धामित्रों ने देश को छिन्न-भिन्न किया; और लोभी ब्राह्मण खूनी ठग आदि ने सबके प्राण लेने की तैयारी की। क्लाइव कलकी अवतार के रूप में आया; मेकाले ने बुद्धपद का मार्ग प्रदर्शित किया; और ब्राह्मण व ठग से मुक्त अवनि पर वे धीरे-धीरे संस्कारयुक्त बनते हुए साहबों की अमर छाया के नीचे जीवन व्यतीत कर रहे थे।

इन सब पुस्तकों को सामने व्यवस्थित कर, उनमें से निकलते हुए विष को पी-पीकर वह पागल-जैसा हो गया। वह गुर्राता हुआ, दांत पीसता हुआ पड़ा रहता था और रात-दिन वह एक ओर पिंडारियों,

ठगों, मदारियों व पंखा खींचनेवाले नौकरों से सुशोभित सपनों की वेदना सहा करता था; दूसरी ओर अपने जातिभाई माभाई व अन्य बड़े व्यक्तियों के प्रति अपने लोगों के निर्जीव रहन-सहन के प्रति वह क्रूर तिरस्कारवृत्ति के जोश का अनुभव करता था। उसे संध्या करना अच्छा नहीं लगता था; कितनी ही पीढ़ियों तक सन्ध्या की पर लाभ क्या हुआ? उसे महादेव के दर्शन करना अच्छा नहीं लगता था; इतनी शताब्दियों तक उसने पूजा की, तो भी उसने कौनसा मीर मार लिया? सब उसके दुश्मन थे। सब उसे कुचल रहे थे। उसकी सृष्टि में गौरव का एक बिन्दु भी नहीं था, जीवित रहने में कोई आनन्द नहीं था।

उसकी मानवता की अमेय गहराई में से एक काला घोर भयानक बादल उठा, और उसने धीरे-धीरे उसकी घबराहट, उसकी निराशा, उसकी अल्पता के विचार और उसकी तिरस्कार-वृत्ति को घेर लिया। उसके अन्धकार में सपने देखने की शक्ति जाती रही, और ऐसा मालूम पड़ा, मानो उसके मृतप्राय उत्साह का क्षीण होता हुआ चेतन बुझ गया हो। इस बादल द्वारा प्रसारित अन्धकार ने वैदिक वृत्र के समान उसके जीवन को लपेट लिया। अनन्त कालरात्रि उसकी आत्मा पर उतर आई। घबराहट से प्राण निकलते हों, ऐसा उसे मालूम पड़ा।

बहुत बार बहुत छोटी बात मानव-हृदय में तूफान पैदा करती है। बुढ़ापा देख शाक्यमुनि बुद्ध हुए; मूषक देख दयानन्द महर्षि बने। एक अविचारी लड़की के हास्य से सुदर्शन के जीवन पर घिरा हुआ बादल बिखर गया।

उसके पड़ोस में एक दूसरी जाति की लड़की थी। वह सुदर्शन से एक-दो वर्ष छोटी थी। जब-कभी वे दोनों मिलते, हंसते और यदि सुदर्शन का मस्तिष्क गाम्भीर्यग्रस्त न हो तो कुछ खेलते थे।

सुदर्शन को स्त्रियां अधिक अच्छी नहीं लगती थीं। उन्हें देखकर उसे जरा क्षोभ होता था। उसका मन्तव्य था कि स्त्रियां संयुक्ता के समान पृथ्वीराजों के पैर पकड़ नीचे झुकने के लिए ही उत्पन्न की गई

थीं। अपने जीवन में स्त्री के लिए कोई स्थान नहीं है, यह उसे नहीं दीखा था। एक दिन उसके माता-पिता उसके विवाह की बातें करते थे, जो उसने सुनीं। उसे भी विवाह करना पड़ेगा, यह दृष्टि-बिन्दु उसका कभी हुआ ही नहीं था। यह दृष्टि-बिन्दु अब उसमें आया। दूसरे दिन उसे गमन मिली। उसका विवाह होने वाला था, ऐसी बातें होती थीं।

'गमन ! क्या तुम्हारा विवाह होने वाला है ?'

'हां, मेरे पिताजी बातें करते थे।' लज्जा से हँसते हुए मुख से गमन ने कहा। 'आपका विवाह कब होगा ?'

'मैं विवाह नहीं करूंगा।'

'ऐसा कहीं हो सकता है ?' जरा हिचकते हुए गमन ने कहा।

'हां, बहुत से लोग ब्रह्मचारी रहते हैं।'

संसार में रस लेने वाली गमन हँसी। 'आप से कहीं ब्रह्मचारी रहा जा सकता है ? आपके पिता अवश्य विवाह करवा देंगे। पर कहिये तो सही,' जरा सिर नीचा कर लड़की ने कहा, 'आपको विवाह करना अच्छा क्यों नहीं लगता ?'

'मैं किसीको पहचानता नहीं, किससे विवाह करूं ?' विचार करते हुए सुदर्शन ने कहा।

'आपकी माताजी तो पहचानती होंगी न ?'

'इससे मुझे क्या ?' सुदर्शन ने गाम्भीर्य से कहा, और प्रत्येक बात में अपनी अवस्था से अधिक गाम्भीर्य रखने की आदत रहने से अनजान लड़की से विवाह करने का भय उसे बड़ा मालूम पड़ने लगा, और उसके मुंह से निकल गया, 'मैं तो तुमको पहचानता हूँ।'

लड़की जोर से हँसी, 'मुझसे कहीं विवाह किया जा सकता है ?' वह हँसी। उसने सुदर्शन की ओर भय से देखा।

'क्यों नहीं ?'

'मैं क्या आपकी जाति की हूँ ?'

'उससे क्या ?' जिद से सुदर्शन ने कहा।

'मैं तो दूसरी जाति की हूँ ।'

'उससे क्या ?' ओंठ-पर-ओंठ दबाकर सुदर्शन ने फिर से कहा ।

'विवाह नहीं किया जा सकता है । कहीं पागल हुए हो ?' कहकर गमन चली गई । इतना बड़ा लड़का इतना नहीं समझता यह उसे विचित्र मालूम पड़ा ।

सुदर्शन भयङ्कर वृत्र के पन्जे में था । भयानक व्यग्रता उसकी आत्मा में थी और उस लड़की का हास्य, और उसने जिस निश्चलता से निषेधात्मक उत्तर दिया था, इन दोनों से वह क्षण-भर के लिए जिद्द करने लगा । अन्धकार का अन्तिम जल सिर पर से फिर जाय उसके पहले जिद्द को अन्तिम चोट लगी और वह ऊपर आया ।

वह गंगा भाभी के पास गया । 'माताजी, आप मेरे विवाह की बातें करती थीं, पर मुझे विवाह नहीं करना है ।'

गंगा भाभी हंसी । 'तू इतना बड़ा हुआ, पर कभी तो ऐसी बात करता है....'

'यदि मेरा विवाह करना हो तो गमन के साथ करना ।' उसने आज्ञा की ।

'अरे क्या पागल हुआ है ?'....इन्हीं शब्दों से उसके मस्तिष्क में बिजली का कड़ाका हुआ........बादल फटा । उसने दांत पीसकर पैर पटका और आंखें निकालकर वह बोला—'हां, हां, मैं पागल हुआ हूं । और कुछ कहना है ? यह मत करो और वह मत करो । मैं कुछ नहीं मानूंगा,' कहकर पैर ठोककर वह जीना पर चढ़ गया ।

: २ :

सुदर्शन की नस-नस में ऐसी सांय-सांय की आवाज़ होने लगी जैसी कि देवदारु के वन में होती है । उसका छोटा शरीर उग्रता से

काँपने लगा। उसकी आंखों में तेज़ चमकने लगा। उसके हृदय की गहराई में तूफ़ान मच गया। इस निर्जीव प्रसंग से उसके जीवन से लिपटा हुआ भयंकर बादल घबराहट पैदा करनेवाले वातावरण को दूर कर बरसने लगा।

'मेरे पूर्वज निर्वीर्य, मेरा देश दरिद्र, मेरा इतिहास तुच्छ, मेरा समाज संकुचित, मेरी जाति छोटी, मेरे पिता नौकर, मेरे सम्बन्धी कुत्ते, मैं रतनबाई; मैं लड़ नहीं सकता, मैं वाइसराय नहीं हो सकता, मैं शिवाजी नहीं हो सकता, मैं सगर नहीं हो सकता, मैं विश्वामित्र नहीं हो सकता, मैं अविवाहित नहीं रह सकता, मैं गमन से विवाह नहीं कर सकता, मैं—मैं—मैं कुछ नहीं कर सकता। सबने मेरे लिए सब तैयार कर रखा है, और मुझे सबके पैर चाटकर अपना जीवन पूरा करना चाहिए। मैं नहीं करूंगा। मेरा कोई नहीं है, मेरे पूर्वज नहीं हैं, पिता नहीं है, माता नहीं है, स्त्री नहीं है। मैं ब्राह्मण नहीं हूँ, भारतीय नहीं हूं; नहीं, नहीं, मैं तो मैं ही हूं। मैं किसी का बनाया हुआ स्वीकार नहीं करूंगा, मैं किसी का कहा नहीं मानूंगा, मैं सब तोड़ डालूंगा। मुझे चारों ओर से कुचला जा रहा है, पर मैं नहीं कुचला जाऊंगा। मैं सर्जन नहीं कर सकूंगा, पर नाश तो अवश्य कर सकूंगा। मैं किसीका बंधा हुआ नहीं हूँ। मैं भले ही मरूंगा पर सब तोड़-फाड़ कर साफ करूंगा।'

उसकी घबराहट जाती रही। आंधी की भयङ्करता ने स्वभाव व संस्कार की जड़ें उखाड़ दीं। प्रलय की मूसलाधार वर्षा सब धोकर बहने लगी। बचपन से भरा क्रोध उसको प्रेरित करने लगा। वह अपने टेबल के पास गया और इतिहास व कहानियों की प्रिय पुस्तकें टेबल के नीचे डालीं। 'धोखेबाज़! वहां पड़ी रहो। मुझे अब तुमसे कोई सरोकार नहीं है।' उसका छोटा शरीर चढ़ाये हुए धनुष के समान खिंचा हुआ था, और बाण छोड़ने के लिए अधीरता से जरा-जरा में

उठता था। उसके हृदय के तूफान ने हास्यजनक पागलपन का स्वरूप धारण किया।

जल्दी से वह पड़ोस के मंदिर में जा पहुंचा। महादेव की प्रार्थना या उनसे शिकायत करने की उसे जरा भी परवाह नहीं थी। वह धृष्टता से अपने देवाधिदेव के पास गया।

'यहां बैठे-बैठे क्या करते हैं? कितने ही वर्षों से आपकी पूजा की, आपको रिझाया, आपकी आराधना की; तो भी अन्त में हमारी व आपकी यह दशा हुई! वृद्ध व निर्जीव बने हुए देव! आपके समान अशक्त की पूजा आज से मैं नहीं करूंगा। आप मेरे देव नहीं, मैं आपका भक्त नहीं। आप अपने रास्ते और मैं अपने रास्ते।' इतने में उसकी दृष्टि अपने जनेऊ पर पड़ी और उसने आंखें निकालीं। उसने एकदम जोर से जनेऊ निकाल डाला, और इतने वर्षों तक जिसे परम पवित्र माना था उसे तिरस्कारपूर्वक देखता रहा। 'रस्सी! धागे! आज से तेरा सेवन न करूंगा।' वह कहकहा मारकर हंसा। 'बलमस्तु तेजः'— बल व तेज मुझमें—हम में। नहीं-नहीं। तेरा सेवन किया व बल गया, तेज गया। तुझे पाकर हमने क्या साधा? जब खड़की में पेशवा हारे तब तू कहां गया था? जा-जा' कहकर उसने असाधारण शक्ति से उसे तोड़ डाला, और पीछे देखे बिना वह मंदिर में से चला गया। अपने देव, अपनी पुस्तकें व अपने यज्ञोपवीत की दासता को दूर करने से उसे वातावरण में से घबराहट कुछ कम होती हुई मालूम पड़ी। अब वह जरा श्वास लेने लगा। वह पुनः अपने घर गया व प्रमोदराय की बैठक में जाकर उनके टेबल की ओर देखने लगा।

'तुम्हारा भी हमने स्वागत किया। तुम्हारी सेवा की और तो भी हमारी यह दशा! जाओ,' कागज़ों के ढेर को अंग्रेज़ी सत्ता का प्रतिनिधि मान उसने सम्बोधन किया—'जहन्नुम में......! आज से मैं तुम्हारा गुलाम नहीं हूँ। जो बने सो कर लेना। मैं देख लूंगा।' उसने मुट्ठियां बाँध कर कहा।

एकदम उसने सामने पड़े हुए शीशे में अपनी उड़ती हुई शिखा देखी। एकदम उसे द्वेष से जोश आया। उसने टेबल पर से कैंची लेकर एक झटके से ब्राह्मणत्व का दूसरा चिह्न निकाल डाला।

उसे अब अच्छा लगा। अब वह स्वतन्त्र था, किसीका बंधा हुआ नहीं था। वह तीसरी मंजिल पर छत पर जाकर विनाश-वृत्ति से चारों ओर की छत देखने लगा।

प्रत्येक छत के नीचे अल्पता, अधमता, माभाईपन व अन्धकार के उसने दर्शन किये। वर्षा-ऋतु के छोटे कीटों के समान छोटे मनुष्य हरे पत्थर-जैसे गन्दे छतों के नीचे चले जाते थे। प्रत्येक पत्थर की निश्चे-तन जड़ता घबराया या कुचला करती थी। एक पत्थर के त्रास से वे जनेऊ धारण करते थे, एक पत्थर के त्रास से वे मन्दिर में जाते थे, एक पत्थर के त्रास से वे विवाह कर लेते थे, एक पत्थर के त्रास से वे एक-दूसरे को रिझाते थे, एक पत्थर के त्रास से वे माभाई सेठ बन चाय बनाने जाते थे, एक पत्थर के त्रास से वे उसी प्रकार लिपटे रहकर पीढ़ियों से चला आता निर्जीव धंधा करते थे। पत्थर अगणित थे। पत्थरों की छाया प्रत्येक जीवन पर फैलती थी। एक भी पत्थर की घबराहट के बिना कोई जीवित नहीं रहता था। उसने अकेले ने ही इन सब पत्थरों को फटकारा था। उसने अकेले ने ही इन पत्थरों की छाया का तिरस्कार कर, व्योम के नीचे अकेले रहने का निश्चय किया था। वह अकेला था, पत्थर अनेक थे; वे उसे त्रसित करते थे, तो भी निडर था। उसने छतों को घूंसा बताया। 'प्रत्येक पत्थर को तोड़-फोड़कर चकनाचूर करूंगा।' वह बड़बड़ाने लगा। 'मैं अकेला काफी हूँ। मैंने अकेले ने तुम्हारे बंधन में से निकल जाने की हिम्मत की है। मैं अकेला पूरा पड़ूंगा।' और प्रत्येक छत को किस प्रकार तोड़ना चाहिए, इसका वह विचार करने लगा।

उसकी छत सबसे खराब थी। उसके नीचे उसने अल्पता का आस्वादन किया था। उसका ब्राह्मण-जीवन चला गया था। उसकी

स्वप्न-सृष्टि का विनाश हुआ था। सब पत्थरों में यह पत्थर विविध रंग-वाला व अधिक त्रासदायक था। उससे वह आज मुक्त हुआ था। उसके नीचे से निकल दूर जाकर वह विरोध से सामने खड़ा था। इस पत्थर को तोड़ अपनी नई स्वतंत्रता मनाने का उसने सङ्कल्प किया। इस पत्थर को तोड़ना सरल मालूम पड़ा। वह एकदम उठा और एक छलांग मारकर उस पत्थर पर—छत पर—जा बैठा। अब इस दुष्ट पत्थर के ऊपर वह था, नीचे नहीं था। उसने नीचे झुककर पत्थर को तोड़ना शुरू किया। उसके हाथ में जल्दी-जल्दी पत्थर के टुकड़े आने लगे, और उन्हें दूर फेंकने पर वे चकनाचूर होने लगे। उसे विजय का नशा चढ़ने लगा। वह जल्दी-जल्दी पत्थर को चूर-चूर करने लगा।

प्रमोदराय शाम को घर आये तो टेबल पर सुदर्शन की शिखा के बाल पड़े हुए देख उनके क्रोध का पार नहीं रहा। क्या लड़का इतना बिगड़ गया कि उसने शिखा काट डाली? उग्र रावबहादुर ने 'सदु! सदु!' कह आवाज़ दी, पर उत्तर नहीं आया। पर इतने में छत पर कोई बालू निकालता हुआ मालूम पड़ा। उनकी समझ में नहीं आया और वे क्रुद्ध हुए। वे एकदम छत पर गये और देखा कि सुदर्शन कवेलू उठाकर फेंकता था, व हंसता था।

'सदु, क्या करता है?'

उत्तर में एक बड़ा कवेलू उनके पास आकर गिरा, और सुदर्शन ज़ोर से हंसने लगा। रावबहादुर ने उसे पास बुलाया, पर वह नहीं आया। अन्त में रावबहादुर छप्पड़ पर चढ़े और बड़ी मेहनत से उन्होंने सुदर्शन को पकड़ा।

उन्होंने ज्यों ही सुदर्शन को पकड़ा त्यों ही वह ढीला शरीर बनाकर उनके हाथ में गिर पड़ा। रावबहादुर ने चिन्तित होकर उसके सिर पर हाथ रखा। सुदर्शन का सिर अंगारे के समान जलता था।

परीक्षा का श्रम, निराशा व चिन्ता, इन तीनों ने सुदर्शन के कोमल शरीर व मस्तिष्क पर भार डाला था, इससे बहुत दिनों तक वह बीमार

रहा; और उसकी चिन्ता में उसके माता-पिता उसके आखिरी पराक्रम भूल गए। और उसके विवाह का विचार तुरंत ही रोक दिया।

जब बीमारी दूर हुई तब सुदर्शन का स्वभाव बदल गया। वह जिद्दी व चिड़चिड़ा बन गया। वह अकेला ही था, और अकेले ही उसे सबका खण्डन करना है, यह विचार माता-पिता के वात्सल्यपूर्ण प्रेम या सम्बन्धियों की स्नेहपूर्ण परवशता में भी नहीं गया; और रुग्ण व्यक्ति की रोगिष्ट एकाग्रता से उसे प्रभावित करने लगा। और ज्यों-ज्यों वह अच्छा हुआ त्यों-त्यों लाड़ले लड़के की सुंदर मनोदशा के बदले आजन्म बलवाखोर की कठिन, एकाग्र व जोशीली मनोदशा का वह अनुभव करने लगा।

इसके स्वास्थ्य, उसकी उमर, माता-पिता का स्नेह आदि अनेक कारणों से उसे बड़ौदा कालेज में भिजवाया गया। 'बोर्डिङ्ग' का नया जीवन, दूसरे लड़कों की संगति और स्वतंत्र जीवन के विविध आकर्षणों ने पहले तो उसे मुग्ध किया; पर थोड़े समय में वह मोह कम हुआ और पहले की वृत्तियां सतेज हुईं।

उत्तम स्वास्थ्य व स्वतंत्र वातावरण से उसे नया प्रकाश व नई शक्ति प्राप्त हुए। उसे अपना ज्ञान अल्प, निरीक्षण अल्प, दृष्टि-मर्यादा संकुचित व बुद्धि निष्प्रयोजन मालूम पड़े। उसे यदि पुरानी सृष्टि के स्तम्भ उखाड़ना हो तो उस सृष्टि का, उसकी रचना का, उसके पाये का व उसकी भावना का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना चाहिए; और विनाश के साधन, पद्धति, क्रम आदि का निश्चय करना चाहिए। केवल इच्छा से कार्य नहीं किया जा सकता, इसका विश्वास हो गया।

बड़ौदा-कालेज का पुस्तकालय व वाचनालय उसकी पहली आशा सफल बनाने में उपयोगी सिद्ध हुए, और 'प्रीवियस क्लास' के विद्यार्थी की समझ में न आए, ऐसे विषयों व विचारों में वह मग्न हो गया। यह सब वाचन विद्वत्ता प्राप्त करने के लिए नहीं था, पर विनाश-वृत्ति को सबल व समृद्ध करने के लिए था। किसीको विचार नहीं था कि यह

छोटा-सा लड़का, लड़की-जैसा पन्द्रह वर्ष का बालक रात-दिन सांस लिये बिना जो पढ़ा करता था, वह स्वतः सामाजिक विज्ञान-शास्त्री बनने व अपने को सामाजिक 'डायनेमाइट' बनाने के द्विविध प्रयोजन से प्रेरित हो रहा था; और उसकी कल्पना के सामने सदा ही समाज, सत्ता व धर्म के अत्याचारी पत्थरों को चकनाचूर करना ही परब्रह्मप्राप्ति रूप में खेला करता था।

: ३ :

पर इस समय उसने अपने बहुत-से स्वप्नमित्रों का परिचय छोड़ दिया था। उसे मालूम पड़ा कि अपने केवल शुद्ध विनाशक प्रयोगों में वे अधिक सहानुभूति नहीं दरशाते थे; इससे वह स्वतः ही उनके प्रति तटस्थ हो गया।

प्राचीनों में केवल भगवान् और्व उसके पक्ष में रहे। कुल व संस्कृति के उच्छेदक वीतहव्यों का गर्भ में मे द्वेष करने वाले महर्षि, जिन्होंने जीवन-भर जोश धारण कर समुद्रपर्यन्त वैरवह्नि की ज्वाला प्रसारित की, ऐसे निश्चल द्रष्टा उसके निरुत्साही क्षणों में उसे उत्तेजना प्रदान करते थे। उनका ऊंचा व सूखो लकड़ी-सा शरीर, उनकी सफ़ेद लम्बी व विकराल एढ़ी, उनकी अंगारे के समान जलती हुई आंखें और उनके कड़े व क्रूर मुख का भयानक भाव उसके निरुत्साही हृदय को हमेशा प्रेरणा प्रदान करते थे।

अर्वाचीनों में भी उसका केवल एक मित्र रहा—अंगरेज़ों का कट्टर शत्रु नेपोलियन। छोटे इतिहास में दी हुई उसकी सुन्दर रूपरेखा ने उसे आकर्षित किया था, और उसकी भव्य मुखाकृति ने उसे मुग्ध किया था। ज्यों ही वह कालेज में गया त्यों ही तुरन्त उसने हाथ में आये पैसों का उपयोग बम्बई के पुस्तक-विक्रेता के पास से उसका जीवन-चरित्र मंगाने में किया। पुस्तक-विक्रेता ने उसे एबट कृत 'नेपोलियन' भिजवा दी।

एबट कृत 'नेपोलियन' पुस्तक झूठी हो, अतिशयोक्तिपूर्ण हो या भक्तिस्तोत्रों से भरपूर हो, पर गीता के समान, प्लुटार्क के समान, उसमें मानवता प्रेरित करने का परम प्रयास है। उसमें से फ्रेन्च सम्राट् का व्यक्तित्व सुन्दरता व स्पष्टता से बाहर निकलता है। उसकी सहायता से उसके पराक्रमी कारनामों से सहयोग साधते हों, ऐसा भ्रम पैदा होता है। सुदर्शन उस पुस्तक को पढ़ने लगा; और ज्यों-ज्यों वह पुस्तक को एकाग्र भाव से पढ़ता गया त्यों-त्यों उसमें वर्णित जीवन की महत्ता की धाराएं उसे नहलाने लगीं, परिप्लावित करने लगीं, और उसकी मानवता का प्राचीन ढङ्ग बदल नया ढङ्ग बनाने लगीं।

उस पुस्तक के पृष्ठ पर सटी हुई छोटी 'टाइप' में से सुव्यवस्थित, छोटी घास में सर्जनकाल से शान्तिपूर्वक सोये हुए, किसी महान् देव के देह की रूपरेखा उड़ती होउ स प्रकार एक आकृति प्रकट हुई। उसे वह भूरा 'ओवरकोट' व त्रिकोणी टोपी धारण किये हुए व बख्तर से दुर्जय जामे से तेजस्वी तथा मोटी व छोटी मालूम पड़ती थी। मानव-जीवन के प्रतापी प्रातःकाल के आदर्श के समान अर्वाचीन महावीर की छाती पर उसने हाथ रखे थे। संगमरमर के समान सफेद मुख पर देवों को भी दुर्लभ शान्ति अमर्त्यों के प्रताप से प्रसारित करती थी। सुन्दर ओंठ निश्चलता से बंद किये हुए थे। नाक का गाण्डीव गगनवेधी आकांक्षाओं को खींच रहा था। अचल भाल पर उग्र एकाग्रता तृतीय नेत्र की ज्वलंत विनाशकता में विराजमान थी, और गहरी आंखों की भव्य स्थिरता में दिखाई देते सर्जन व संहार की वह्निज्वाला के विविध रङ्गों में एकाग्र मानवता की ज्योति चमकती हुई मालूम पड़ती थी। और ज्यों-ज्यों उसका व्यक्तित्व सुदर्शन के सामने विकसित होता गया, त्यों-त्यों उसने नेपोलियन को अपने पराक्रम फिर से करते देखा। उसकी विजयी आज्ञा से टुलोन व लोदी के क्षेत्र गरजने लगे, उसके भयंकर उत्साह ने मिश्र व सीरिया के रणक्षेत्रों की जलती हुई विषमता प्रसारित की, और आल्प्स के हिमग्रस्त शिखरों को परास्त किया। त्रिपुरारि के

त्रिगुणातीत प्रताप से उसने जीना, मेरेंगो व ऑस्टरलीज़ के ताण्डव खेले, और मॉस्को से लौटते समय पराजय में विजेता की महत्ता प्रदर्शित की। वाटरलू में उसका पतन हुआ; सेन्ट हेलेना में वह अभंग गौरव से लड़ता रहा। फ्रांस की वह आत्मा, आदर्श व विधाता बना। यूरोप का उसने संहार किया और नये प्राण अर्पित कर उसे पुनः जीवन-दान दिया। सृष्टि-भर के एकांकी सम्राट् की अवर्णनीय भव्यता से पुनः वह जीवित हुआ, घूमने लगा गरजने लगा, और सुदर्शन के सपनों को समृद्ध बनाकर उसकी मानवता को नये तेज से उसने चमकाया।

: ४ :

कोमल सुदर्शन के एकाकी जीवन में ऐसे सपनों के लिए स्थान होगा ऐसा उसके साथी कदाचित् ही सोचते थे। वह आकर्षक था व बुद्धिशाली दिखाई देता था। इससे संगति से होने वाले लाभ उसे प्राप्त नहीं हुए, तथा उससे होनेवाले परिचय ने उसके सपनों पर आक्रमण नहीं किया। कभी-कभी उसे अलग-अलग धुन सवार होती; नहीं तो खिन्नता उसका हृदय दबा देती थी।

कालेज के अध्ययन तथा अपनी विनाशक-वृत्ति समृद्ध करने के लिए लगातार वाचन से उसे किसी भी प्रकार की मनोदशा बदलने का समय रहता नहीं था। उसे कोई भी खेल आकर्षित नहीं करता था, और शारीरिक विकास की उसे परवाह नहीं थी। जब क्रिकेट का 'मैच' या टेनिस का 'टूर्नामेण्ट' होता तब सुदर्शन को बगल में पुस्तक दबाकर कालेज की किसी गुम्बज की ओर एकान्त की खोज में जाते हुए देखने की आदत उसके सहपाठियों को पड़ गई थी। गुम्बज में पड़े-पड़े या छत पर टहलते हुए वह पढ़ा करता या सपने देखा करता था।

कालेज में जाने के दो महीने बाद रामलाल देसाई के साथ उसका परिचय हुआ। रामलाल जो कि कालेज में अपने व अपने पिता के नाम

के पहले अक्षर से 'आरबी' या 'अरब्बी' नाम से जाना जाता था, सीनियर बी. ए. में था। वह इस छोटे लड़के की ओर आकर्षित हुआ।

'आरबी' का अन्तर निर्मल व उत्साह सर्वग्राही था। वह प्रामाणिक व शुद्ध था व सबकी ओर स्नेहपूर्ण भाव से देखता था; और गम्भीर भावों को समझने में अशक्त होने पर भी सुन्दर भाव को स्थिर व शाश्वत रूप में टिकाये रखने में निपुण था। उसका उत्साह गगन-स्पर्शी नहीं था। उसी प्रकार कभी कम भी नहीं होता था। उसकी जिज्ञासा की मर्यादा में जीवन के सब क्षेत्र व प्रश्न आ जाते थे, और प्रत्येक विषय का उसका ज्ञान अल्प पर निश्चित था। वह पुस्तकों की अपेक्षा समाचार-पत्रों का भक्त था, और विशेषकर भारत की प्रत्येक प्रवृत्ति के बारे में कुछ-न-कुछ नया लड़कों को कह सकता था। ईश्वर व धर्म, लोक-शासन या स्त्री-स्वातंत्र्य, जाति व विधवा-विवाह, अंग्रेजी सत्ता व स्वदेशी अभिलाषा आदि सबके बारे में उसके विचार आगे बढ़े हुए थे। वह प्रो० जगजीवन शाह की प्रेरणा से बंधा था, ऐसा कितने ही मानते थे, तो भी उसे प्रगति के पैगम्बर की पदवी बड़ौदा कालेज के विद्यार्थी देते थे। विद्यार्थियों में जो प्रगतिवाद का पंथ था उसका वह नेता था, और 'डिबेटिङ्ग सोसायटी' में पुराने विचारों को तिरस्करणीय प्रमाणित करने में मुख्य भाग लेता था।

'आरबी' के संसर्ग में आने पर सुदर्शन को अपना अधूरापन दिखाई दिया। देश-सुधार की जो प्रवृत्तियाँ चारों दिशाओं में व्याप्त थीं, उनसे वह अनभिज्ञ था; और 'आरबी' कांग्रेस व समाज-सुधारक कॉन्फ्रेन्स, ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज व थियोसोफी, केनिङ्ग की घोषणा, रिपन की राजनीति व कर्ज़न के कारनामे आदि के बारे में अच्छी तरह से बातें कर सकता था। सुदर्शन व 'आरबी' एक-दूसरे के प्रति आकर्षित हुए; और अल्पकाल में इन दोनों के बीच गाढ़ी मैत्री स्थापित हो गई।

सुदर्शन को अपने ज्ञान का अधूरापन खला। 'आरबी' से बातचीत करने में अपने दृष्टि-बिन्दु की संकुचित मर्यादा उसे स्पष्ट दिखाई दी।

जोश से वह उस मर्यादा को विकसित करने लगा, और दर्शन की समझ में न आए ऐसी पुस्तकों से लेकर क्रमिक साहित्य के वर्तमान प्रश्नों तक बातचीत के प्रत्येक विषय का ज्ञान वह प्राप्त करने लगा।

ज्यों-ज्यों उसका ज्ञान बढ़ा, त्यों-त्यों उसकी विनाश-प्रधान दृष्टि मानव-जन्तुओं को त्रास देने वाले पत्थरों का स्पष्टीकरण करने लगी, और उसने बारीकी व सर्वग्राह्यता से सब विषयों का वर्गीकरण किया। 'आरबी' इस प्रयोग को देखने लगा और स्वत: से उत्पन्न किया हुआ भूत क्या करेगा व क्या न करेगा इसका विचार करने लगा। अपने प्रगतिवाद में से सुदर्शन का विनाशवाद कैसे प्रकट हुआ, इसका विचार करते हुए वह काँप उठा।

सुदर्शन ने त्रासदायक पत्थरों की पंक्तियाँ कीं।

मानव-साहस को निस्तेज बनाने वाले, निर्बलता का पोषण करने वाले, कृपा व क्रोध के द्वंद्व से मनुष्य-जीवन को दु:खित करने वाले ईश्वर को उसने पहली पंक्ति में रखा। उसने बहुत पढ़ा, बहुत सोचा पर एक भयानक कल्पना के अतिरिक्त वह और कुछ हो, ऐसा उसे मालूम नहीं पड़ा। उसके त्रास से मनुष्य काँपते थे और अपने हृदय को कुचल कर उसकी काल्पनिक कृपा के लिए गुलामों की अधमता से तड़पते हुए जान पड़े।

इस पंक्ति का दूसरा पत्थर आत्मा था। आत्मा ने स्वर्ग व नरक के बीच झूलने की निर्बलता पैदा की, पुनर्जन्म के लालच से लोलुपता को लाया, अपने ढकोसलों में मनुष्य-जंतु को सड़ने दिया। ये ढकोसले धर्म की संस्था के नाम से परलोक का लोभ बताकर अन्धकार का विस्तार करते थे, और सड़नेवाले जन्तु हिम्मत के अभाव में अपनी कायरता को विधि या नीति के समान सुन्दर शब्द से ढाँकते हों, ऐसा मालूम पड़ा।

पर इन दोनों से भयानक, विशालता के कारण त्रासदायक तीसरा पत्थर उसने इस पंक्ति में रखा। उसे वह 'अधमता का महापाषाण' कहता था। वह एक-एक सिद्धान्त का स्वरूप लेता था, और उस सिद्धान्त

को सुदर्शन समग्र महत्ता का सिद्धान्त कहता था। इस सिद्धान्त का वह इस प्रकार स्पष्टीकरण करता था—

किसी व्यक्ति की महत्ता उसे आदरणीय, प्रेरक व पूज्य लगी। ऐसे व्यक्ति की भक्ति में उसे सच्ची मानवता जान पड़ी। पर उस व्यक्ति के महान् होने पर उस प्रकार के सब व्यक्तियों का वर्ग बना, वह वर्ग महान् है ऐसा मान बैठने की क्रिया में ही मनुष्य जीवन के सब दुःख व सब अधमता का समावेश मालूम पड़ा। महान् गिने जाने वाले मनुष्यों की इस समग्र महत्ता के महापाषाण के नीचे सम्पूर्ण जगत् को उसने अधम जीवन बिताते हुए देखा।

एक पुरुष सच्चा वीर नर निकला; उसे राजा मान पूजा गया। वह पूजा उसे सार्थक मालूम पड़ी, पर यह पूजा वहीं रुकी नहीं। एक राजा पूजने योग्य है, इसलिए जो राजा कहा गया वह पूजने योग्य है, यह भ्रम फैला और पत्थर प्रकट हुआ। मनुष्य-जंतु उसके नीचे बैठने लगे। राजपद दैवी सत्ता का स्थान है, यह मन्तव्य प्रकट हुआ; पत्थर महापाषाण हो गया, और राजकीय अधमता का प्रारंभ हुआ।

कौशिक महान् थे, मंत्रद्रष्टा व संस्कारद्रष्टा थे। उन्होंने ब्राह्मणत्व को जन्म दिया। वे अर्घ्यार्ह थे। उनके पश्चात् अन्य बहुत-से ब्राह्मण पूजार्ह हुए। पर ब्राह्मण-योनि में ही महत्ता है, और उससे जहां-जहां ब्राह्मण है, वहां-वहां महत्व है—इस समग्र महत्ता के भ्रम ने वर्णाश्रम का महापाषाण रचा, और सामाजिक अधोगति का प्रारंभ हुआ।

एक पुरुष स्त्री से अधिक बलवान् व व्यवस्थावृत्तिवाला था। सामान्यतः बहुत-से पुरुष स्त्री से बल व व्यवस्था में बढ़कर रहते हैं और उतने अंश में पूज्य रहते हैं। पर फिर समग्र महत्ता का सिद्धान्त आया। जहां-जहां पुरुषत्व है वहां-वहां पूज्यता है। यह महापाषाण व उसके नीचे स्त्रियों के सुख व स्वातंत्र्य का किया गया सर्वनाश ही संसार है।

बहुत-से पुरुषों से बहुत-सी स्त्रियां अधिक सुकुमार, भावना-प्रधान व स्नेहपूर्ण हैं, और उतने अंश में वे सुख व शान्ति की विधात्री अवश्य

हैं। पर इस सिद्धान्त ने अंधश्रद्धा प्रकट की कि जहां स्त्री है वहां सुख है। और गृह-जीवन का महापाषाण रचा गया, कि स्त्री के बिना जीवन नहीं है। और इस पत्थर के नीचे पुरुष-जंतु आत्म-विकास को कुचल चिपके रहे।

एक धनाढ्य किसी को समृद्ध करे उससे वह उपकार का पात्र अवश्य है; पर उसमें से मिथ्या मन्तव्य उपस्थित हुआ कि समग्र धनिकवर्ग जनता को समृद्धि से सुख देनेवाला है, और उससे मानार्ह है। इससे पूंजीवाद का महापाषाण उद्भूत हुआ, और निर्धनता की काल्पनिक अधमता में गरीब लोग उसकी छाया में क्षुद्र जीवन पूरा करने लगे।

क्लाईव ज़बरदस्त था; केनिङ्ग व्यवहार-कुशल था; मेकॉले व रिपन उदार थे; कर्ज़न कार्यदक्ष था। पर यह सच्चा दृष्टि-बिन्दु भुला दिया गया, और 'महापाषाण' प्रकट हुआ—गोरे याने गुणशाली। और इस विचार ने माभाइयों को प्रकट किया और जातीय अधमता का आरंभ हुआ।

इस प्रकार जीवन के प्रत्येक प्रश्न का उसने क्रूरता से पृथक्करण किया और प्रत्येक में यही रहस्य उसे दीखा। प्रत्येक प्रकार की जो निर्जीवता उसे चहुंओर फैलती हुई जान पड़ी, उसका मूल कारण यही मालूम पड़ा कि इस काल्पनिक महापाषाण से स्त्री व पुरुष त्रस्त होते थे और तो भी उसकी छाया की मर्यादा में ही सुख मानते थे। इस पत्थर के विनाश में ही सुख, स्वातंत्र्य व मानवता उसे दिखाई दिये।

पर यह विनाश कुछ सरल नहीं मालूम पड़ा। यह भयङ्कर महा-पाषाण अद्भुत चिकनाहट से चिपका हुआ था। एक पत्थर है, इसलिए पवित्र है; वह पड़ा है, इसलिए आवश्यकीय है; और उसके हट जाने से सृष्टि का भङ्ग होगा—मनुष्य-हृदय के इन मिथ्या विचारों से यह चिकनाहट आती हुई उसे दिखाई दी।

वह ईश्वरविहीन व निडर बना; आत्माविहीन व निर्लोभ बना; समग्र महत्ता की बेपरवाही से उसका पूज्य भाव नष्ट हुआ। यह निडर,

निर्लोभ व मानहीन बालक डान क्विक्ज़ोट के उत्साह से इन तीनों पत्थरों का विनाश साधने की तैयारी करने लगा।

: ५ :

इतने में गुजरात में अहमदाबाद की अठारहवें कांग्रेस-अधिवेशन के बाजे बजने लगे।

'आरबी' का उत्साह अपरिमित जोश से उछलने लगा। उसने फीरोज़शाह मेहता, दिनशाह वाच्छा व रानडे को देखा था। गोकलदास पारेख, चिमनलाल सेतलवाड़ व अम्बालाल साकरलाल के साथ उसने बातचीत की थी। बहुत-से कांग्रेस के नेताओं के बारे में अनेक कथाएं उसने सुनी थीं। उसने कांग्रेस के भूतपूर्व सभापतियों के भाषण पढ़े थे।

उसने प्रत्येक कमरे में जा-जाकर कांग्रेस की कथा प्रारंभ की, और सब लड़कों के हृदय कांग्रेस की भक्ति से उछलने लगे। दिन व रात में पढ़ने को छोड़ उसकी गप्पें हांकने में 'आरबी' व उसके मित्र समय बिताने लगे।

इस अरसे में सुदर्शन दो-चार बार अहमदाबाद गया-आया, और कांग्रेस की तैयारी की धूमधाम उसने आंखों से देखी। उसके उत्साह का भी पार न रहा। मानो मोक्ष के दिन के उदित होने की तैयारी हो, इस प्रकार वह कांग्रेस-अधिवेशन की प्रतीक्षा करने लगा। 'आरबी' ने एक नया तूफान खड़ा किया। न जाने कहां से वह कांग्रेस-स्वयंसेवक होने के प्रार्थनापत्र ले आया और सबमें उनका वितरण किया। कांग्रेस में स्वयंसेवक बनना याने कांग्रेस देखना व जानना, उसमें सहायक बनना व देशसेवा करना, नेताओं को देखना व उनकी सेवा करना। 'आरबी' स्वतः सैनिक एकत्रित करने का अधिकारी बन गया व निरुत्साहियों को खड़ा करने में रुका।

सुदर्शन को ऐसा मालूम पड़ा मानो अपने सपने सिद्ध करने का

समय हाथ आया हो। देश को उन्नत व स्वतन्त्र बनाने का यज्ञ उसके नगर में होनेवाला था। उसका जो लक्ष्य था, उसे साधने के लिए हज़ारों भारतीय एकत्रित होनेवाले थे। क्षण-भर के लिए वह अपनी विनाश-वृत्ति भूल गया। इस यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए उसने भी स्वयंसेवक बनने की अरज़ी दी।

उसने अरज़ी दी है, यह बात उसने अपने पिता को लिखी। प्रमोद-राय नाराज़ हुए। सरकारी नौकर के लड़के की क्या हिम्मत कि वह कांग्रेस में जाय! सुदर्शन ने पत्र लिखे व पैर ठोके, वह रोया व बिल-बिलाया, पर रावबहादुर टस-से-मस न हुए। अन्त में समझौता हुआ व सुदर्शन को प्रेक्षक के रूप में जाने की इजाजत मिली। उसे अपने प्रति तिरस्कार व पिता के प्रति क्रोध आया। क्रोध में उसने 'आरबी' के पास से अरज़ी वापस लेकर फाड़ डाली, और स्वत: को 'रतनबाई' मान पराधीनता की वेदना का अनुभव करते हुए उसने अन्य स्वयं-सेवकों को देश के उद्धार के लिए आगे बढ़ते देखा।

१९०२ के शान्त, स्थूल, शुष्क व व्यवहार-कुशल अहमदाबाद को देश-भक्ति ने पागल बना डाला। एक प्रचण्ड राष्ट्रीय ऊर्मि उसकी नस-नस में फैल गई। उसकी गन्दी, सकरी गलियों में से कन्धे पर थैली ले निकलते हुए गुमारतों के बदले उत्साही नागरिक सुन्दर वस्त्र धारण कर राष्ट्रसत्र को सुशोभित करने के लिए निकल पड़े। अहमदशाह की राजधानी थोड़े दिनों के लिए राष्ट्र की राजधानी बन गई।

सुदर्शन के सपने इस नये प्रकाश में रंग गए। सब भारतीय मा-भाई सेठ नहीं थे, सब भारतीय पूंछ नहीं हिलाते थे, हज़ारों सेवा करने व बलिदान होने के लिए तैयार थे। लोगों की चिन्ता करनेवाला, देश की उन्नति चाहने वाला वह अकेला नहीं था, पर अनेक व्यवहार-कुशल, विद्वान् व अनुभवी नेता देश की जीवन-नौका खे रहे थे। वह हर्षित हुआ कि वह अकेला नहीं था; वह दु:खी हुआ, ये सब आगे बढ़े हुए खड़े थे और वह स्वतः छोटा था, और पीछे पड़ जायगा। जीवन में पहली

बार उसने लोगों का इतना बड़ा जमाव देखा और जमाव में ही प्रकटित होते उत्साह व भाव की दुर्जय वृत्ति का उसने अनुभव किया। उसकी दृष्टि में वे सब मनुष्य देव थे; और देश का स्वातन्त्र्य प्राप्त करने के लिए एकत्रित हुए थे। उस दिन उसे मालूम पड़ा कि इस देश में व इस समय में जीवित रहना भी एक सौभाग्य था।

'प्लेटफॉर्म' से बहुत दूरी पर वह मण्डप में आकर बैठा, और हज़ारों हिलते हुए सिरों पर से उसने चारों ओर देखा। इस बड़े जन-समूह में, उस विशाल मण्डप में उसे अल्पता का भान हुआ; और जिस देश के लिए वे सब एकत्रित हुए थे उसके लिए पूज्य बुद्धि प्रकट हुई। हम, हमारे लोग, हमारा धर्म, हमारा देश, आदि नामों से वह परिचित था; पर प्रथम बार वे सब केन्द्रस्थ हुए और एक सर्वग्राही व परमनाम—मेरा स्वदेश—उसके मस्तिष्क में उत्पन्न हुआ। वातावरण कम्पित हुआ, और सजीव प्रताप से चेतनायुक्त भारत को क्षण-भर के लिए उसने देखा। असंख्य मनुष्यों की गड़बड़ में भी करोड़ों को एकत्र करने वाले परम बंधन ने उसे बांध रखा।

एकदम गगनभेदी शोर हुआ। दस हज़ार मनुष्य खड़े हो गए। हज़ारों हाथों में रूमाल फरफराने लगे। हज़ारों आवाज़ें "हुर्रे हुर्रे" का नाद करने लगीं।

सुरेन्द्रनाथ बनर्जी मण्डप में आये। सुदर्शन ने छाती पर हाथ रखा; वह खड़ा न हो सका। बीच के रास्ते में अनेक पुरुषों में एक काले कोट वाला पुरुष पैर बढ़ाकर चला आ रहा था। उस मुखमुद्रा, दाढ़ी व मस्तक से सुदर्शन चित्र द्वारा परिचित था। वही सुरेन्द्रनाथ था—'आरबी' का भारतीय मेज़िनी—कांग्रेस का अवतार।

सुदर्शन कुछ देख न सका; सुनने की उसमें शक्ति नहीं रही थी। मस्तकों के समुद्र के उस पार बैठे हुए एक पर उसने आंखें स्थिर कीं। वह व्यक्ति उसके मन में मर्त्यलोक का नहीं था, दैवी था। वह कलकत्ता का प्रोफेसर व नेता नहीं था, पर जिस स्वदेश का उसे क्षण-भर पहले

भान हुआ था, उसका व्यक्तित्व था। काले कोट, दाढ़ी व चश्मे से सुशोभित भारत सिंहासन पर विराजमान हुआ था।

१६०२ के सुरेन्द्रनाथ बनर्जी का स्थान बाल-हृदय में क्या था, यह बात वर्तमान काल कदाचित् ही समझ सकेगा। सुरेन्द्रनाथ के पश्चात् तिलक, तिलक के पश्चात् बेसेन्ट, बेसेन्ट के पश्चात् गांधीजी, इस प्रकार लोक-प्रियता का क्रम बदलता रहा है। इनमें से प्रथम का मोह कुछ अद्भुत था, और अन्तिम तीनों—पत्रकार, विदेशी व स्वदेशी महात्मा—की अपेक्षा प्रोफेसर पर विद्यार्थी-वर्ग की भक्ति स्वाभाविक रीति से अधिक थी।

सुदर्शन केवल सामान्य विद्यार्थी नहीं था, किन्तु बालपन से सपने देखने की उसे बुरी आदत थी। उसकी दृष्टि में सुरेन्द्रनाथ स्वदेश-नेता नहीं दिखाई दिए, पर स्वदेश की मूर्ति दिखाई दिए। इतने में गाना आरम्भ हुआ—

'गाओ भारत की जय,
क्या भय—क्या भय....।'

और उसके सब मनोभाव इस गाने के प्रवाह में बह गए। उसकी नस-नस गुंजायमान होने लगी। 'क्या भय! क्या भय!'

और अम्बालाल साकरलाल का सुनाई न देने वाला भाषण—कुछ अस्पष्ट भाषण—और दूर से आता हुआ, गर्जन करता हुआ, गंभीर शब्द-प्रवाह उसकी आत्मा को मुग्ध करने लगा। 'Fellow-Delegates, Ladies and Gentlemen, I thank you for the great honour....' उसने बराबर नहीं सुना, वह बराबर नहीं समझा। लम्बी श्वास लेकर वह देखता रहा; हँसा, हर्षित हुआ, ताली बजाने लगा। और साढ़े तीन घंटों के बाद जब इस बेहोशी की दशा में से वह जागा, तब क्या हो गया यह भी उसकी समझ में नहीं आया।

: ६ :

पर कालेज खुलने पर जब सुदर्शन बड़ौदा वापस आया, तब उसके हृदय में निराशा पुनः संचार करने लगी। स्वदेश व सुरेन्द्रनाथ दोनों का वह भक्त बना था; पर सुरेन्द्रनाथ के भाषण ने उसे व्याकुल किया। वह भाषण उसने अनेक बार पढ़ा; उसका कितना ही भाग रट लिया, और परिणामस्वरूप उसे स्वदेश की स्थिति का विचार आया; अंग्रेज़ो से क्या मांगा व क्या मिला इसका उसे ख्याल हुआ, और सुरेन्द्रनाथ के सुंदर शब्दों में उसे निराशा दिखाई दी। आशावाद के शब्द, ईश्वर की बुद्धिमत्ता में श्रद्धा और अंग्रेज़ों को भलमनसाहत पर विश्वास, इन तीनों से परिपूर्ण भाषण में उसे कोई सार नहीं दीखा; इतना ही नहीं, किन्तु इन तीनों मंत्रों में उसे अंग्रेज़ों की 'समग्र महत्ता' के महापाषाण की परछाईं दिखाई दी।

और अनेक प्रश्न उत्पन्न हुए। अहमदाबाद जैसे कांग्रेस-अधिवेशन प्रतिदिन हों तो उससे क्या? सौ सुरेन्द्रनाथ प्रतिदिन भाषण करें तो भी क्या? क्या किसी भी देश ने ऐसे प्रयोगों से स्वातन्त्र्य प्राप्त किया है?

और राजकीय स्वातन्त्र्य से क्या लाभ हो सकता है? माभाई सेठ स्वतन्त्र हों या गुलाम हों, तो भी क्या? मानव-जीवन कैसे प्रभावशाली हो सकता है? 'समग्र महत्ता' का महापाषाण जब तक फोड़ा नहीं जाता, तब तक यह सब किस काम का? यह महापाषाण किस प्रकार फोड़ा जा सकता है?

और ज्यों-ज्यों कर्ज़नशाही के नये फरमान वह पढ़ता गया, त्यों-त्यों इस प्रश्न का उत्तर पाना कठिन हो गया। १६०३ के दिल्ली-दरबार ने उसके इस प्रश्न के हल पर नया प्रकाश डाला। 'समग्र महत्ता' का विचार कैसे दृढ़ करना यह कर्ज़न को आता था; और इस विचार को कैसे भूलना यह भारतीयों को नहीं आता था।

सुदर्शन राजकीय प्रश्नों के अतिरिक्त धार्मिक व सामाजिक प्रश्नों

को सुलझाने का प्रयत्न भी कर रहा था। उसने अनेक देशों के इतिहास पढ़े। उसने देखा कि प्रत्येक महान् देश ने इस 'समग्र महत्ता' के महा-पाषाण को फोड़ने का प्रयत्न किया था।

ल्युथर केथोलिक चर्च तोड़ने लगा था; हालेण्ड ने भी स्पेन की सत्ता को तोड़ा; इंगलैंड ने स्टुअर्टों को तोड़ा; अमेरिका ने अंग्रेज़ों को तोड़ा; फ्रान्स ने प्रत्येक 'समग्र महत्ता' को तोड़ा; इटली ने आस्ट्रिया की सत्ता भङ्ग की; जापान ने अमीर व पोप की सत्ता भङ्ग की। यह सब कैसे हुआ?

इन सबमें फ्रेंच-विप्लव ने उसकी कल्पना को मुग्ध किया। वह केवल राजकीय विप्लव नहीं था, पर समग्र महत्ता के महापाषाण के विरुद्ध समस्त राष्ट्र का धर्मयुद्ध था। राजा व अमीर, धर्म व समाज आदि की सत्ता का भङ्ग कर फ्रेन्च मानवता को प्रतापी बनाने वाले इस महान् प्रयोग का वह प्रशंसक बन गया। कार्लाइल, मिकलेट, टैन आदि को उसने बार-बार पढ़ा; रूसो, डीडेरो व वॉल्टेर; मीराबो, दांता व राब्सपीयर के जीवन-चरित्रों का उसने बार-बार मनन किया। जागते व सोते वह फ्रेन्च विप्लव देखा ही करता था।

उसके कान में एक महानगर की गली-कूंचियों में भयंकर नाद सुनाई देने लगा। सागर के सूखने पर पाताल के अन्तर में से जिस प्रकार भयानक जलजीव विस्मित हो बाहर निकलते हैं, उस प्रकार समाज की सतह के नीचे रहनेवाले घबराये हुए, विकराल व रक्त-पिपासु बन बाहर निकल पड़े। सदियों से वे महापाषाणों के नीचे कुचले जाते थे। उनके शरीर पर कपड़े नहीं थे, उनके पेट में शान्ति नहीं थी। आज महापाषाण का भङ्ग करने वे निकल पड़े। चारों दिशाएं रक्तरञ्जित थीं। आकाश में उत्तेजित मानवता की ललकार सुनाई देती थी। प्रलय-समुद्र की विनाशक लहरों की आवाज़ से उसका हृदय उत्साहपूर्ण हो उछलने लगा।

जोशीली जनता महापाषाणों का भङ्ग करने के लिए बाहर निकल

पड़ी। बेस्टिल तोड़ा गया। राजा की सत्ता का भङ्ग हुआ। पादरियों का वर्चस्व नष्ट हुआ। मानव-हृदय मार्स के मैदान में एकत्रित हुए। एक प्रस्ताव में ईश्वर का अस्तित्व नष्ट हुआ। एक झटके में राजा व रानी के सिर उड़ा दिये गए। एक क्षण में पुरानी दुनिया की जंजीरें तोड़ी गईं। 'स्वातन्त्र्य, समानता व भ्रातृत्व' की जयघोषणा की पीठ पर चढ़कर गौरवशील मानवता विहरने लगी।

सुदर्शन में नवजीवन का सञ्चार हुआ। उसकी दृष्टि के परदे खुल गये। 'विप्लव याने नियम का प्रारम्भ, सत्य का पुनर्जन्म, न्याय का प्रत्याघात।'

विद्यार्थी का मस्तिष्क चंचल व कोमल, अनुभवहीन व आशावादी, उत्साही व अधीर होता है। उसे परिस्थिति की परवाह नहीं रहती। उसे संयोग-साधना नहीं रहती है। उसे साधनों का विचार करने का समय नहीं रहता है। इसीसे राजकीय आन्दोलन में वह होमा जाता है, और अकिञ्चित् वस्तु पर प्राण अर्पण कर सकता है। ऐसी सुदर्शन की स्थिति थी। फ्रेन्च विप्लव ने उसे रास्ता सुझाया। विप्लववाद की भयङ्कर भावना ने उसे आशा प्रदान की।

'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥'

सुदर्शन के विप्लववाद की मर्यादा न रही। प्रत्येक महापाषाण के भङ्ग करने की उसमें आज्ञा थी। राजकीय के पहले सामाजिक व धार्मिक पाषाणों के भङ्ग करने की उसे बहुत आवश्यकता प्रतीत हुई।

इस अरसे में बोर्डिङ्ग में स्वातन्त्र्य व संरक्षकवादियों में पूर्वसूचित युद्ध प्रारम्भ हुआ। प्रो० शाह की प्रेरणा से 'आरबी' ने स्वातन्त्र्य की सेना स्थापित की। नृसिंहाचार्य के पट्टशिष्य छेदालाल मास्टर ने संरक्षक-वादियों को सबल बनाया। वाग्युद्ध की परम्परा प्रारम्भ हुई। सुदर्शन को यह खेल मालूम पड़ा, केवल जाति तोड़ने या अन्ध श्रद्धा छोड़ने से कुछ लाभ हो सकता है, ऐसा उसे दिखाई नहीं दिया।

उसका सब क्रोध सामाजिक अन्धकार के सृष्टा धर्मगुरु की ओर प्रेरित हुआ। अपनी जाति के प्रति, धर्म व सस्कार के संरक्षक ब्राह्मणों के प्रति अपार क्रोध प्रकट हुआ। वह मानता था कि धर्मगुरु ने नीति बनाकर महापापाणों को पवित्रता अर्पित की; असमानता को स्वाभाविक बताकर मानसिक विकास की मर्यादा रची; निर्भय को भयत्रस्त होना व गौरवशील को घुटनों के बल बैठना सिखाया। धर्म के नाम पर मानवता को निर्जीव करने वालों का उच्छेद करने के लिए वह खौलते हुए खून से तैयार हो गया।

इस अधीरता व बौखलाहट में, इस जोश व द्वेष के जाल में, इस विनाशक-वृत्ति के उभरते हुए पागलपन में कभी-कभी उसकी स्वप्न-दृष्टि के सामने भावी सृष्टि चुपके से आ जाती थी। एक निरीश्वर, आत्म-विहीन, राजा व गुरु बिना, सत्ता व असमानता बिना सृष्टि—जहां गर्विष्ठ व प्रतापी नरपुङ्गव शान्ति के गौरव में, शक्ति की निर्भयता में, भावना के उल्लास में हरे कुञ्जों में या गगनभेदी गिरिश्रृङ्गों पर, शीतल सरिता के तीर पर या सागर के सान्निध्य में अमरपुरी की देवियों को भी लज्जित करने वाली सुन्दरियों के साथ विहार करते थे; जहां आधिपत्य था केवल अपने आदर्श का; नियम था केवल अपने सस्कार का; बन्धन था केवल अपने स्नेह का; जहां कोई नमता तो स्वार्जित महत्ता के भार से; कोई हंसता तो अयाचित सेवा के उत्साह से; कोई रोता तो शैशव के अविचार से; जहां मनुष्य था अपने जीवन का स्वाधीन व स्वतन्त्र निर्माता व अधिष्ठाता। वहां उल्लास की लहरियां सदा आती थीं; निर्मल मानवता का माधुर्य व्याप्त रहता था; और इन सबसे उत्तम स्वातन्त्र्य का सञ्चार वहां ऐसा अनुपम वातावरण रचता था कि विधाता की सृष्टि केवल दुःखद स्वप्नवत् हो जाती थी।

पर इस सृष्टि के दर्शन कर वापस लौटने पर उसकी निराशा का पार नहीं रहता था। इस सृष्टि का सृजन कब होगा? क्या वह स्वतः ऐसी सृष्टि का सृजन कर सकेगा?

छः

भारती की आत्मकथा

: १ :

एक दिन जापान ने अन्धकार में से बाहर निकल एशिया को—यूरोप को ललकारा। रूस-जापान युद्ध प्रारंभ हुआ। निराधार एशिया-वासियों के जीवन में पूर्व में उदित सूर्य की किरणें हिम्मत, आशा व चेतना को ले आईं।

वे अब गुलाम नहीं थे; वे निर्जीव नहीं थे; वे पराधीन रहने के लिए उत्पन्न नहीं किये गए थे; इसके प्रमाण कोरिया के युद्ध-क्षेत्र व समुद्र उपस्थित करने लगे। एशिया की युग-युग की निराधारता जाती रही। चीन के अफीम के नशेवाले मस्तिष्कों में, भारत में धर्मप्राण हृदयों में, ईरान के अज्ञानग्रस्त हृदयों में नवचेतना की सजीव ज्वाला प्रताप प्रेरित करने लगी।

इस युद्ध का प्रभाव कालेज में ज़बरदस्त हुआ। समाचारपत्रों का शौक बढ़ गया। जापान के बारे में पुस्तकें पुस्तकालयों में आ पहुंचीं। अरविन्द घोष जापानी भाषा सीखने लगे, यह बात उड़ी। जापान की विजय की सब लोग प्रतीक्षा करने लगे।

सुदर्शन के हृदय में नई आशा प्रकट हुई। यह युद्ध उसे केवल जापानी नहीं मालूम पड़ा। उसने यूराल से जापान तक के एशिया को कुम्भकर्णी नींद में से जागते हुए देखा। अपनी विकराल अयाल को उछालता हुआ यह महाद्वीप शताब्दियों से सहे हुए अन्याय से व्याकुल होता हुआ, गर्जना करता था। यह विराट् जम्बूद्वीप यूरोप की रस्सी

को तोड़ता हुआ अपनी शक्ति के अस्तित्व का अनुभव करता था।

सुदर्शन की दृष्टि में देश, जाति या धर्म की सीमा नहीं रही। उसने एशिया के जीवन-स्रोत को आर्यावर्त में प्रकट होकर बुद्ध गया के पुनीत घाट पर से बहते हुए देखा। भारतीय बुद्धि व भारतीय शौर्य से समृद्ध होकर वह एक ओर मध्य एशिया के मैदानों में और अफगानिस्तान के गिरिगह्वरों में बढ़ा; वह फैला चीन व जापान में, आसाम व ब्रह्मदेश में, ईरान व जुडीया में। इस महानद की शाखाओं ने चारों दिशाओं को जलमय बना दिया; और इस्लाम के रूप में ईरान से, एशिया के अहंभाव के रूप में जापान से, इस जन्मभूमि में वापस लौटकर उसने समस्त एशिया को रसयुक्त बनाकर सजीव किया।

'एशिया की एकता' के सपनों में सुदर्शन क्षण-भर के लिए मुग्ध हो गया। अरबिस्तान, तुर्किस्तान, तातार व भारत को विश्व-विजयी श्रृङ्खला से एक कर 'इस्लाम खण्ड' बनाने के खलीफों के सपने, जापान, चीन व भारत को सांस्कारिक बन्धनों से एक कर 'बुद्धखण्ड' बनाने के ओका-कुरा के सपने उसे अधूरे व अस्पष्ट लगे। उसके सपने तो आर्यावर्त से जापान व तुर्किस्तान तक एक प्रचण्ड महाविप्लव फैलाकर राज्य, समाज व धर्म के भेदों को भुलाकर एशिया को नये जीवन में लाने की योजना में गूंथे गए।

: २ :

पर एशियाई महत्ता के स्वप्न जैसे उद्भूत हुए वैसे ही नष्ट हो गए। ब्रिटिश सत्ताधीशों के वचन व कृत्य उसे वास्तविक स्थिति का क्रूर भान कराकर उसके सपनों का उपहास करने लगे। उसके लोगों के लिए प्रताप व सत्ता न थे, उसके देश के लिए स्वातंत्र्य नहीं था, इस बात का तीव्र भान जब-कभी होने पर 'एशियाई' एकता की आवश्यकता वह देखता था।

जब सुदर्शन ने १९०३ में दिल्ली में किये गए राज्याभिषेक की कहानी सुनी और उसके चित्र देखे तब उसे व्याकुलता हुई। दिल्ली के सिंहासन पर जहां पार्थिव ने भी पैर नहीं रखा था, जहां पृथ्वीराज के शौर्य-स्मरण अभी दिखाई देते थे, जहां मुगल-बादशाहों ने भारतीय गौरव प्राप्त किया, वहां विदेशी राजा के प्रतिनिधि को बैठता देख उसका हृदय जल उठा। भारत में कुछ गौरव बचा हो ऐसा जान नहीं पड़ा। कहां जापान व कहां भारत ?

जब कर्ज़न ने कहा—'विकास की वर्तमान स्थिति देखते हुए भारत को राजकीय क्षेत्र में मुक्ति नहीं मिलेगी। भारत में साधारण रीति से बड़ी दीवानी नौकरी अंग्रेज़ों को मिलनी ही चाहिए—'[1] और इस नीति को जब कार्यरूप दिया गया तब सुदर्शन को ऐसा मालूम पड़ा मानो किसीने तमाचा लगाकर उसे भान दिलाया हो। उसके सपने निरर्थक दिखाई दिए। वह पागल के समान एशिया की सत्ता की बात करता था, पर यथार्थ में तो अपने देश में उसका स्थान केवल आश्रित का था। एकदम उसे जापान व भारत के बीच का भेद स्पष्ट दिखाई दिया— जापान स्वाधीन था व भारत पराधीन। इस भेद की प्रतीति उसके अन्तर में विष के समान प्रसारित हुई।

पर नई घटनाएं जल्दी-जल्दी घटने लगीं; और सुदर्शन की दृष्टि बङ्गाल पर स्थिर हुई, और उसका हृदय वहां प्रकट होती हुई उर्मियों के सामञ्जस्य में नाच उठा।

१९०४ में वङ्ग-भङ्ग की योजना हुई, विश्वविद्यालयों ने स्वातन्त्र्य गँवाया। १९०४ के कांग्रेस-अधिवेशन में बम्बई में तूफान का श्रीगणेश हुआ। १९०५ की ११वीं फरवरी के दिन कर्ज़न ने भारतीयों को झूठे कहा। १०वीं जुलाई को वङ्ग-भङ्ग का प्रस्ताव प्रकाशित हुआ, ७वीं अगस्त को समस्त बङ्गाल ने स्वदेशीव्रत धारण किया; पहली सितम्बर

१. १९०४ में 'बजट' के समय का भाषण

को नये प्रान्त का विज्ञापन प्रकाशित हुआ।

मानो अङ्ग काटा जाता हो, उस प्रकार बङ्गाल को—भारत को—वेदना हुई।

नेता क्रुद्ध हुए। युवक नवचेतन से प्रेरित हुए। सुरेन्द्रनाथ की जिह्वा पर सञ्जीवनी मंत्र बस गया, और उग्र व भयङ्कर बन राष्ट्र जाग उठा। उसके अहंभाव ने स्वदेशी का रूप धारण किया; उसके क्रोध ने बहिष्कार का रूप धारण किया।

१६वीं अक्तूबर को वङ्ग-भङ्ग कार्यरूप में लाया गया। उस दिन बङ्गाल ने शोक मनाया। 'बंदेमातरम्' के गीतों से कलकत्ता गूँज उठा; वङ्ग-वासियों ने परस्पर स्वदेशीव्रत का रक्षाबन्धन किया; शाम को राष्ट्र की एकता को सुरक्षित रखने के लिए फेडरेशन हॉल का पाया डाला गया। बङ्गाल ने ललकार की। जिसे इतिहास व संस्कार ने एक किया है, उसे खण्डित करने की किसकी शक्ति है?

बड़ौदा कालेज के वाचनालय में बङ्गाली प्रोफेसर की प्रेरणा से प्रकटित वातावरण में बैठे-बैठे सुदर्शन नये-नये सपने देखने लगा व नये-नये भावों का अनुभव करने लगा। उसका स्वदेश सब महापाषाणों को भङ्ग करने की तैयारी करता था। उसने बीडन स्क्वेयर की सभाएं देखीं; कालीघाट पर रक्षाबन्धन किया व करवाया; उसने बङ्गाल की अविभाज्यता सुरक्षित रखने का व्रत लिया।

पर जब उसे स्वदेशीव्रत का विचार आया व उसने 'बंदेमातरम्' का गीत पढ़ा, तब उसकी आंखें नये प्रकाश को सहन न कर सकीं।

'मां' की भावना अपरिचित व आकर्षक थी। वह अभी तक उसके हृदय में उद्भूत क्यों न हुई, यह विचित्र लगा। उसीसे अन्धकार पर चमकता हुआ प्रकाश पड़ा था। उसको आंखों के परदे खुल गए। जो न देखना चाहिए, वह उसने देखा; जो समझ में नहीं आता था, वह समझ में आया। अंतर की आशाएं व उर्मियाँ केन्द्रित हुईं। स्वदेश देश नहीं था, जीवित व्यक्ति था। वह केवल व्यक्ति नहीं था पर दुःखार्त

माता थी। भारतीय मनुष्य नहीं थे पर माता के शरीर के परमाणु थे। 'स्वदेशीव्रत' व्रत नहीं था व ललकार नहीं थी, वह तो माता की आत्मा के दर्शन थे।

ज्यों-ज्यों वह विचार करता गया, त्यों-त्यों 'माता' के दर्शन स्पष्ट होते गए। 'सुजलाम् सुफलाम् मातरम्.......।' वह बोला करता था। एक परम तेजस्वी व्यक्ति उसकी आंखों के सामने विचरण करने लगा।

: ३ :

नवम्बर-दिसम्बर में वह अपने घर गया। समस्त जगत् ने नया रूप धारण किया। जहां-तहां 'माता' के दर्शन करने का, उसे पहचानने का वह प्रयत्न करने लगा; और व्यक्ति, संस्थाएं, प्रणालिकाएं आदि उसके छोटे-बड़े अङ्गों के समान व्यवस्थित होने लगे। घर में, जाति में व नगर में अकल्पित भावनाएं प्रसारित होने लगीं। तालाब व नदी, पुराने मंदिर व मस्जिद, खेत की हरियाली व गांव की गंदगी में रहस्य दृष्टिगोचर हुआ। इन सबों में 'माँ' की तेजस्विता दिखाई देने लगी।

शीत ऋतु में ब्राह्ममुहूर्त में उठकर वह नगर के बाहर घूमने जाने लगा। निर्जन व अन्धकारमय मार्ग पर भूतों के निवास-सम सुनसान घरों की अन्धकारपूर्ण कतार के बीच में से वह चला जाता था; और तो भी उसकी आंखों के सामने इस नये दर्शन का प्रकाश रहता था। दूर से सुनाई देते बैलों के घुँघरू, मधुर स्वर से सुनाई देती घंटी की झनझनाहट, जल्दी उठी हुई ठंड से कांपती हुई पानी भरनेवालियों का वार्तालाप आदि सब उसे 'माता' के सौंदर्य का भान कराते थे। और शीतकाल की कंपाती हुई ठंड में गांव के बाहर खेतों के किनारे से होकर जाते समय जब वह पौदों को प्रभात की समीर में नर्तन करते देखता, जब सवेरे के बढ़ते प्रकाश में पूर्व दिशा में तपते हुए सुवर्ण सरोवर में से निकलने वाली सरिता को धूम्रवर्ण बन पश्चिम में क्षितिज के बादलों

में मिलती हुई वह देखता, जब किसी टेकड़ी पर फड़फड़ाती हुई हवा में खड़े रहकर पर्वतों की अस्पष्ट कतार के पीछे से सवितानारायण का सुवर्ण बिम्ब नवजीवन के सत्व के समान ऊपर आता देखता तब उसके अन्तर में स्थित विनाशकता व जोश जाते रहते थे, और 'माता' के देह-लालित्य की प्रेरणा से भक्ति के अंकुर उसके हृदय में स्फुरित होते थे। एक बार प्रणयी के अधीर जोश से वह बोल उठा—'माँ, माँ, तू अद्भुत है।'

एक दिन सबेरे पांच बजे उठकर वह नगर के बाहर घूमने निकला। रात में उसे नींद नहीं आई थी, इससे उसे उजागरा मालूम पड़ता था। गांव के बाहर दूर एक टेकड़ी पर जाकर वह नदी की ओर देखता रहा। 'माँ सोती है, कैसी सुंदर लगती है!........'

वहां से वह कब उठा, यह याद न रहा; किस ओर गया, उसका भी कोई हिसाब न रहा। पर वह अधिक-ही-अधिक दूर चला। खेत दूरी पर अदृश्य होते हुए दिखाई दिए। पगडंडी संकरी व अस्प दिखाई देती थीं। एक-दूसरे में अपनी छटा मिलाकर वृक्ष चाहें जहां दिखाई दिये, और जुगनु स्थान-स्थान पर चमकने लगे। अज्ञात स्रोत का रव उसके कान में पड़ा।

अन्धकार रहते हुए भी कहीं-कहीं प्रकाश किसी पेड़ के नीचे दिखाई देता था।

एकदम वह टकरा गया। उसने अंधेरे में घबराकर डरकर चारों ओर देखा। एक पेड़ के नीचे सिर पर हाथ देकर एक स्त्री बैठी थी। केवल उसके आसपास ही गहरा प्रकाश था।

उसका मुख उसने देखा था, कहां यह याद न था। उसके सौन्दर्य से शोभित भव्यता की उसने किसी दिन प्रशंसा की थी; कब, इसका उसे ख्याल न था। उसकी आंखों में अकल्प्य व अदृश्य वेदना थी। कुलीन सुन्दरियों के लिए स्वाभाविक मृदुता उसमें थी और उसके अंग पीड़ित हों, ऐसा दिखाई देता था।

सुदर्शन उसे देखकर घबराहट में पड़ा। ऐसी तेजस्वी स्त्री इस निर्जनता में, अन्धकार में अकेली व निराधार कैसे आई? कैसे पड़ी है? कौन साथ में है?

उसका दिल कांप उठा। उसका भागने का मन हुआ, पर उसके पैर वापस नहीं हुए। एकदम उसके हृदय में पूर आया—यह पूर उस वेदनापूर्ण नयनों की ओर उछलता जाता था। घबराते-घबराते वह पूछ बैठा, 'आप कौन हैं? इस समय यहां कैसे आई?'

उस स्त्री ने मुंह ऊंचा किया। उसके मुख पर अद्भुत सौन्दर्य का तेज था—विषाद से आच्छादित।

'मैं भाग्यहीन हूं। इस समय प्रतीक्षा करती हूँ।' उस सुन्दर मुख में से दुःख से कम्पित किन्तु सुमधुर आवाज़ निकली।

सुदर्शन की आंखों में आंसू आये। उसमें रही हुई वीरता जागी। इस स्त्री की यदि वह सहायता न करेगा तो मर्द काहे का!

'क्या है? किसकी प्रतीक्षा करती है? और वह भी यहां?'

'बेटा! मेरे दुःख की कहानी तो लम्बी है। मेरी दुर्दशा का पार नहीं है। भैया! वन या शृङ्ग के एकान्त के अतिरिक्त किसीकी प्रतीक्षा करने का मुझे अधिकार नहीं है।'

'क्यों?'

'मैं गुलाम हूं, पराधीन हूँ। मुझे कोई शान्ति से प्रतीक्षा करने नहीं देता।'

'किसकी प्रतीक्षा?' दसों दिशाओं में खोजने के लिए तत्पर सुदर्शन अधीरता से बोल उठा।

'अपने प्राणों की। बरसों बीते पर फिर वे हाथ न लगे।'

एकदम सुदर्शन उसके पास गया। वह इस विरहिणी की वेदना देख न सका।

'बहन! मुझे कहो, वह कौन है? कहां है? मैं लिवा लाता हूं।'

'भैया! तुम मेरे पालनेवाले को वापस नहीं ला सकते।'

'क्यों नहीं ला सकता ?'

'तुम्हारे-जैसे बहुत-से आये व गये। बहुत-से वचन दे गये, पर फिर उन्हें नहीं देखा। बहुतों ने बीड़ा उठाया और कुसमय मृत्यु के ग्रास बने।'

'पर मुझे कहो तो सही। इतने गये तो मैं भी एक अधिक।' सुदर्शन ने आत्म-त्याग के जोश से कहा।

'वह सुनकर क्या करोगे ?'

'कहो, कहो; कौन जाने आपका दुःख मेरे ही हाथों मिटने वाला हो तो ?'

वह सुन्दरी हंसी। निराशा से वह अश्रद्धावान बनी थी। 'तब सुनो,' उसने कहा, और जरा सीधी हो खांसकर गला साफ किया।

: ४ :

'बहुत दिन हुए उस बात को।' वह स्त्री बात कहने लगी, 'मैं पैदा हुई थी कल्लोल करती हुई सरस्वती के रमणीय तीर पर। पर अपने माता-पिता को मैं पहचानती नहीं। होश में आई तब से गगन-विहारी गिरिराज हिमालय को मैंने पिता माना है व विशाल-हृदयी सिन्धुदेवी को माता माना है।

'मैं सुंदरी थी। आशाएं मेरे बालरूप में सबको दिखाई देती थीं। सरस्वती के तीर पर बसे हुए कवि मुझे प्रेम से उछालते व मेरे सुकुमार हृदय में अपूर्व संस्कारों का बीजारोपण करते थे। मैं उनकी लाडली थी। वे मेरे मन में पिता के समान पूज्य थे। निर्दोष आनन्द के खेल में मेरा बालपन चला गया।'

'वशिष्ठ व अरुन्धती ने मेरा लाड-प्यार किया। उनकी पर्णकुटी की छाया में मैं बड़ी हुई। पति ने मुझे पवित्रता के पाठ पढ़ाये; स्त्री ने मुझे श्रद्धा के संस्कार दिये। वशिष्ठ के तप की भव्यता व अरुन्धती के

आत्म-समर्पण की महत्ता दोनों की प्रेरणा मुझे प्राप्त हुई; उनके ममता-पूर्ण संरक्षण में बड़ी होने लगी—आकांक्षा व आशा से परिपूर्ण।

'सब मुझे देख मोहित होते थे, और एक-दूसरे की ओर गर्व से देखते थे। मुझे देख सब कम अवस्था वाले उत्साह से पागल हो जाते थे, सब वृद्ध जीवन-साफल्य सिद्ध हुआ, ऐसा मानते थे। मुझे संस्कार-युक्त व समृद्ध बनाने में सब व्यग्र रहते थे, और मेरा गौरव बढ़ाने में प्राणों की भी परवाह नहीं करते थे।

'तत्पश्चात् आये मेरे प्राण—भरतों में श्रेष्ठ, मेरी आकांक्षा—विश्व-विजेता के समान मेरे राजर्षि। उनके पदों में विजय का उत्साह था; उनकी आंखों में गर्व की मस्ती थी; उनकी भुजाओं में विनाश की प्रभावशीलता थी; उनकी जिह्वा पर जातवेद रहते थे, उनकी बुद्धि में सविता के भर्गवरेण्य बसते थे; वे मेरे वीर, मेरे कवि, मेरे द्रष्टा व मेरे स्वामी थे।

'उनके सौन्दर्य से लुब्ध होकर मैंने आत्म-समर्पण साधा। उनकी मैं महादेवी बनी। मेरे आर्यत्व से वे आर्य बने। मेरे स्वामी देवों के लाडले व आर्यों के अधिप थे। उनके मंत्रों से जीवन का सञ्चार होता था, उनके पराक्रम से पृथ्वी गूंजती थी। उनकी आर्य-दृष्टि के सामने तीनों काल संकुचित हो जाते थे।

'जिस प्रकार कोई वीर अर्धाङ्गिनी को ग्रहण करता है, उस प्रकार उसने मेरा ग्रहण किया—मानवता के प्राबल्य से व उत्साह के जोश से। क्षण-भर में छोटी-सी बाला से मैं वीराङ्गना बनी, और उनके पार्श्व में महाराज्ञी पद प्राप्त करने के लिए तरसने लगी। उन्होंने दयापूर्वक शुनःशेप का उद्धार किया, और द्वेष से हरिश्चन्द्र को भटकाया। उनकी हिम्मत से सुदास का उद्धार हुआ व क्रूरता से शतपुत्र के पिता वशिष्ठ सन्तानहीन हुए। उन्होंने रसिकता से उर्वशी को वश में किया, औदार्य से अनार्यों को संस्कारयुक्त बनाया, और आश्रित त्रिशंकु को तारने के लिए नया स्वर्ग बना मघवा की महत्ता भङ्ग की। और तो भी महत्ता

को सुलभ नम्रता से उन्होंने अमर प्रार्थना उच्चारित की—"धियो यो नः प्रचोदयात् ।"

'अपने स्वामी की देवी मैं भरतश्रेष्ठ से भारती कहलाई । अपने असख्य पुत्रों के गर्व का निधान मैं भारतमाता कहलाई । गौरव व सत्ता से परिपूर्ण बनकर मैंने अपनी मोहिनी से तीनों भुवनों को पागल बना दिया । मेरे आंगन में देवों के देव अवतार धारण कर आने लगे ।

'मुझमें विश्वविजेत्री की महत्वाकांक्षा आई; जगज्जननी की अतुल शक्ति आई; और तो भी मेरी नसों में उछलते प्रणय में ज्वार आया ही करता था, और मेरी दृष्टि जहां पड़ती वहां सौन्दर्य के अद्भुत रङ्ग फैलते थे । मुझे मालूम पड़ा कि मेरे विजय-प्रयाण की मर्यादा नहीं थी । मेरे प्रेरणाबल से खंडों व द्वीपों की सीमाएं नहीं-सी हो गई थीं ।'

और यह बोलते समय उस स्त्री की आंखों में से विचित्र विद्युत चमकती हुई सुदर्शन ने देखी । उसकी आवाज़ में विजयी उल्लास की ध्वनि उसने सुनी । इस सुन्दरी के शब्दों का रहस्य वह समझा नहीं, तो भी समझ में आया हो, ऐसा लगा । इस सब जीवन-कथा से मानो परिचित हो, ऐसा उसे मालूम पड़ा, तो भी वह नई मालूम पड़ी ।

'पर भैया !' वह स्त्री खिन्न स्वर से बोलने लगी, 'मेरा भाग्य बिगड़ा । एक दिन हमेशा के समान मैं प्रतीक्षा करती बैठी थी पर वे नहीं आये । मेरा वियोग जो कभी सह नहीं सकते थे, वे मुझे वियोग-वेदना से पीड़ित करने लगे । मुझे वे कभी छोड़कर नहीं जा सकते, ऐसा मुझे विश्वास था, तो भी वे न आये । समय बीता, मैं वियोगिनी ही रही ।

'वे आयंगे ऐसा मुझे लगता था, तो भी वे न आये । उनके व मेरे संयोग से उद्भूत वीर पिता का तेज दरशाने लगे । नदी व पर्वत लांघकर मेरी कीर्ति समुद्र के अन्त तक ले गए ।

'वर्षों व्यतीत हुए पर न आये मेरे नाथ, और न गई मेरी आशा । मैं तो प्रतीक्षा करती ही रही । वे नये जन्म में आयंगे ही, ऐसी श्रद्धा से

मैं अपने विरही हृदय को आश्वासन देने लगी। एक दिन किसीने मुझे मंगल संदेश सुनाया कि जिस मानवता ने मुझे मोहान्ध किया था, वह यमुना-तीर पर दिखाई दी थी। मेरे हृदय में उत्साह आया। अपने वीर के साथ जो दिन बिताये थे, उनके सपने आने लगे। मैं उसे मिलने को तत्पर हुई। हम मिले और मेरा हृदय निराश हुआ। वह मेरा वीर न था। मैंने उसमें स्वस्थता देखी, कुशलता देखी, ज्ञान देखा, पर गगन-भेदी उत्साह व प्राबल्य से उछलती प्रचण्ड मानवता मैंने न देखी, आशा-भङ्ग मैं फूट-फूटकर रोई।'

'इस नये वीर को अपनी दैवी सम्पूर्णता के दर्प के सामने मेरी परवाह न थी। उसने मेरे पुत्रों को आपस में लड़ाया। निराशा की मूर्छा में पड़ी हुई मुझे वे सब भूल गए और छोटी-मोटी अभिमानवृत्ति का छेदन करने में मेरी निराधारता बढ़ती थी, यह देखने की किसीने परवाह नहीं की।

'आशा छोड़, अपने प्रियतम से अपरिचित बनी हुई देहली पर बैठी हुई एक दिन मैं आंसू बहाती थी। मुझे लगा कि अपने नाथ बिना जीवित रहना निरर्थक था। वहां वृद्ध व ज्ञान-गम्भीर एक द्वैपायन नामी महात्मा आये। वे मुझे विरह-व्याकुल देख सलाह देने लगे—"बेटी! श्रद्धावान् कभी आशा नहीं गंवाता।" उनकी भलमनसाहत से आकर्षित हो मैंने उन्हें अपनी करुण-कहानी कह सुनाई। ज्ञानार्द्र हृदय के औदार्य से द्वैपायन ने मुझे कहा—"सुनो! आशा बिना श्रद्धा शक्य नहीं है; श्रद्धा बिना सिद्धि संभव नहीं है।" मैंने उन्हें कहा "मैं श्रद्धा किस प्रकार रखूं?" उन्होंने मुझे उत्तर दिया, "स्मरणों के सेवन से ही श्रद्धा निश्चल बनती है, बेटा! अपने नाथ के संस्मरण मुझसे कहो। मैं उनकी संहिता बना दूंगा। इस संहिता के पाठ से तुम्हारे संस्मरण की रक्षा होगी।" ऐसा कह उन्होंने मेरा इतिहास सुना और वे उसकी स्मरण-संहिता बनाने लगे। उन्होंने वह थोड़ी रची, और उनके पश्चात् नैमिषारण्य में एकत्रित हुए शिष्यों ने उसे पूरा किया; और संहिता

का पाठ कर श्रद्धा की ज्योति सजीव रखने का प्रयास करती हुई मैं ज्यों-त्यों जीवन बिताने लगी।'

: ५ :

'नई प्रकटित श्रद्धा से मैं अपने प्रियतम की प्रतीक्षा करती रही। उनके आने पर कहीं मेरा विशाल भवन निस्तेज न दिखाई दे, इस भय से मैं सब वस्तुएं जैसी थीं, वैसी रखने का प्रयत्न करती ही रही। स्मरण-संहिता गुनगुनाते हुए मैं उत्साह को अविचल रखने के लिए कुछ-न-कुछ नया किया करती थी और उनके आने पर जितनी तेजस्विता थी, उससे अधिक बताने के लिए ज्ञान की समृद्धि एकत्रित करने लगी। वे आयें और मुझे देख निराश हों तो !

'थोड़े समय के पश्चात् एक प्रबुद्ध पुरुष आये। उन्होंने सुमधुर स्वर से मेरा दुःख पूछा, और अनुकम्पापूर्वक उस दुःख के निवारण के मार्ग योजित किये। मेरे नाथ का राग छोड़, कीर्ति व आकांक्षा का आकर्षण छोड़, मेरे प्रणय का उत्साह क्षीणकर तटस्थतापूर्ण शान्ति प्राप्त करने का उन्होंने मुझे उपदेश दिया। दुःख व विरह से अशान्त बने हुए अपने हृदय को शान्त बनाने के लिए मैं उस तथागत की शरण में गई।

'कितने ही उपाय रोग से भी अधिक भयङ्कर होते हैं। इस नये उपाय से जरा शान्ति अवश्य हुई; पर मेरे प्रेम की अग्नि मंद हुई, मेरे नाथ की रटन से प्रकटित उत्साह अदृष्ट हुआ, और उनके लिए अपने को, अपने आनंद को, सुरक्षित रखने की चिन्ता जाती रही। मैं विरह-व्याकुल गृहिणी के बदले बिना लज्जा की साध्वी हुई। अपना गौरव सुरक्षित रखने की भूल, पराये के उद्धार को खोजती मैं भटकने लगी। मेरे विशाल भवनों में व रमणीय कुन्जों में अपने नाथ की आवाज़ के प्रतिशब्दों को सम्भाल रखने के बदले उसमें मैंने जिस किसी को अनुकम्पा के आडम्बर से कोलाहल करने दिया। इस धर्म की

शरण में जाते हुए मैंने अपना स्वधर्म भी रक्षित नहीं रखा।

'इस प्रकार साध्वी बन अपने उद्धार के पहले जगत् का उद्धार साधने की लालसा से जब मैं चारों दिशाओं में भटकती थी, तब दो व्यक्ति मुझे मिले। एक कौटिल्य नाम का राजनीतिज्ञ था, दूसरा उसका एक शिष्य था। द्वैपायन द्वारा संग्रहीत स्मरण-संहिता में से मेरे नाथ की प्रेरणा उन्हें प्राप्त हुई थी। वे मुझे आकर मिले। मेरा स्वरूप व स्वभाव देख उन्हें खेद हुआ।

"देवी!" कौटिल्य ने भृकुटी चढ़ाकर मुझसे कहा, "आप यह क्या ले बैठी हैं? क्या अपने प्रियतम के संस्मरण भूल गईं? क्या उनकी प्रतीक्षा करना बन्द कर दिया? क्या प्रणयद्रोही विधवा के समान आप भी सतीत्व को साधुता में ही खोजने लगीं? देवी! जो निर्बल हो वह विस्मृति की शान्ति खोजे; क्या देवों को दुर्लभ आप जैसी जननी को यह शोभा देता है? चलिये वापस घर को। आपके प्रियतम वापस आयंगे, तो क्या उन्हें मंदिर के समान शयनालय में उतारेंगी? यदि उन्हें पितृयज्ञ करना होगा तो क्या यवन व चीन संघ के पादस्पर्श से गंदी बनी हुई वेदी बतायंगी? यदि आपके कुन्जों में आपके सौन्दर्य को निरखने का मन होगा, तो क्या व्रत से शुष्क बने हुए शरीर का उपहार रखेंगी? वापस चलिए। हम आपके नाथ को वापस ले आयंगे, और आप अपना आंगन साफ-सुथरा रख तैयार होइए।'

'जब उस प्रतापी कौटिल्य को मैंने बोलते सुना, तब मेरा भ्रम दूर हुआ, और मैं कैसी अधम हो रही थी इसका मुझे विचार हुआ। तुरंत साधुता का आडम्बर छोड़ मैं अपने घर गई। मेरे हृदय में स्थित प्रणय पुनः जागृत हुआ, और नवोढ़ा के उत्साह से मैं अपने प्रियतम की प्रतीक्षा करने बैठी।

'उन दोनों व्यक्तियों ने भी सब-कुछ किया। सामान्यों के सन्चार से भ्रष्ट बना हुआ मेरा भवन पुनः सुव्यवस्थित व सुन्दर होने लगा। मेरे वीर की कीर्ति को शोभा देने वाली उनकी भव्यता पुनः चमकने

लगी। उनकी मानवता जहां विश्राम ले सके ऐसे कुन्जों में पक्षियों का कल्लोल पुनः सुनाई दिया।

'और मेरे पुत्र भी पिता की खोज कर वापस लिवा लाने के लिए प्रेरित हुए। उन्होंने प्रत्येक दिशा में सन्चार किया। मुझे संदेशे भी आने लगे। मेरे नाथ का पता लगा हो, ऐसा मालूम पड़ा। वर्षों की विरहिणी मैं प्रणयविमूढ़ बन गई। केश संवारकर कुंकुम की शोभा मैंने धारण की। मैंने त्यागे हुए वस्त्र पुनः स्वीकार किये। प्रतीक्षा करते-करते स्थिर बनी हुई मेरी छाती अधीरता से उछलने लगी। 'वे आये'—'वे आये' की झनकार गूंजने लगी, और मेरे वीर के उत्साह की ऊर्मियां मानो चारों ओर से आती हों, ऐसा मालूम पड़ा। मैंने अपने नाथ का चरण-रव सुना; उनकी आवाज़ मेरे कान में टकराई। मैं उनका स्वागत करने दौड़ी—'

: ६ :

'और समाचार मिले कि कौटिल्य व उसका मित्र दोनों स्वधाम सिधारे। निराश हृदय से मैं वापस आई। कौटिल्य के मित्र के अनुज ने बहुत आश्वासन दिया। मेरे नाथ की खोज करने का वचन दे वह बाहर गया; गया तो गया ही गया। तथागत द्वारा सिखाई हुई शान्ति से अशोक होने में वह मेरे प्रियतम की खोज करना भूल गया। संसार को भ्रम मान, उसने धार्मिक दिग्विजय से देवों का प्रिय होना पसंद किया।

'भैया! मैं सुरक्षित अवश्य पड़ी रही, पर मेरे दुर्भाग्य का प्रारंभ हुआ। चाहे जैसे पुत्र हों पर पतिविहीन स्त्री तो निराधार ही रहती है। सब मुझे सान्त्वना देने का प्रयत्न करते थे; मेरे गौरव की रक्षा करने का प्रयत्न करते थे; पर मेरा सुख तो जाता ही रहा। कितने कहते थे कि वे मेरे प्रियतम की खोज में फिरते थे; कितने ही निराश बन

शान्ति खोजते थे; कितने ही लापरवाह बन किसीकी परवाह नहीं करते थे। अपने प्रियतम की प्रतीक्षा करने में मैं उन पर अन्याय करती थी, ऐसा वे मुझे कहते थे; और इससे मैं खुले मन से प्रतीक्षा नहीं कर सकती थी, और अपनी विरह-वेदना किसीसे कही नहीं जाती थी। ऐसे परावलम्बी जीवन में किसी समय कोई बिरला ही आशा के अंकुर प्रकटित करता था, पर उससे लाभ कुछ न होता था।

'कैसी दुर्दशा! मेरा हृदय कहता था कि मेरे प्रियतम जीवित हैं। मैं उनकी प्रतीक्षा करती थी। दिन-रात रोज़ याद कर उनके चरण-रव की झनकार सुना करती थी, और मेरे पुत्र शान्ति के लोभ में उन्हें भूलने का प्रयत्न करते थे; अन्यथा पिता का देहान्त हुआ मानकर उन्हें श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने तत्पर होते थे। मेरे हृदय में श्रद्धा थी कि मेरे प्रियतम जीवित हैं; मेरे पुत्र उन्हें मृत मान तर्पण करते थे। ऐसी भयानक स्थिति क्या किसीने देखी होगी?

'पुरुष जैसा पत्नी को प्रिय रहता है, वैसा क्या कभी पुत्रों को रहता है? अश्रद्धा की तटस्थता में कितने ही तो पिता का रूप भी भूलने लगे। मेरे प्रियतम की प्रचण्ड, तपस्यात्मक, सर्वाङ्गसुंदर, प्रफुल्ल मानवता भूलकर वे यमुनावासी वासुदेव की चालाकी, स्वस्थता व विशेषकर विलास को दृष्टि के सामने रख उन्हें अर्घ्य देने लगे। जिन्हें वे मेरे प्रियतम मानते, उनकी मुझे परवाह न थी; जिनकी मुझे परवाह थी, उन्हें सब भूलने लगे थे।

'मेरे गात्र शिथिल हुए, मेरा रूप निस्तेज होने लगा। काल्पनिक शान्ति या निर्जीव विलास की खोज में मेरे पुत्रों ने अपना व पराया समझा नहीं। लोग पड़ौसी बनकर घर-मालिक होने लगे। पहले वे मान देने के बहाने घर में आये, और मेरा संरक्षण करने के बहाने घर में रहे। मेरे पुत्रों ने पिता के वापस आने की आशा छोड़ी, और परा-श्रय में बड़प्पन मानना सीखे। मानो युगों की निराधारता मेरे सिर आ पड़ी हो, इस प्रकार मैं अशक्त व अस्वस्थ बनकर पड़ी रहती थी,

और पराधीनता व विरह की तीव्र वेदना बिसराने के लिए अपनी स्थिति का विचार करती ही नहीं थी ।

'मेरे पुत्र, मेरे प्रियतम को भूल गए, और मुझे भी भूलने लगे। मेरे भवनों में पराये रङ्गरेलियां करते थे, मेरे उद्यानों में परायों का चरण-रव सुनाई देता था; और पराये मेरे, मेरे पुत्रों के और मेरी समृद्धि के स्वामी बन आनंद मनाने लगे। सृष्टि के सौन्दर्य की मूर्ति के समान मैं पराये की सम्पत्ति बनी रही। उन्होंने मुझे हीरों में मढ़ा व कमखाब में ढंका। अगणित दासियां मेरी टहल करती थीं। मेरे द्वार पर हाथी झूलते व डंके-निशान गरजते थे। मेरे रङ्गमहल में गवैयों की तान व सुवर्ण के घुंघरुओं से सुशोभित मयूरों का नर्तन सदैव सुनाई देता था। मेरा ठाट बेगम के समान था, मेरी दासता परदानशीन-जैसी थी।

'—हाय! हज़ारों वर्षों के ऐसे ऐश-आराम को मैं क्या करूं? एक क्षण के लिए मेरे प्रियतम वापिस आयें, एक क्षण के लिए मैं उनके पार्श्व में रह हमारे संयुक्त सुर से अपने कुंजों को गुञ्जित करूं, एक क्षण के लिए हमारे संयुक्त बल से हम विजय प्रारम्भ करें! पर यह सब कहां से होवे? ऐश-आराम के अन्धकारमय वातावरण में किसी समय अपने नाथ का मुझे स्मरण होता था, और थर-थर कांपती हुई मैं आंखें फाड़कर चारों ओर देखती थी। मेरे प्रियतम आयें तो क्या मुझे ऐसी अधम देख चले जायंगे?' उस देवी के समान तेजस्वी स्त्री ने निःश्वास लिया और पेड़, पत्ते व पृथ्वी ने निःश्वास-परम्परा से दिशाएं कम्पित कीं। सुदर्शन की आंखों में अंधेरा आया।

'एक दिन सह्याद्रिशृङ्ग से एक वीर उतर आया—' देवी आगे बढ़ी, 'और अनेक अन्तरायों को भेदकर वह मुझे मिला। अपनी तीक्ष्ण आंखें तिरस्कार में फाड़कर उसने मुझे कुछ कहा—"मां! मां! क्या तुम्हें लज्जा आती है? तुम भी अपने प्रियतम की प्रतीक्षा करना भूल इस क्षुद्र विलास में बेहोश बन गई हो? तुम इस प्रकार उन्हें भूलोगी तो हम उन्हें कैसे खोजेंगे? उनके स्मरण सतेज कैसे रखेंगे? अम्बा!

तुम भी अपना गौरव व अपनी टेक भूल गईं ? हमारा क्या होगा ?"
"बेटा !" दुःखार्त हृदय से मैंने कहा, "सब मुझे भूले तो मैं भी अपने को भूलूं, इसमें आश्चर्य क्या है ?" "मैं तुम्हें न भूलने दूंगा, और न भुलाने दूंगा।" शंकर के अवतार-सम वह उग्र वीर बोला। "मुझे पिता की कृपा व अपना आशिष प्रदान करो। मैं जाकर तुम्हारे व अपने स्वामी का पता लगाऊंगा।"

'कृतज्ञ हृदय से मैंने उसे आशीर्वाद दिया, और अपने प्रियतम के स्मरण-चिह्नों की भवानी बनाकर मैंने उसे सौंपी, और जनानखाने का वातावरण भूल अपने प्रियतम की प्रतीक्षा करने लगी।

'पर मैं क्या प्रतीक्षा करूं ? मेरा भाग्य फूटा हुआ था। जो शौकीन पराये मेरे घर में बसे थे, उन्हें जीतकर मैंने अपना किया था। पर वे सब व मेरे पुत्र ऐसे मौजी बने थे कि स्वतः को पक्के व्यापारी के हाथ बेचने में वे आनन्द मानते थे। हमारा सर्वस्व उनके हाथ में गया।

'उनके मन में मैं न थी महादेवी, न थी जनानखाने का नूर—मैं तो थी केवल एक काम करने वाली लौंडी। मेरी समृद्धि उनके सदनों को सुशोभित करने के लिए हुई। मेरे पुत्र उनको सेवा करने में लगे। और मैं आर्य-जननी, जिसके उद्धार के लिए द्वैपायन-जैसे ज्ञानी व कौटिल्य-जैसे राजनीतिज्ञ मर मिटे थे, दासों की दासी बन गई।'

: ७ :

'मैं अधम से अधम बन रही हूं। अब इससे अधिक अधम दशा की कल्पना नहीं की जा सकती है। मेरे गौरव का ठिकाना नहीं है। मेरे घर पेट-भर भोजन नहीं है, मेरे पुत्र पिता-विहीन हुए हैं। वे अब निर्जीव व निराधार हो गए हैं। मुझे दिन-रात दुःखी होना पड़ता है। इससे भी अधिक दुर्दशा तो मेरे अन्तर की है। मैं मौज-शौक में थी, तब अपनी दशा का ख्याल नही रहा था; इस समय सेवा-धर्म का

आचरण करते समय उसका मुझे तीव्र भान होता है। मुझे अपना गया हुआ तेज खलता है। मेरा भग्न गौरव मुझे सदा ही सताता है। अपनी लुटी हुई समृद्धि का स्मरण मुझे होता है। अपने पुत्रों की निराधारता देख मेरी छाती फट जाती है। अपने प्रियतम की प्रतापी मूर्ति प्रत्येक क्षण मेरी आंखों के सामने खेलती है, मुझे उलाहना देती है, मेरा तिरस्कार करती है, मेरी हँसी करती है। वे सदा यही कहते हुए सुनाई देते हैं कि मैं आता हूँ, यह आया, पर तुम कहां थी, और आज कहाँ हो ?

'ऐ भैया ! उनके दर्शन करने, उनका स्वागत करने, उनकी चरण-वंदना करने के लिए मैं तरसती हूँ—पर कब आयंगे ? और आयंगे तो क्या ऐसी अधम को स्वीकार करेंगे ? ऐसे विचार से व्याकुल बन मैं इस एकान्त वन में प्रतीक्षा करती हुई बैठी हूँ। भैया ! तुम जहां से आये वहां चले जाओ। मेरी कथा में बहुत सुनने-सरीखा नहीं है।'

सुदर्शन यह बात सुनकर दंग रह गया। उसे ऐसा मालूम पड़ता था, मानो इस सुंदर से उसका पहले का परिचय हो; पर वह कौन थी, यह स्पष्ट समझ में नहीं आया।

'माँ ! घबराना नहीं, तुम्हारे प्रियतम की खोज करूंगा। मैं प्रतिज्ञा करता हूं। पर उनका पता कैसे लगे ? उनको कैसे पहचाना जाय ?'

आँसू बहाती हुई सुन्दरी के म्लान नेत्रों में तेज आया।

'मेरे प्रियतम को कैसे पहचानना ? बेटा, उन्हें पहचानना सरल हैं; क्योंकि सृष्टि में उनकी बराबरी का कोई नहीं है।'

'जब गगनविहारी व महत्वाकांक्षी मानवता देखो, जब सर्वाङ्गसंपूर्ण व्यवस्थात्मक सर्जकता देखो, तब उन मेरे प्रियतम को पहचानना।'

'जब मर्यादा-विहीन व बिना भ्रान्ति का ज्ञान देखो, जब सूक्ष्म व विशाल दृष्टि देखो, जब अन्धकार भेदने की सतत उत्कण्ठा देखो, तब उन मेरे प्रियतम को पहचानना।'

'जब आचार-विचार की तटस्थता देखो, जब उग्र व अविचल आत्मनिष्ठा देखो, समय व स्थिति का स्वामित्व प्राप्त करने का निश्चय देखो, तब उन मेरे प्रियतम को पहचानना।'

'जब मनोहर भावना की सतत सेवा देखो, जब स्थूल व सूक्ष्म सौन्दर्य की अविरत भक्ति देखो, जब उसे व्यक्त करने की सर्वभक्षी महेच्छा देखो, तब उन मेरे प्रियतम को पहचानना।'

'जब रसमय मस्ती का मोहक नशा देखो, जब क्षण-प्रतिक्षण के विलास का अनुभव करने की अधीरता देखो, जब स्थल, काल व देह के भेद रहते हुए भी प्रेम की परम सिद्धि प्राप्त की हुई देखो, तब मेरे उन प्रियतम को पहचानना।'

'जब देश व जाति से परे न्याय देखो, जब वर्ण व योनि से परे औदार्य देखो, जब दान का ही निरंकुश लोभ देखो, तब मेरे उन प्रियतम को पहचानना।'

'जहां ये सब लक्षण एकाग्र हों, जहां क्षण-प्रतिक्षण जीवन का रस मालूम हो, जहां प्राप्ति, कर्तव्य व उपभोग में ही क्षण-प्रतिक्षण की तपस्या समाप्त होती जान पड़े, जहां प्रफुल्ल शक्ति का निष्काम आविर्भाव प्रतीत हो, वहां मिलेंगे मेरे प्रियतम !' कहकर वह सुन्दरी गर्व से चहुंओर देखती रही। दिशाओं ने विजयघोष किया हो ऐसा मालूम पड़ा, और सुदर्शन ने उन्हें पहचाना। उसने सिर झुकाया और वह बोला, 'पहचानता हूं, पहचानता हूं, मां ! घबराना नहीं। उन्हें ले आऊंगा। पर आप कहां मिलेंगी ?'

उस सुन्दरी ने सिर ऊंचा किया। उसकी भव्य मुखमुद्रा पर अवर्णनीय वेदना जान पड़ी....उसकी बड़ी-बड़ी होती आंखों में उलाहना था....'मुझे, मुझे....' अपमानित हुई हो, इस प्रकार उसने कहा, 'पिताहीन जन्तुओं को मां कहां से मिले ?....' और दिशाओं ने रुदन आरंभ किया। चारों ओर से विलाप करते वृक्षों के आक्रन्द से सुदर्शन रुंध गया। पसीने से वह घबरा गया।

'मैं पहचानता हूं— पहचानता हूं' कहता हुआ वह 'मां' के पास से जाने लगा।

और एकदम सूर्य का तेज उसे सताने लगा। चहुँओर देखा तो निर्जन टेकड़ी पर बैठे-बैठे वह आंखें मलता था। धूप में पास से बहती हुई नदी चमक रही थी।

सुदर्शन ने आंखें मलकर सिर दबाया। क्या वह सोता था? क्या यह स्वप्न था? क्या उसने सपना देखा या वह हृदय में स्थित भावों का सङ्कलन कर रहा था? क्या उसने दैवी संदेश सुना या उत्तेजित देश-भक्ति के कारण निबन्ध लिखने की सामग्री उसने एकत्रित की?

वह उठा। सत्य की खोज करने की उसे परवाह न रही। उसने 'मां' को देखा था, उसने संदेश सुना था, उसका दुःख अपनी आंखों से देखा था। मां ने उसे अपनी दुर्दशा का रहस्य कहा था; वह अपने प्रियतम की प्रतीक्षा करती थी। उसके प्रियतम...। 'जब देखो तब मेरे उन प्राण को पहचानना...।' कह सपने में सुने हुए शब्दों को वह याद करने लगा।

'मां! मां! मैं तुम्हारे प्रियतम को वापस ले आऊंगा,' वह ठीक से खड़ा हो गया,' —नहीं तो प्राण गंवा दूंगा,' कहकर वह वहां से चला; और दौड़ता-दौड़ता टेकड़ी पर से उतरता हुआ बोला—'वन्दे-मातरम्।'

: ८ :

'मां' के प्रथम दर्शन के पश्चात् सुदर्शन में उसके प्रति आकांक्षा बढ़ गई। लगभग प्रतिदिन रात को 'मां' उसे दर्शन देती थी; और दिन-भर उसका रूप, उसका सौन्दर्य व उसकी मुक्ति के विचार वह किया करता था। और इन विचारों में 'बङ्गाली' समाचार-पत्र उसे बहुत सहायता करता था।

स्वदेशी की हवा बङ्गाल में से चारों दिशाओं में फैली। स्वदेशी विचार, स्वदेशी आचार, स्वदेशी वस्तु, स्वदेशी भाषा आदि सब आदरणीय समझे जाने लगे। सुदर्शन को 'मां' अपना गौरव पुनः बढ़ाती हुई दिखाई दी; पुत्र 'मां' को पुनः पहचानने लगे।

कुछ-न-कुछ नया प्रतिदिन होता था। कलकत्ते में स्वदेशी व्रत के लिए युवक प्राण अर्पण करते थे; विदेशी कपड़ा खरीदने जाने वाली सुन्दरियों के पैरों के सामने आड़े पड़कर वे उन्हें स्वदेशी बनने के लिए प्रार्थना करते थे; और 'वंदेमातरम्' के द्वारा 'मां' की विजय उच्चारते थे। स्वदेशी होने के लिए, 'वंदेमातरम्' उच्चारने के लिए, विद्यार्थियों को दण्ड दिया जाता था; विद्यालयों को दी जाने वाली सहायता छीन ली जाती थी; और लोगों को डराने के लिये पुलिस को स्कूलों में, और गुरखों को गांवों में बैठाया जाता था। सरकार ने 'सरक्युलर' निकाल 'वन्देमातरम्' का उच्चारण करना अपराध ठहराया। 'वन्देमातरम्' का उच्चारण करने के लिए बंगाल के युवकों ने 'एन्टी सरक्युलर' समिति बनाई।

१४वीं अप्रैल १९०६ के दिन बारीसल में रसूल बैरिस्टर के सभापतित्व में परिषद् होने वाली थी।

दोपहर के दो बजे परिषद् के सदस्य शान्तिपूर्वक तीन-तीन की कतार में राजा की कोठी से निकले। पहली कतार में सुरेन्द्रनाथ, मोतीलाल घोष, भूपेन्द्रनाथ बसु आदि बंगाल के अमर नेता थे। उसके पीछे की कतार में अरविंद बाबू व दूसरे थे। पुलिस लाठी सहित हाज़िर थी।

ज्यों ही 'एन्टी-सरक्युलर समिति' के सदस्य बाहर निकले त्यों ही पुलिस उन पर टूट पड़ी। निःशस्त्र लड़कों को मारना सरल बात थी। लड़के 'वंदेमातरम्' की ध्वनि से उत्तर दें, यह स्वाभाविक बात थी। परिणाम में, स्वदेश भक्त युवकों के सिर फूटे। चित्तरञ्जन गुहा को तालाब

में डाल दिया गया। सुरेन्द्रनाथ को पकड़ कर मजिस्ट्रेट के वहां ले जाया गया। दूसरे दिन पुलिस ने परिषद् को बिखेर दिया।

युद्ध प्रारम्भ हुआ। समस्त भारत में हज़ारों हृदय समराङ्गण में कूदने लगे। सुदर्शन के उत्साह का पार नहीं रहा। 'मां' के 'प्रियतम' अनेक युगों के पश्चात् वापस आते हुए मालूम पड़े।

बारीसल का अनुभव प्राप्त कर अरविंद घोष वापस आये और बड़ौदा कालेज में लड़कों को 'माता की महत्ता' पर उन्होंने भाषण दिया। उसमें उन्होंने बारीसल की कहानी भी थोड़ी-बहुत कही। सुदर्शन को मालूम पड़ा कि बङ्गाल में जो चेतना प्रसारित हुई थी, उसमें उसका भी भाग था।

माता की मुक्ति के, स्वदेशी के उद्धार के, स्वातन्त्र्य के अनेक सपने मस्तिष्क में घूमने लगे; और वह सबों को स्पष्ट रूप देने लगा; उसे ऐसा मालूम पड़ता था कि 'मां' के 'प्रियतम' को वापस लिवा लाने का उत्तरदायित्व केवल उसी पर था।

धीरे-धीरे कितने ही समानशील लड़के एक-दूसरे का परिचय कर माता की भक्ति के सम्प्रदाय की कंठी एक-दूसरे को बांधने लगे।

अरविंद घोष ने इतने में त्यागपत्र दिया। वे 'मां' की मुक्ति के लिए बङ्गाल जाते थे। उनका अन्तिम भाषण सुनने के लिए ये सब मातृभक्त युवक आये थे, और रात में भीमनाथ के तालाब पर मिलने का निश्चय किया था।

सात

भीमनाथ के तालाब पर

: १ :

भीमनाथ का तालाब इस समय कहां है, यह खोजना कठिन होगा, क्योंकि उसे भरकर उस पर बंगले बनाये गए हैं। १६०६ में कीचड़ व कमल से भरा हुआ यह तालाब ढोरों के पानी पीने के उपयोग में आता था। कभी-कभी कालेज के विद्यार्थी तैरना सीखने के बहाने जाकर उसमें कूदते थे, और उसके गहरे जल के प्रताप से अपने रक्त को शुद्ध बनाने का अवसर प्राप्त करते थे।

जब पाठक, केरशास्प, पाण्ड्या व सुदर्शन वहां पहुंचे तब किनारे पर पांच लड़के दो लालटेन बीच में रखकर बैठे थे। वहां फैले हुए अन्धकार की या गुनगुनाते मच्छरों की परवाह किये बिना ये उत्साही युवक देश का उद्धार करने के लिए यहां एकत्रित हुए थे। अरविंद बाबू के भाषण के नशे में वे मस्त थे। उनके हृदय, हिम्मत, आशा व कार्य-तत्परता से परिपूर्ण थे। उनकी आंखें स्वदेश-भक्ति से चमकती थीं। कुछ करने को, समय आने पर मरने को वे तैयार हुए थे।

सुदर्शन के साथ आये हुए तीन व्यक्तियों में से केरशास्प व मगन पण्ड्या के चारित्र्य की रूपरेखा आगे दी है। पाठक सबसे निराले स्वभाव का था। सुदर्शन उसका प्रिय मित्र था; पर उसके हृदय के उभार की सीमा उस मित्र से अधिक आगे नहीं बढ़ती थी। और सब की ओर वह शान्ति व तिरस्कार से देखता था; और जब राजकीय विप्लव के सपने सबको आते थे तब उसका उपहास करने में वह

आनन्द मानता था। इतना ही नहीं, पर किसी दिन गायकवाड़ सरकार के दीवान बन, दशहरे के दिन हाथी पर चढ़ सिर पर चँवर डुलाने की आकांक्षा का सेवन वह करता था। वह स्वार्थवृत्ति का था, और अपने मित्रों में अपनी महत्ता स्वीकार करवाने के लिए ही उनकी राजकीय व सामाजिक योजनाओं में सम्मिलित होता था। वह वादविवाद में अद्वितीय था, और एक के बाद एक प्रत्येक को मात देने के लिए बातचीत में दिलचस्पी लेता था। सरकार, कांग्रेस, धर्म, समाज, नीति आदि सब सत्य हैं, तथा असत्य हैं, यह उसने दूसरे मित्रों से स्वीकार करवाया था। वह तो इस समय आनन्द के लिए और सुदर्शन नाराज न हो इसलिए आया था।

जो पांच लड़के बैठे थे वे सब देशभक्ति के उत्साह से पागल हुए थे।

धीरु शास्त्री बी० एस-सी० का अभ्यास व टेनिस का खेल दोनों पर अधिकार जमाने का प्रयास करता था। उसने आर्यसमाजियों की संगति में धर्मावलम्बी राष्ट्रीयता प्राप्त की थी, और दयानन्द की दृष्टि से वह सब दुनिया को देखता था। उसे धार्मिक आडम्बर के प्रति तिरस्कार था, और विरोधी यदि सीधी तरह न माने तो डंडे के दुःसह न्याय से उसे सीधा करने के पक्ष में था। परीक्षा पास कर गुरुकुल कांगड़ी में अध्यापक बन आर्यसमाजी धर्म-प्रचारकों को शिक्षित कर भारत में सतयुग को प्रसारित करने के लिए वह अधीर बना था।

उसके पास बैठा हुआ सनत्कुमार जोशी देखने में जरा उग्र व सशक्त लड़का था। विरोध करने, लड़ाई करने या सहायता करने के लिए वह सदा ही तत्पर रहता था। वह रोज सबेरे तीन सौ पचास दण्ड निकालता था, और शाम को हनुमान के दर्शन कर अखाड़े में जाता था। उसके स्नायु लोहे के समान रहें, इसकी उसे बहुत ही चिन्ता थी। जहां भी वह शारीरिक निर्बलता देखता, वहां उसे उद्वेग हो आता था; और चाय, बीड़ी, मिठाई आदि से हानियों के बारे में जहां-तहाँ भाषण देता था। उसने अभी से रावपुरे में एक अखाड़े की योजना

की थी, और विद्यार्थियों को उठ-बैठ करवाने में उसे जो आनन्द मिलता था, वैसा उसे दूसरे किसी काम में नहीं मिलता था। छोटे व निर्बल शरीरवाले सुदर्शन के प्रति उसका तिरस्कार किसी प्रकार कम नहीं होता था, और उसे देख अपने हाथ के स्नायुओं की ओर गर्व से देखे बिना उससे रहा नहीं जाता था।

गिरजाशंकर शुक्ल जूनियर बी० ए० में पढ़ता था। उसका भाई बड़ौदा रियासत में पल्टन में बड़े पद पर था, इससे उसे पल्टन का बहुत मोह था। उसने कवायद व पल्टन की योजना की कुछ निर्जीव पुस्तकें पढ़ी थीं, और जब कभी उनमें से प्राप्त ज्ञान का उपयोग करता था। दशहरे के दिन सवारी निकलती तब शुक्ल महाराज पागल हो जाते थे, और अपने भाई की पहचान करवाने के लिए आतुर रहते थे। वह बड़ौदा की प्रजा था, और सयाजीराव गायकवाड़ का अनन्य भक्त था। उसे उस नरेश की शक्ति में सम्पूर्ण विश्वास था। गायकवाड़ के द्वारा देश का उद्धार साधने की योजनाएं वह हमेशा बनाता व उन्हें नष्ट करता था।

नारण पटेल पैर बढ़ा पीछे हाथ टिकाकर बैठा था। एक पशु की तटस्थता से उसने सिर पीछे डाला था। उसका मोटा शरीर जरा हास्य-जनक मालूम पड़ता था। वह बी० ए० में था, और गणित में एक ही था; बोर्डिङ्ग की दीवारें उसके गणित के शौक की सदा ही साक्षी देती थीं, और यदि कागज़ न मिले तो कोट या कमीज़ पर दिन में अनेक बार उसे सवाल करते देखने में किसीको आश्चर्य नहीं लगता था। वह प्रोफेसर की सहायता कभी नहीं लेता था, और समझ में न आएं ऐसे प्रश्न उनके सामने रखने में बड़प्पन मानता था। मेकॉले से स्वतः बढ़कर है, क्योंकि उसे गणित बिलकुल नहीं आता था, यह उसके मन में स्पष्ट था; और गणित में कमजोर होने से नेपोलियन वॉटरलू की लड़ाई हार गया, यह अभिप्राय वह बहुत बार उच्चारित करता था।

बहुत बार ओंठ चौड़े रख रास्ते के बीच खड़े रहकर वह देश का

विचार करता था; और कोई बड़ा तूफान खड़ा करने को योजना किया करता था। वह तूफान अपनी अप्रतिम वक्तृता से होनेवाला है, ऐसी उसकी श्रद्धा होने से वह भाषण तैयार करने व रटने का काम किया करता था।

मोहनलाल पारेख विद्यार्थी नहीं था, पर गायकवाड़ी नौकर था। वह बी० ए० पास था और अरविन्द बाबू के परिचय में आया था। वह शुद्ध विप्लववादी था व गाँव-गाँव में विप्लववाद का प्रसार करने में मुक्ति मानता था। उसकी दृष्टि अधिक दीर्घ नहीं थी, पर उसकी दृढ़ता दुर्जेय थी।

इन संस्कारी व विशुद्ध हृदय के युवकों के हृदय में स्वातन्त्र्य व मातृभक्ति की ज्वाला अखण्ड रूप से प्रदीप्त थी; पैगम्बरों की श्रद्धा उनके हृदय में स्फुरित हो रही थी। गुजरात की प्रतापी आत्मा के तिनकों के समान इन लड़कों के मन में राष्ट्र की रचना करना ही परम ध्येय था; उसे स्वतन्त्र बनाना ही प्रथम कर्तव्य था।

: २ :

'पारेख ! क्या सब आये हैं ?' केरशास्प ने पूछा।

'नहीं, अभी वे बम्बईवाले नहीं आये हैं।'

'आने चाहिएं; शिवलाल को जगह का पता है।'

'क्यों धीरजराम, क्या बात चल रही है ?' पाठक ने पूछा, और सब लालटेन के आसपास बैठने लगे।

'मैं यह कब से कहता हूँ' नारण पटेल ने बीच में कहा हम लोगों को सीक्रेट-सोसायटी' (छिपा मंडल) बनानी ही चाहिए। आज स्थापना करो। फ्रांस, इटली—'

'छिपे मंडल से कहीं कवायद होने वाली है ?' शुक्ल ने कहा।

'क्या आप लोगों में कवायद करने की हिम्मत है?' पाठक ने जोर-दार शब्दों में कहा।

'क्या तुम ऐसा सोचते हो कि हम सब निर्जीव हैं?' सनत्कुमार जोशी ने अपने स्नायुवाले हाथ की ओर अनजान में दृष्टिपात किया।

'पर राष्ट्रीय जोश के बिना कैसे?' धीरजराम बोला।

'आप लोगों का ठिकाना ही कहाँ है?' पाठक ने कहा।

'जरा सुनो,' आजन्म नरेश के गौरव से केरशास्प बोला। उसकी आंखों में व वाणी में हमेशा सत्ता थी। सब चुप हो गए।

'समय बहुत हुआ है और आज का काम पूरा कर मुझे तो अभी कैम्प में जाना है। वादविवाद का यह समय नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी बात कह सुनाए तो कुछ समझ में आए कि हम किस विषय पर एकमत हैं।'

'भारत स्वतन्त्र होना ही चाहिए।' नारण पटेल ने मानो अकड़ कर बैठने से स्वातन्त्र्य मिलता हो, इस प्रकार अकड़ते हुए कहा।

'किस तरह, इतना ही प्रश्न है!' पाठक ने कटाक्ष किया।

'यही मुद्दे की बात है।' केरशास्प ने मजबूत पैर पर हाथ ठोकते हुए कहा।

'वह कौन है?' किसीको दूर से आते देख उसने पूछा।

'मैं अम्बेलाल हूं,' एक व्यक्ति ने कहा, और दो युवक आये।

'साथ में कौन, शिवलाल है?' पारेख ने पूछा।

'हां,' कह शिवलाल श्राफ व अम्बेलाल देसाई बैठे।

'अब हम सब एकत्रित हुए हैं,' केरशास्प ने कहा, 'प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी योजना कहना प्रारम्भ करे। समय हो गया है। नारण भाई, तुम्हारी क्या योजना है?'

'मेरी योजना तो सरल है। हम लोग एक छिपा मण्डल स्थापित करें—'कर्बोनारी'[1] की ही कल्पना करो न। एक दिन प्रकाश में आकर

[1] इटली को स्वतन्त्र करने के लिए स्थापित छिपी मण्डली।

सत्ता ले लें, याने सब-कुछ हो गया।' 'बहुत ही सरल काम कहते हो,' इस प्रकार नारण भाई बोला।

'तुम्हें तो यह लड्डू खाने की बात लगती है,' पाठक ने कहा।

'पाठक, अब वादविवाद जाने भी दो।' केरशास्प ने स्वतः लिये हुए सभापति के स्थान से कहा।

'अच्छा, कहो तब।' हँसकर पाठक ने जवाब दिया।

'पाठक हैं ही ऐसे।' नारण भाई ने कहा।

'मैंने गणित के समान निश्चित कर रखा है। पचास हज़ार अंग्रेज़ों के लिए पाँच लाख का छिपा मण्डल—एक अंग्रेज़ के लिए दस भारतीय।'

'और तोपों की गिनती नहीं—' पाठक ने सुदर्शन के कान में कहा।

'अच्छा मोहन भाई! तुम्हारी क्या योजना है?'

'पर योजनाएं इकट्ठी करके फिर क्या?' अम्बेलाल देसाई ने कहा।

'फिर देखेंगे, उनमें कितनी समानता है।' केरशास्प ने कहा।

'मोहन भाई! तुम बोलो।' शास्त्री ने कहा।

'मैं तो जोश में विश्वास रखता हूँ। जोश के बिना त्याग नहीं आता। यह जोश राजद्रोही साहित्य के बिना नहीं आता। इससे पहले चुपचाप प्रेस निकालकर चहुँओर चेतनायुक्त साहित्य का प्रसार करना चाहिए।'

'और प्रेस पकड़ा जाय तो?' पाठक से कहे बिना रहा न गया।

'एक नहीं तो दूसरा, दूसरा नहीं तो तीसरा। प्रेस नहीं तो लिखकर गांव-गांव व घर-घर असन्तोष फैलाना चाहिए।'

'अच्छा शास्त्री! तुम्हारी क्या बात है?' केरशास्प ने पूछा।

'केरशास्प! मेरी बात तो बिलकुल ठीक है। हिन्दुओं का धार्मिक जोश जब तक बदला नहीं जाता, तब तक कुछ नहीं होने का। मुझे तो एक विशाल गुरुकुल स्थापित करना है और उसमें महर्षि पैदा

करने हैं। एक धर्म-ग्रन्थी से सबको बांधकर जब हम देश के उद्धार के लिए आगे बढ़ेंगे तब ही कुछ हो सकेगा।'

'सब महर्षि आपस में लड़ मरेंगे तो कुछ भी न होगा।' पाठक ने सुदर्शन को धीरे से कहा।

एक चित्त से यह सब सुनकर सुदर्शन उकताकर बोला, 'अरे भाई, सुनने तो दो।'

'मैं आपको अपनी योजना कहता हूं,' गिरिजाशङ्कर शुक्ल से चुप न रहा गया।

'मेरी योजना सबसे अच्छी है। मैं बी० ए० होने पर गायकवाड़ी पल्टन में जाऊँगा, और पल्टन को हाथ में कर उसे बढ़ाता ही जाऊँगा, और उस पल्टन के ज़ोर से गायकवाड़ सरकार भारत के राजसिंहासन पर बैठाऊँगा।'

केरशास्प को भी जरा हँसी आई। 'उस पल्टन को पटाके फोड़ना भी आता है या नहीं?'

'नहीं आता होगा तो आ जायगा।' शुक्ल ने विश्वास दरशाया।

पाठक ने हास्यजनक दृष्टि से आकाश की ओर देखा।

: ३ :

'पण्ड्या! तुम क्या कहते हो?' शुक्ल ने कहा।

'मैं तो ऐसा मानता हूँ कि जब तक विलायत या अमेरिका जाकर पाश्चात्य का कुछ रहस्य अपने हाथ में न कर लें तब तक कुछ लाभ न होगा। मुझे तो कोई पैसे दो तो पहले वहां जाकर अध्ययन कर आऊँ। जापान का उद्धार इसी प्रकार हुआ है न?'

'यह पैसे की बात है। जापान में तो सरकार लड़कों को अध्ययन के लिए विदेश भिजवाती थी।' सनत्कुमार जोशी ने कहा।

'हमारे यहां गायकवाड़ सरकार है।' गिरिजाशङ्कर शुक्ल ने कहा।

'तुम्हारी क्या योजना है, केरशास्प ! वह तो कहो ?' पाठक ने कहा। 'यहां तो किन्हीं दो का मत मिलता ही नहीं।'

'मेरी योजना तैयार है, पर एक बार सबको तो कह लेने दो, फिर मैं कहूंगा। तुम क्या कहते हो पाठक ?'

'सब कह लेंगे, तब मुझे कुछ सूझ पड़ेगा। यहां तो इतना मतभेद दिखाई देता है कि क्या होगा कुछ समझ में नहीं आता।'

'अच्छा, शिवलाल ! तुम क्या कहते हो ?' केरशास्प ने पूछा।

'देखो, देश का आधार संस्थाओं पर है, और संस्थाओं का आधार उनके सञ्चालकों पर है। यदि हम इन सब सञ्चालकों को किसी प्रकार नचा सकें तो ही ठीक काम हो सकता है। सब संस्थाओं का सञ्चालन बल हममें आ जायगा, याने सब बात जल्दी-जल्दी हो जायगी।'

'यह सरल बात ही है न,' पाठक ने कहा।

'अरे भाई, जाने दो। और अम्बालाल तुम ?'

'मेरी योजना तो तुम जानते ही हो,' आवाज़ धीमी कर निश्चयात्मकता से देसाई ने कहा, 'मैं व एक मित्र बम बनाने की रीति का शोध करते हैं। विनाश के साधनों के बिना कुछ न होगा। शुक्ल की पल्टन का व नारणभाई के छिपे मण्डल का सब आधार उस पर है। एक सुपारी से बड़े महल उड़ जावें, फिर क्या ?'

सब एकाग्रचित्त हो सिर आगे कर सुनते रहे।

'सम्पूर्ण यूरोप की सत्ता का आधार इस बल पर है। जिसके पास गोला-बारूद है वह जीतेगा। हम लोग बंदूक नहीं रख सकते। हमें कोई ऐसा शोध करना चाहिए कि इन सबसे वह बढ़ जाय।'

'और सदुभाई, तुम क्या कहते हो ?' केरशास्प ने पूछा।

ये सब बोलते थे, उस समय वह सो गया हो, इस प्रकार वह चौंक उठा। उसके मुख पर रक्त आया। उसे जरा क्षोभ हुआ।

'मैं—मैं—पाठक तुम कहो।'

'मैं अन्तिम।'

'सदुभाई ! इसमें क्या हिचकिचाते हो ? तुमने तो ऐसी योजना पर बहुत समय बिताया है।' केरशास्प ने प्रोत्साहन दिया।

'देखो,' जरा कांपती हुई आवाज़ में सुदर्शन ने कहा, 'मेरे पास योजना नहीं है, पर एक दृष्टि-बिन्दु है। तुम सबने एक-एक योजना कही —पर अपने विशेष दृष्टि-बिन्दु से, 'मां' के दृष्टि-बिन्दु से नहीं।'

'किस प्रकार ?' नारण भाई ने पूछा।

'मां प्रतीक्षा में बैठी है,' जरा दुःखपूर्ण आवाज़ में सुदर्शन ने कहा, 'उसका स्वातन्त्र्य गया है, शक्ति गई है, श्रद्धा गई है। जो संस्कार की जननी है, उसे सब असंस्कारी मानते हैं। तुमने जो योजनाएं कहीं वे एक-एक कार्यरूप में लाई जायं तो 'मां' की दुर्दशा होगी। एक हाथ खींचेगा, दूसरा पैर खींचेगा। ये सब योजनाएं यदि कार्यरूप में रखी जायं, ऐसी मानवता कहां है ? भगीरथ काम करने की, और उन्हें पूर्ण करने की और मानवता 'मां' के चरणों में रखने की शक्ति कहां है ?'

'मैं भी यही कहता हूं,' शास्त्री ने कहा।

'मैं भी—' मोहनलाल ने कहा।

'नहीं, जरा अन्तर है। धर्म के नाम पर कुछ करोगे तो धर्मान्धता का जन्म होगा। साहित्य द्वारा करोगे तो केवल बातें करने का शौक ही बढ़ेगा।'

'पर भाई बात कहो न ?' नारण भाई बोले, 'तुम क्या कहते हो ?'

'इतना ही कि भारतीय मानवता में व्यवस्था लाकर सब बंधनों को कुचल डालने वाला भूकम्प किये बिना रास्ता नहीं है।' सब सुदर्शन की गम्भीर आवाज़ से एकचित्त हुए।

'यह तो कुछ समझ में नहीं आता। स्पष्ट कहो न ?' केरशास्प ने कहा।

'कहूं ?' सुदर्शन ने कहा, 'मां' की निर्बलता तुम लोग सोचते हो, उस तरह एक प्रकार की नहीं है। 'प्रेस' रखोगे तो लोग पढ़ेंगे नहीं;

बम बनाओगे, तो फोड़ने वाला नहीं मिलेगा; पल्टन खड़ी करोगे तो उसे जीतना नहीं आयगा। ऐसा न होता तो मुट्ठी-भर व्यापारी अंग्रेज़ हमें इस प्रकार जीत न लेते। हमारा रोग गम्भीर है। हमारी मानवता दूषित हो गई है।'

'क्या कहते हो?' नारण भाई ने तिरस्कार से पूछा।

'मुझे जो मालूम पड़ता है वह। हम लोगों में दोष आ गए हैं। हममें बुद्धि है, हिम्मत है, देशभक्ति है, तो भी 'मां' में तल्लीन व्यवस्थित मानवता नहीं है। इने-गिने अंग्रेज़ चाहे जहां बसते हैं, पर उनमें व्यवस्था रहती है। हम असंख्य हैं, पर हममें व्यवस्थात्मक उत्साह नहीं है। इसे लाने की मेरी योजना है। उसके आने पर तुम सबकी योजनाएं सरल होंगी।'

'वह होता तो हम लोग इस दशा में पहुंचते ही क्यों?' पाठक ने कहा।

'अब पाठक! तुम क्या कहते हो?' केरशास्प ने पूछा।

'तुम खुद ही कहो न?'

'तुम कहो।'

'नहीं, तुम।'

'अब तुम्हारी योजना क्या है?' नारण भाई ने केरशास्प को पूछा।

केरशास्प ने सिंह के समान सिर ऊंचा करते हुए कहा—'इन सब योजनाओं के पाये पर पहले अधिकार जमाना चाहिए। पैसा चाहे जो कुछ कर सकता है। पहले पैसे आएं तो सब-कुछ हो सकता है। मैं अब बम्बई जाने वाला हूं। मेरा कितने ही रुई के व्यापारियों से सम्बन्ध है। आते वर्ष तुम्हें चाहे जितने पैसों की सहायता कर सकूंगा। मेरा तो एक-एक कदम आगे बढ़ाने में विश्वास है।'

'केवल मेरी योजना में पैसे की आवश्यकता नहीं है,' छाती निकाल सनत्कुमार जोशी ने कहा, 'गांव-गांव में अखाड़े बनाना और भीमसेन तैयार करना—इसमें चाहिए केवल हवा व कसरत।'

'और पीने को चाहिए दूध,' केरशास्प ने कहा। 'देखो एक काम करें। एक वर्ष हम सब अपनी-अपनी योजना के अनुसार आगे विचार करें। आते वर्ष हम लोग अवश्य कुछ कार्यारम्भ कर सकेंगे।'

'पर इस समय एकत्रित हुआ मंडल टूटना नहीं चाहिए,' नारण-भाई ने कहा।

'नहीं तो,' मोहनलाल ने कहा, 'अभी मंडल स्थापित करो। एक प्रधान व एक मन्त्री नियुक्त करो। सब एक-दूसरे के साथ पत्र-व्यवहार करो, और आते वर्ष कार्य में कूदो।'

'पर पाठक, तुम्हारी क्या योजना है?' कुछ है या नहीं?' गिरिजा-शंकर शुक्ल ने पूछा।

मुझे तो ये सब हवाई किले मालूम पड़ते हैं,' स्वस्थता के साथ पाठक ने कहा। सब जरा आश्चर्यचकित हो, अधीर बन पाठक के तेजस्वी मुख की ओर देखते रहे,' 'तुम छोटे बच्चों के समान बात करते हो।'

'क्यों?' आंखें फाड़ केरशास्प ने पूछा।

'क्यों क्या?' पाठक तिरस्कार से कहने लगा 'तुम्हारे इस गुड्डा-गुड़िया के खेल से ब्रिटिश-साम्राज्य थोड़े ही घबराने वाला है? और यदि घबरायगा तो भी क्या करोगे? तुम सब तेतीस करोड़ भेड़ें क्या कर सकते हो?'

सुदर्शन ने स्तब्ध बन अपने प्रिय मित्र की इस प्रश्नावली को सुना।

'भेड़ें!' सनत्कुमार ने ज़ोर की आवाज़ में कहा। सब गुस्से से देखने लगे, पर पाठक की शान्ति अभङ्ग थी।

'भेड़ भी नहीं, जोशी! तेतीस करोड़ भेड़ें भी एक लाख गड़रियों के हाथ में नहीं रहेंगी।'

'उसका रास्ता क्या है?' केरशास्प ने पूछा।

सुदर्शन अपने प्रिय मित्र के भयङ्कर शब्द सुन दंग हो गया। पाठक इतना अश्रद्धावान् था इसका उसे पता नहीं था।

'कुछ नहीं। पर 'मां' का भविष्य तो है।' गरम होकर सुदर्शन ने कहा।

'मां ! जिसे तुम 'मां' कह सम्बोधित करते हो, सदुभाई, वह सचमुच में क्या है, क्या उसका तुम्हें ख्याल है ?'

सुदर्शन ने उत्तर में क्रोध से दृष्टिपात किया।

' "टाइम्स ऑफ इण्डिया" में नौकरी करो—नौकरी।' नारण भाई ने कहा।

'तुम्हारी सलाह फिर लूंगा।'

'तब क्या तुम मण्डल बनाने के विरुद्ध हो ?'

'बिलकुल, और मैं उसमें शामिल भी नहीं होऊँगा। कहो तो चला जाऊँ ?'

सब पर निरुत्साह की शान्ति फैल गई। क्या करना है यह किसीको सूझा नहीं। केरशास्प चेत गया।

'जाने की आवश्यकता नहीं है।' उसने कहा, 'तुम्हारी प्रामाणिकता में हमें विश्वास है। पाठक को यदि पसन्द न हो तो भले ही दूर रहे। शब्दों से नहीं पर कार्यों से इसे अपना करेंगे। चलो, अब देर होती है।'

'केरशास्प ! तुम प्रधान बनो।' सुदर्शन ने कहा।

'हां,' शिवलाल श्राफ ने अनुमोदन किया।

'और सदुभाई, तुम मंत्री बनो।'

'मुझसे—'

'सदुभाई ! तुम ही योग्य हो।' केरशास्प ने कहा और सदुभाई ने पद स्वीकार किया। 'चलो तब वंदेमातरम्; पाठक ! रात में जरा विचार करना।'

'मैंने तो बहुत किया है,' तिरस्कार से पाठक ने कहा। सुदर्शन उसके प्रति क्रुद्ध हुआ। उसके अन्तर में स्थित मित्रभाव को ठेस पहुँची।

'अच्छा, वंदेमातरम्—वंदेमातरम्—' एक-दूसरे की सबने इज़ाज़त ली।

'सदुभाई !' अम्बेलाल देसाई ने कहा, 'बम्बई परीक्षा के लिए आओ तब मेरे यहां ही ठहराना।'

'नहीं, मेरे यहां,' शिवलाल श्राफ ने कहा।
'अवश्य, अवश्य,' कह सुदर्शन वहां से चला।

: ४ :

सुदर्शन को आज का प्रसङ्ग ऐतिहासिक मालूम पड़ा। आज के मित्रों में देशोद्धारक महासंस्था का बीज उसे दिखाई दिया, और खुद उस संस्था का मंत्री है, इस गर्व से उसकी योजना व सपनों का वेग बढ़ा। एक वर्ष में सब योजना उसने परिपक्व की, एक महान् प्रवृत्ति 'मां' के उद्धार के लिए आरम्भ करना उसके मन में सरल मालूम पड़ा। धार्मिक जोश, अखाड़े का व्यूह, पल्टन, पैसा, समाचारपत्र, विदेश में सहयोगी संस्थाएं, और यह सब एक व्यवस्थित मण्डल के अधिकार में हो, फिर क्या चाहिए? 'मां' के प्रियतम के वापस आने वाले चरण-रव की झनकार उसे सुनाई दी।

पाठक के द्रोह से उसका हृदय फट गया। उसके मन में पाठक भाई से भी अधिक था। उसकी दृढ़ता, शक्ति व साहचर्य अपने ही हैं ऐसा वह सदा ही मानता था; पर वह अधमता को ऐसी तिरस्करणीय दशा में पड़ा है, इसका उसे ख्याल न था। चुपचाप दोनों मित्र अपने कमरे में आये, और कपड़े उतार सोने की तैयारी करने लगे। थोड़ी देर बाद कृत्रिम हास्य से पाठक ने कहा—'Good Night, सदुभाई! निश्चिन्तता से सोना।' मूक तिरस्कार के कारण सुदर्शन ने उत्तर भी न दिया।

सुदर्शन ने सोने का प्रयत्न किया पर वह सफल न हुआ। योजनाओं की परम्परा उसके मस्तिष्क में घूमती रही। अरविंद घोष का संदेश उसके कान में अलग-अलग रूप में सुनाई देता रहा। भीमनाथ के तालाब पर की बातचीत बार-बार वह सुनने लगा। कालेज के पास

देखी हुई 'भारत-माता' का भव्य मुख हमेशा दिखाई देता रहा। और प्रलयकाल के उत्साह-सागर की प्रचण्ड ऊर्मियां उछलती रहीं।

जागृत स्वप्न में व्यग्र बना हुआ सुदर्शन जल्दी उठा, और बरामदे में कुरसी पर बैठ देश के उद्धार के विचार करने लगा। विचारों में वह ऐसा तल्लीन हो गया कि पीछे पाठक आकर खड़ा था, यह भी उसने नहीं देखा।

पाठक की आंखों में मैत्री का भाव था। उसकी बड़ी आंखें जागरण व खिन्नता से लाल हो गई थीं। बहुत देर तक वह मृदुता से सुदर्शन की ओर देखता रहा।

'सदुभाई!'

सुदर्शन ने उत्तर नहीं दिया। देशद्रोही उसके विचारों में बाधा डाले, यह उसे अच्छा न लगा।

'सदुभाई! मुझे तुमसे बात करनी है।'

'तुम्हारे व मेरे बीच अब क्या बात हो सकती है?' सुदर्शन ने दबी हुई भावना से कांपते हुए स्वर में कहा।

'बहुत है, सुनो।' सामने आकर सत्ता से पाठक ने कहा। 'मैं तुम्हारा मित्र हूं। वर्षों से मैंने तुम्हें पहचाना है, और अपने हृदय में स्थान दिया है। इस समय तुम कुंए कूदने को तैयार हुए हो, तब सावधान करना अपना कर्तव्य समझता हूं,' कह पाठक ने सुदर्शन के कंधे पर हाथ रखा।

'मैं बहुत विचार किये बिना कुछ नहीं करता,' कह क्रूरता से सुदर्शन ने अपने कन्धे पर से पाठक का स्नेहपूर्ण हाथ हटा दिया।

'तुम गगनविहारी हो। कल एकत्रित हुए सब मूर्ख हैं। उन सब के मन में कल की बातें हवाई किले हैं, तुम्हारे मन में तो वे सच्ची हैं। बारह महीनों के पश्चात् इसमें से किसीको कुछ याद भी न रहेगा।'

'अश्रद्धावान् को इस लोक में या परलोक में आशा नहीं रहती।' सुदर्शन ने सूत्र उच्चारित किया।

'मुझसे जो कहना हो सो कहो। तुममें बुद्धि है, महत्वाकांक्षा है, शक्ति है। कीर्ति, प्रताप, पैसा तुम्हें सरलता से मिलेगा। यह छोड़ विकसित होते जीवन में इस प्रकार सब पर पानी फेरते हो, यह देख मेरा हृदय जलता है।' आवेश में पाठक ने कहा।

'तुम्हारा हृदय जलता है, तो दुःखी हूं। अपने सूत्र और किसीके लिए उपयुक्त करो तो तुम्हारा व उसका दोनों का भला होगा। 'मां' की कीर्ति, प्रताप व समृद्धि के अतिरिक्त किसीकी मुझे लिप्सा नहीं है।'

'फिर क्या होगा, उसका विचार किया है?'

'भीख का मुझे भय नहीं है?'

'असमय मरोगे तो?'

'कितने करोड़ मरते हैं, तो एक और।'

'तुम मेज़िनी के समान सपने देखते हो, पर यह इटली नहीं है, भारत है।'

'अपने सपनों में से मुझे जागृत ही नहीं होना है। क्यों तड़फड़ करते हो? कल रात से हम लोग अलग हो गए हैं। तुमने गुलामों की भी गुलामगिरी की, किसी देशी राजा के हाथी पर चढ़ चंवर डुलाना। मैं किसी जेल के कोने में सडूंगा, नहीं तो किसी 'गिलोटिन' के ऊपर अपने शरीर को रखूंगा। हम दोनों के रास्ते अलग-अलग हैं। वे कभी नहीं मिल सकते।'

'हम लोगों की मैत्री—'

अधीरता से सुदर्शन उठ गया। 'मां के भक्त के अतिरिक्त दूसरे की भक्ति मेरे लिए वर्ज्य है।' और लापवाही से वहां से चला गया। पाठक की आंखों से आंसू गिरे।

दिन-भर पाठक बेचैन रहा और रात को जब सुदर्शन सोने आया तब उसके हाथ में उसने एक कविता रखी। आंसुओं से भीगे हुए कागज़ पर पाठक ने हृदय की व्यथा निकाल रखी थी।

एक क्षण के लिए सुदर्शन के हृदय में मैत्री के भाव का सञ्चार

हुआ। उसने खटिया पर लेटे हुए पाठक की ओर देखा और उसके कंधे पर हाथ रखा।

'पाठक ! माफ करो, मैं जरा जंगली हूं। हम लोग मित्र हैं और मित्र रहेंगे। पर अपना भविष्य तो हम लोग अपनी-अपनी अलग रीति से ही बनायेंगे।'

'जैसी इच्छा। पर हम लोग मित्र रहें यही काफी है।' दोनों ने एक-दूसरे का हाथ दाबा, और खण्डित मैत्री को साधने का दोनों ने प्रयत्न किया।

आठ

प्रोफेसर कापड़िया की दृष्टि

: १ :

सुलोचना माता-पिता के साथ बम्बई पहुंची और उसने अपना हमेशा का जीवन प्रारंभ करने का प्रयास किया; पर यह प्रयास जैसा सोचा था वैसी सरलता से सफल नहीं हुआ। माननीय जगमोहनलाल उसके साथ कड़ाई का बर्ताव करते थे; उसकी मां उसे फुसलाती हो, इस प्रकार बात किया ही करती थी। इस सबका रहस्य वह समझती थी। उसका सम्बन्ध सुदर्शन से था।

बैठी हुई टोपी, खुला हुआ कोट और मैली धोती में देखे हुए सुदर्शन को भूलना बिलकुल सरल नहीं था। एक तो उसकी विचित्रता याद रखने जैसी थी; दूसरे, उसके कारण माता-पिता का परिवर्तित बर्ताव उसे खला करता था; और तीसरे, उसके समान लड़की उस सुदर्शन के लिए है, ऐसा कोई भी माने, यह अपमान वह सह नहीं सकती थी।

इसके उपरान्त सुदर्शन का अमानुषी गाम्भीर्य मानो उसके चारों ओर घिरा हुआ हो ऐसा उसे लगा करता था। माननीय जगमोहन-लाल के बंगले की शान में, एलिफन्स्टन कालेज के आनंदमय वातावरण में, प्रतिदिन के अध्ययन में व खेलकूद में भी समझ में न आए ऐसा बादल क्षितिज पर आ जाता था; और उसकी गम्भीर छाया में मौज, शौक़, आनंद आदि का अनुभव पहले के समान निश्चिन्तता से नहीं होता था। यह परिवर्तन सुदर्शन के स्मरण से होता है, ऐसा सुलोचना को

लगा और उसे अपना दुर्दैव (Evil genius) मानने लगी।

इस दुर्दैव का प्रभाव उसे एक बार स्पष्ट दिखाई दिया। बड़ौदा से आने पर लगभग आठ दिनों के पश्चात् केकी रुख ने टेनिस का एक 'टूर्नामेण्ट' जीता। 'टूर्नामेण्ट' पूरा होने पर अपने रिवाज़ के मुताबिक वह सुलोचना के चरणों में विजय को धरने के लिए उसे खोजता हुआ आ पहुंचा। सुलोचना बेंच पर बैठी हुई थी।

'केकी! आज तो तुम Splendid (अद्भुत) रहे!' सुलोचना ने प्रशंसा की।

'धन्यवाद, माननीय!' सुलोचना का उसके मित्र 'Honourable' (माननीय) नाम से सम्बोधन करते थे।

'मैं तो तुम्हारी ओर देखकर लगाता ही रहा।'

सुलोचना इस खुशामद से फूलकर हंसी।

'तुम्हारे 'कट्स' ने तो हद कर दी।'

'मुझे केवल 'रेकेट' इस प्रकार रखना पड़ता था कि बॉल सनसनाता हुआ जाता था', केकी ने 'रेकेट' का हाथ बताया।

सुलोचना गर्व से हंसी। पर जैसे ही उसने आंखें ऊंची कर केकी के मुख के सामने देखा, उसके पसीना रहते हुए भी घुंघरूवाले बाल, कमीज व कोट की सफाई उसकी दृष्टि में पड़े; और सोचे बिना ही सुदर्शन के लापरवाही से रखे हुए बाल, गंदी कमीज़ व बैठी हुई टोपी याद आए। 'केकी कैसा रूपवान् था', उसने विचार किया; पर न जाने क्यों दृष्टि के सामने वह काला बादल क्षण-भर के लिए आया; और उसके अंधकार में केकी कृत्रिम, निर्लज्ज, छिछोरा व अविचारी दिखाई पड़ा। उसने अपने दुर्दैव को गाली दी, और हंसकर उठी।

'केकी! अब मैं घर जाऊंगी।'

'मेरी गाड़ी आई है। पहुंचा दूं?'

'मेरी गाड़ी भी आई है।'

'तुम्हारी Carriage (गाड़ी)'—केकी ने कहा, 'पीछे-पीछे आयगी।'

'हां, चलो' कह सुलोचना दौड़ती-दौड़ती अपनी पुस्तकें लेने गई। रुख थोड़ी देर तक उसकी सुंदर देह-लता को देखता रहा, और बड़बड़ाया —'Fine girl that !' (सुंदर लड़की है।)

थोड़ी देर में सुलोचना दौड़ती हुई जीना उतरी। उसका मुंह लाल हो रहा था। उसके सुंदर नकसुरों में से श्वास जल्दी-जल्दी आती व जाती थी। एक सुमधुर हास्य उसके मुंह पर फैल रहा था।

ज्यों ही वह आई, त्यों ही सामने के दरवाज़े से गमन दलाल आया। ऊंचा व गठीला गमन सुलोचना को हंसता हुआ निर्लज्जता से देख रहा था। उसकी छोटी टोपी असाधारण तुच्छता से सिर का चौथा भाग ढंके थी। एक छोटी सुनहरी सिगरेट उसके हाथ में थी। उसका 'पम्प शू' खूब चमकता था। 'हलो ! माननीय साहिबा ! कहां चलीं इतनी जल्दी में ?' हंसता हुआ वह बोला, व दरवाज़े पर हाथ रखकर खड़ा रहा।

सुलोचना आगे बढ़ते-बढ़ते रुकी।

दलाल ने कहा—'How do you do ?' (कैसे हो ?)

'Ai' (बहुत ठीक), सुलोचना ने उत्तर दिया।

'बुद्धू के कुछ समाचार ?' गमन ने मज़ाक में पूछा।

सुलोचना ने बड़ौदा से आकर कितने ही मित्रों से अपनी नई पहचान की बात की थी; और परिणाम में सुलोचना के मित्रों में 'बुद्धू' का उल्लेख साधारण हो गया था।

'Waiting—waiting for the marriage day ।' (विवाह के दिन की प्रतीक्षा में बैठा है।) सुलोचना ने कहा, और वह निर्लज्जता से हंसी।

पर इस निर्लज्ज हास्य के साथ समझ में न आये ऐसी उकताहट पैदा हुई। सुदर्शन के देखने के पश्चात् यह उकताहट क्यों हुआ करती थी ?

इतने में उनकी आवाज़ सुन केकी रुख आया। 'माननीय, चलती हैं न ?'

गमन फिरा और केकी व उसकी आंखें मिलीं। दोनों में बम्बई की शान भरी हुई थी; इससे वे हंसे तो सही पर उनका एक-दूसरे के प्रति अंतरस्थ तिरस्कार उनकी आंखों में स्पष्ट दिखाई दिया। सुलोचना पुरुष-हृदय में विनाश प्रसारित करने के लिए ही पैदा होने से बिलकुल डरी नहीं। उसने हंसकर गमन को कहा—'दलाल ! चलते हो हमारे साथ ? हम केकी की गाड़ी में जाते हैं।'

'With the greatest pleasure'. (बहुत आनंद से), कह टोपी निकाल नीचे झुककर आज्ञा स्वीकार की।

केकी भी चालाक था—'चलो, दलाल ! ज़रा drive का मज़ा लें ?'

तीनों हंसते-हंसते मज़ाक करते हुए चले।

: २ :

स्त्री के हृदय में स्वभावजन्य दो इच्छाएं सदा ही बसा करती हैं। एक इच्छा पुरुषों की प्रशंसा प्राप्त करने की है। इस इच्छा की पूर्ति के लिए धनाढ्य स्त्रियां बाल संवारने में, मुंह रंगने में, विविध रंग की रेशमी साड़ियां खरीदने व पहनने में, अलंकार के वैविध्य से सजने में सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करती हैं। शिक्षित स्त्रियां तेजस्वी गिनी जाने में, बातचीत से मुग्ध करने में, गुलामी की परम्परा को जाल में पकड़ रखने में विद्वत्ता का व्यय करती हैं। और गरीब व अशिक्षित स्त्री पति या पति के मित्रों की प्रशंसा प्राप्त करने के लिए भोजन बनाती है, पानी भरती है, परिश्रम करती है, व्रत करती है, बच्चों का पालन-पोषण करती है।

और दूसरी इच्छा शान्ति प्राप्त करने व शान्ति प्रदान करने की

रहती है। यह इच्छा बहुत बार स्पष्ट नहीं दीखती; बहुत बार दबी रहती है। पर सभी स्त्रियों के अन्तर में भी किसी स्थान पर निश्चिन्तता से बैठने की, और किसीको निश्चिन्त करने की इच्छा होती है। अशान्त, आडम्बरयुक्त, भाग्यहीन या बुभुक्षित जीवन में भी स्त्री का किसी की गोद में शान्ति प्राप्त करने का व किसीको अपनी गोद में शान्ति देने का एक अस्पष्ट किन्तु अचल स्वप्न रहता ही है।

इन दो विरोधी इच्छाओं से खिंचकर, तनकर प्रत्येक स्त्री के जीवन का जहाज़ डगमगाता है। कभी-कभी दो में से एक हवा के प्रबल होने पर जहाज़ जल्दी से चलता है, कभी दोनों वायु एक दिशा में बहते ही जहाज़ किसी अनुपम तीर पर लंगर डाल यात्रा पूरी करता है।

सुलोचना को दूसरी इच्छा का भान नहीं था; इस समय उभरती अवस्था में केवल पहली ही इच्छा उसे खींच रही थी। गमन दलाल व केकी रुख-जैसे अच्छे सहाध्यायियों की प्रशंसा किस 'कॉलेजियन' के अभिमान का पोषण नहीं करेगी ?

केकी व गमन की खुशामद में मग्न होनेवाली सुलोचना को, गप्पों में कितना समय गया, इसका ख्याल न रहा। पर चरनी रोड के पास उनकी गाड़ी एकदम रुकी, इससे उसने चौंककर देखा तो माननीय जगमोहनलाल दूसरी गाड़ी में से उसे बुलाते थे। सुलोचना घबरा गई। उसके पिता उसे इस प्रकार देखेंगे तो क्या कहेंगे इसका विचार उसने नहीं किया था। उसने एकदम अपनी पुस्तकें लीं और मित्रों को कुछ भी कहे बिना वह नीचे उतरी।

माननीय जगमोहनलाल कोर्ट से वापस आ रहे थे। उनकी गाड़ी की अगली बैठक पर 'फाईलें' पड़ी थीं; इससे उन्होंने हाथ से सुलोचना को अपने पास बैठने को सूचित किया। सुलोचना बैठी व गाड़ी आगे चली।

'यह क्या है सुलोचना ?'

'क्या पपा ?' निर्दोष मुख से सुलोचना ने प्रश्न करने की हिम्मत

की। उसने देखा कि माननीय के मुख पर कड़ाई के बादल घिर रहे थे।

'इन लड़कों के साथ भटकने में सार नहीं है,' उन्होंने निश्चयात्मक आवाज़ में कहा।

'हम तो कालेज से साथ आ रहे थे, पपा!'

माननीय के माथे पर सिकुड़न हो आई। 'तू जानती है कि तू बहुत होशियार है, क्यों? यह नहीं हो सकता। सीधी न रहेगी तो कालेज से उठा लूंगा।'

'पर मैंने क्या किया पपा?' सुलोचना ने जरा रवाब से पूछा। जगमोहनलाल के परिपक्व मस्तिष्क को यह रवाब अच्छा नहीं लगा। उन्होंने एकाग्रता से सुलोचना की ओर देखा।

'लड़की! यह सब मिज़ाज़ रहने दे। लिख-पढ़कर तुझे गृहणी बनना है, नाम डुबोना नहीं है, समझी? आते साल विवाह कर ससुराल जाना है।' उन्होंने आज्ञा की।

'उस बड़ौदावाले के यहां तो नहीं,' लाड़ली पुत्री ने जवाब दिया।

'किसके यहां जाना, यह मैंने तुझे नहीं पूछा। जैसा कहूँ वैसा किया कर। आज से इन लड़कों के साथ फिरना बंद कर देना।' अपमानकारक आवाज़ में माननीय ने कहा।

सुलोचना पिता का स्वभाव पहचानती थी, इससे वह चुप हो गई। पिता व पुत्री बहुत देर तक चुप रहे। माननीय जगमोहनलाल गहरे विचार में बैठे हुए थे।

थोड़ी देर में माननीय एकदम सीधे हुए।

'लालु!' उन्होंने घोड़ेवाले से कहा, 'प्रोफेसर कापड़िया के घर गाड़ी ले चलो।'

'जी!' कह लालु ने गोवालिया तालाब की ओर गाड़ी फेरी।

सुलोचना उकता गई। प्रोफेसर कापड़िया माननीय के कालेज के मित्र थे, और जब-कभी उनके वहां जाते थे। सुलोचना को उनका बड़ा व कुरूप मस्तक, छोटी व गहरी आंखें, पतला व छोटा शरीर, छोटी

धोती या सिकुड़नवाली पतलून व पुराने जूते देख हमेशा दुःख होता था। अपने पिता के समान तेजस्वी व्यक्ति की ऐसे इतिहास के पुराने प्रोफेसर के साथ मैत्री कैसे हो सकती है, यह उसकी समझ में नहीं आता था। किसी समय ही दोनों व्यक्ति मिलते थे, पर जब माननीय प्रोफेसर के यहां जाते थे तब दो-चार घंटों के पहले नहीं आते थे। इस समय न मालूम क्या बकवाद सुनना भाग्य में होगा—उसने विचार किया।

गोवालिया तालाब के पास एक-मजले घर के सामने गाड़ी खड़ी रही। 'लालु ! जा, जाकर देख आ, क्या कापड़िया सेठ हैं ?'

गाड़ीवाला उतरकर ऊपर जा आया।

'साहब ! आपको बुलाते हैं।'

'सुलोचना ! तुझे आना है ?'

सुलोचना का नाहीं करने का मन हुआ, पर उग्र बने पिता को रिझाने के लिए उसने इस तपस्या को स्वीकार किया।

'हां' कहकर वह उतरी।

'लालु ! जा बाई को कह आ कि मैं व सुलोचना घर देरी से आयंगे।'

: ३ :

जब माननीय जगमोहनलाल व सुलोचना ऊपर गये, तब प्रोफेसर कापड़िया ने दरवाज़ा खोला।

कापड़िया के यहां आते सुलोचना को जो अरुचि हुई थी वह बिलकुल स्वाभाविक थी, ऐसा प्रोफेसर पर दृष्टिपात करनेवाला कोई भी कह सकता था। उन्होंने एक छोटी धोती पहनी थी, और माननीय के आगमन के उपलक्ष में कुरता कंधे पर डाला था। उनका शरीर छोटा था, और सीने का नाप बिना 'फुट' के लिया जा सकता था। दबे हुए मुंह में से दांत आगे दिखाई देते थे। छोटी गहरी आंखों पर बड़ा मोटा

चश्मा विराजमान था, और मस्तक ज्ञान के भार से कुछ आगे झुककर कुछ-कुछ हाथी के मस्तक का ख्याल देता था। उसका सिर साफ था, केवल पीछे चोटी के दो-चार बाल हिला करते थे।

'जगमोहन भाई! आइए।' प्रोफेसर ने, जिसे वे स्मित कहते थे, उसे मुख पर लाकर स्वागत किया और हाथ मिलाया।

'कापड़िया! सुलोचना को पहचानते हो?'

कापड़िया सुलोचना की ओर फिरे और बोले, 'सुलोचना, गत-वर्ष देखा था।'

प्रोफेसर ने मस्तक पर हाथ रखा। 'मैं फरवरी में आया था, मैं समझता हूं, सत्रहवीं को।'

'मैंने इसे 'एलिफन्स्टन' में रखा है।'

'हमारा कालेज देहाती है, क्यों? आइए बैठिए।' दो कुरसियों पर से पुस्तकें ज़मीन पर डालते हुए कापड़िया ने कहा।'

कापड़िया की बैठक में चलना मुश्किल काम था। चारों ओर अल-मारियों व 'शेल्फों' पर पुस्तकें रखी हुई थीं। कमरे में तीन टेबल थे। उनके ऊपर व नीचे बन्द, खुली व आधी-खुली किताबें ज्यों-त्यों पड़ी हुई थीं। जितनी कुरसियां थीं, उन पर, उनके नीचे, उनकी बाजू में भी उसी प्रकार पुस्तकें पड़ी थीं, और इसके पश्चात् जो खाली जगह थी, वहां ज़मीन पर पुस्तकों व कागज़ों के ढेर पड़े थे। पुस्तकों से भरे हुए इस कमरे में स्वच्छता या व्यवस्था का नाम-निशान नहीं था; और ये पुस्तकें आवश्यकता पड़ने पर कैसे मिलें, इस पहेली को हल करने में बुद्धि को भी मूर्च्छा आ जाती थी।

पुस्तकों की बनी हुई इस गुफा में कापड़िया जीवन व्यतीत करते थे; और पिछले भाग में उनकी मौसी उनके लिए भोजन बनाती थी और एक कहार काम-काज करता था।

जितना प्रोफेसर का ज्ञान था, उतनी ही जीवन की सामान्य आव-श्यकताओं के प्रति उनकी तटस्थवृत्ति थी। कितने ही वर्ष हुए, किसी

ने इनका वेतन बढ़ाया नहीं था; और साधारणतया वेतन मिला या नहीं यह याद रखने का भी वे कष्ट नहीं उठाते थे। दिन-रात वे पुस्तकों में गड़ जाते थे, और जिस प्रकार फेफड़े हवा लेते हैं, उस प्रकार उन में से ज्ञान खींच निकालते थे। इस ज्ञान का प्रदर्शन करने की या उसका मूल्य करवाने की उन्हें परवाह नहीं थी; और बहुत-से प्रोफेसर उनके दिये हुए आधार पर से पुस्तकें लिख पैसे कमाते तो इसका इन्हें असन्तोष नहीं था।

सामान्य व्यवहार में तो वह एक छोटे बालक-जैसे थे।

'जगमोहन भाई ! अच्छा हुआ, आप आये,' प्रोफेसर ने कहा, 'मुझे एक कठिनाई है।'

'क्या ? पुस्तकें मंगवानी होंगी ?'

'हां,' प्रोफेसर छोटे बच्चे की शुद्धता से हंसने लगे, 'और देने को पैसे नहीं हैं।'

माननीय जानते थे कि पुस्तकों के पीछे पागल यह प्रोफेसर पुस्तकों की कीमत के सिवाय कदापि भीख न माँगते थे।

'कितने रुपये हैं ?' कह खीसे में से उन्होंने 'चेकबुक' निकाली।

'पांच सौ उनतालीस, पन्द्रह आने।'

माननीय ने चुपचाप 'चेक' लिखा व कापड़िया को दिया।

'मैं फिर सहूलियत से दे दूंगा।' प्रोफेसर ने कहा।

माननीय हंसे। कितने ही ऐसे 'चेक' उन्होंने कापड़िया को दिये थे। 'चिन्ता न करना, मुझे कुछ वापस न चाहिए।'

'बोलो, अब कैसे आये हो ?' चश्मा नाक पर ठीक कर कापड़िया बोले।

'मैं बैठा, अब आप तो बैठिए—तब तक क्या बात हो सकती है ?' जगमोहनलाल ने कहा, 'मुझे आपसे बहुत पूछना है।' अधीर सुलोचना को चिन्ता हुई।

'बोलिये,' प्रोफेसर एक 'स्टूल' पर से पुस्तकें फेंक उस पर बैठे। 'क्या कहना है ?' हास्यजनक गाम्भीर्य से उन्होंने पूछा।

'आप 'वर्तमानपत्र' तो पढ़ते हैं न ?'

प्रोफेसर ने सिर हिलाकर हां कहा।

'अभी बङ्गाल में जो हलचल मची है, उसके बारे में क्या सोचते हैं?'

प्रोफेसर ने अंगुली व अंगूठा भौं पर रखे—'किस प्रकार ?'

'आप इसे क्या समझते हैं ?'

'नये जन्मे हुए राष्ट्र ने रोना शुरू कर, जीना शुरू किया है।'

'पर बहुत-से तो इसे सम्पूर्ण राष्ट्रीयता का उद्भव मानते हैं।'

'मूर्ख ! मूर्ख !' मस्तक पर अंगुली ठोक प्रोफेसर ने कहा।

उनकी छोटी आंखें बिल्ली का अनुकरण करती हुईं खुलने व बन्द होने लगीं, 'इतिहास का अज्ञान ! सम्पूर्ण राष्ट्रीयता Geographical Compactness (भौगोलिक सुसम्बद्धता) के बिना सम्भव नहीं है।'

'तब क्या हम लोग Geographical unit (भौगोलिक एकत्व) नहीं हैं ?'

'माननीय ! माननीय !' चिढ़कर कापड़िया ने कहा, 'आपके-जैसे कायदेबाज़ ऐसी गड़बड़ करते हैं। भौगोलिक एकत्व प्राप्त होने पर राष्ट्र का अस्थिपिञ्जर तैयार होता है। बस इतना ही। जब भौगोलिक सुसम्बद्धता आती है, तब Nervous System (तन्तु-रचना) तैयार होती है। पश्चात् जब राष्ट्रीयता का भान हुआ कि प्राण आये और राष्ट्र का उद्भव हुआ।'

'पर अंग्रेज़ी राज्य से तो Geographical Compactness (भौगोलिक सुसम्बद्धता) आ गई है।'

कापड़िया ने फिर सिर पीटा। 'सुनिये माननीय ! बीच-बीच में सिर मत मारो।' प्रोफेसर क्लास में शान्ति स्थापित करते हों, इस प्रकार कहा। सुलोचना को मज़ा आया। अपने पिता के साथ कोई इस प्रकार का बर्ताव करे, यह उसे इस समय अच्छा लगा।

: ४ :

'जब राजकीय जीवन प्रकट हुआ,' प्रोफेसर आगे बढ़े, 'तब सर्वप्रथम नागरिकता प्रकट हुई। एक नगर या गांव में से प्रथम भौगोलिक व्यक्ति हुआ। एथेन्स, स्पार्टा-जैसे छोटे-छोटे नगरों में भौगोलिक सुसम्बद्धता खिलवाड़ थी। जल्दी से सब एकत्रित हो सकते और विचार-विनिमय करते थे। इस सुसम्बद्धता से विशिष्ट संस्कार प्रकट हुए, समझे?' प्रोफेसर ने पूछा।

'पर रोम का क्या?'

कापड़िया ने नाक पर उंगली रखी व माननीय चुप रहे।

'इस विशिष्ट संस्कार में अस्मिता आई, इससे नागरिकता उत्पन्न हुई। समझे?' यह नागरिकता प्राचीन इतिहास का एक महाबल है। समाज के जीवन में यदि unit (व्यक्ति) चाहिए तो नगर है। उसमें रहनेवालों में जब यह भान आता है कि नगर व्यक्ति है तब नागरिकता आती है। राज्य-व्यवहार में, युद्धों में, इन्हीं व्यक्तियों की मारपीट, लड़ाई-झगड़े, Struggle for existence, जीवन-विग्रह आदि का समावेश होता है। अब रोम का पूछते हो? प्रजासत्तात्मक रोम में भी भौगोलिक व्यक्तित्व व सुसम्बद्धता थे, और कभी न हो सके ऐसी नागरिकता थी। Civis Romanus sum (मैं रोमन नागरिक हूँ) यह महामंत्र है, समझे? रोम का कुत्ता इस मंत्र को पढ़कर सीरिया व गॉल में शेर बन बैठा। मिश्र व स्पेन के विजेता की भी दृष्टि आशा व भक्ति से परिपूर्ण, टाइबर के तीर पर थी। रोम के बाज़ार का छोटा झगड़ा ही उसके मन में सृष्टि-क्रम था। समझे?' कापड़िया ने श्वास लिया और सूंघनी की चिपटी भर उसे अंगुली से नाक में भरने की क्रिया पूरी की, छींक लेकर नाक पोंछा।

'हमारे यहां भी यह नगर-धर्म था, और उसकी फटी-फटाई चिंदियां इस रूढ़िबद्ध देश में अभी भी दिखाई देती हैं। मोढ व श्रीमाली अपने को अलग-अलग मानते हैं, और आपस में विवाह सम्बन्ध करते

हैं और मोढेरा व श्रीमाल की नागरिकता का स्मरण किया करते हैं। वडनगर को भङ्ग हुए सदियां हुईं, पर वहां के किसी समय के निवासियों के हृदय में स्थित नगर-धर्म की आवाज़ आज भी प्रत्येक नागरवाड़े में सुनाई देती है, और यह विस्मरणीय विशिष्टता कभी-कभी सिर उठाती है। जब दुनिया का बड़ा भाग नागरिकता छोड़ राष्ट्रीयता की ओर बढ़ा, तब भी बैलगाड़ी में यात्रा करने वाले भारत ने नागरिकता की सीमा छोड़ी नहीं है, समझे ?' कह अपनी होशियारी पर कापड़िया हंसे। जगमोहनलाल एकचित्त से सुन रहे थे। सुलोचना को भी आनन्द आया।

'पर हम तो राष्ट्रीयता—'जगमोहनलाल पूछने लगे।

'फिर बीच में बोले।' कापड़िया ने अंगुली ऊँची की, 'आप को तो एकदम सब लड्डू खाना है। शान्ति रखो।' हास्यजनक रौब से प्रोफेसर ने कहा, 'देखो रोम ने नागरिकता विकसित कर व्यक्तित्व प्राप्त करने, पर जीवन-विग्रह में विजेता होने के लिए Pax Romana (रोमन-शान्ति) का मंत्र उत्पन्न किया—Pax Romana याने व्यवस्थित धूर्तता। दूसरे देश जीतने, उन्हें निर्वीर्य करने व उनकी रक्षा करने के बहाने निःसत्व करना, और फिर उन पर रोम की सत्ता लादना, यह उनकी नीति थी। रोम की सत्ता याने दुनिया के खर्च से एक नागरिता को श्रेष्ठ मनवाना व एक नगर को समृद्ध करना। रोम का हमाल सीरिया में 'प्रीफेक्ट' होता था। रोम का साम्राज्य—याने दुनिया को व्यवस्थित रूप से लूटने के लिए एक नगर के निवासियों का षड्यन्त्र। दूसरी तरह से कहें तो जैसे पहले एक राजा अपनी सत्ता व शौक़ के लिए समस्त नगर की दूसरे राजा से रक्षा करता था, और अपने लाभ के लिए उसका उपयोग करता था, वैसे ही रोम ने भूमध्यसागर के किनारे पर की दुनिया की दूसरे से जो रक्षा की, वह केवल अपने उपभोग के लिए ही।'

'जिस प्रकार आज इंगलेण्ड करता है, उस प्रकार—'

'अरे माननीय—'कापड़िया ने चिढ़कर कहा, 'आप दाल पीसने के पहले तेल पी जाते हैं।' माननीय व सुलोचना हंसे।

प्रोफेसर आगे बढ़े, 'प्रगति का क्रम किसी को शान्ति से बैठने नहीं देता। रोम ने नागरिकता का सिद्धान्त भुला, इटली को एक व्यक्ति करने का प्रयत्न किया। समस्त देश में घोड़े व बैलों के दिनों में भौगोलिक सुसम्बद्धता कहां से आए? परिणामस्वरूप नागरिक धर्म का लोप हुआ, व रोम का पतन हुआ।' कापड़िया ने फिर से सूँघनी सूँघी। सचमुच में वे सूँघनी सूँघते नहीं थे, पर बहुत-सी सूँघनी अंगुली से नकसुरों में भरते थे। फिर उन्होंने धोती से नाक पोंछा।

'रोम का पतन हुआ व यूरोप में नागरिकता का अन्त हो गया। हमारे यहां चित्तौड़ में, पाटण में मुसलमान आये तब तक वह रही। इस देश में इतिहास व उत्क्रान्ति की परवाह किये बिना पुरानी बातें कैसे सुरक्षित रखी जाती हैं, यह भी देखने लायक है। रोम ने अच्छे मार्ग बनाये थे, विभिन्न लोगों को एक किया था। और रोमन-साम्राज्य के कूड़े में से नई व्यवस्था हुई, तब भौगोलिक स्वास्थ्य का उपभोग लेने वाले लोग अपने को एक मानने लगे। सारांश में देश एक भौगोलिक व्यक्ति होने लगा—इटली, फ्रांस, इङ्गलैण्ड—' कापड़िया ने एक कड़ी छींक ली और श्वास लिया।

'देखो, अब राष्ट्र कैसे हुए?' हाथ मलते हुए कापड़िया ने कहा, 'इटली में छोटे-छोटे राज्य व रोमन-सत्ता की उत्तराधिकारी 'कैथोलिक चर्च' थे, इससे वहां कितने ही समय तक भौगोलिक व्यक्तित्व न आया; दूसरा तो कहां से आए? फ्रांस में भौगोलिक व्यक्तित्व आया, व सुसम्बद्धता आई। विशिष्ट संस्कार का भान हुआ। राष्ट्रीय अहंभाव प्रकट हुआ। पर ज्यों रोम ने नागरिकता प्राप्त की, त्यों इङ्गलैण्ड ने राष्ट्रीय भान बहुत अधिक प्राप्त किया। समझे?'

'देखो,' फिर से हाथ मलते हुए प्रोफेसर ने कहा, 'प्रकृति ने इङ्गलैण्ड को भौगोलिक स्वास्थ्य व व्यक्तित्व दोनों दिये थे। चारों ओर समुद्र

था। बेचारा फ्रांस पहले अवश्य आगे बढ़ा, पर चारों ओर समुद्र कहां से लाये ? विस्तार इतना छोटा था कि भौगोलिक सुसम्बद्धता जल्दी से हो जाय। एडिनबरो से लंदन आते कितनी देर लगती है ? लंदन तो केवल अंग्रेज़ी फोरम था। चारों दिशाओं से जल्दी से सब आ पहुंचते थे। राष्ट्रीय जागृति होने के लिए कितना सुंदर स्थान था। जितना चाहिए उतना छोटा, जितना चाहिए उतना बड़ा था। परिणामस्वरूप अंग्रेज़ जहां जाता वहां 'I am British' यह ख्याल, अपना 'यूनियन जैक', अपना 'God save the King' ले जाता था। वह अफ्रीका के जंगलों में या शिमला की शीतलता में गर्व से घूमता था, पर उसकी दृष्टि तो टेम्स के तीर पर स्थित उसके राष्ट्रीय फोरम लंदन पर रहती थी। वहां की वेश-भूषा ही सच्ची वेश-भूषा, वहां की भाषा ही देववाणी, वहां की मौज ही उसका आनन्द, वहां की कला सौन्दर्य की पराकाष्ठा, वहां माना जाता वीर उसका देव था, और बुढ़ापे में वहां जा किसी निर्जीव उपनगर में निर्धनता में मरना उसके मन में मोक्ष था। देखो, कितने ही मुगल व पेशवाई सरदारों ने स्वतन्त्र-राज्य स्थापित किये। किसी अंग्रेज़ 'वाइसराय' को ऐसा सपना भी आया है ? डेढ़ सौ वर्ष पहले वारेन हैस्टिंग्ज़ मुगल शासन छोड़ वहां सड़ने जा रहा।

'यह राष्ट्रीयता सम्पूर्ण राष्ट्रीयता थी। समझे ?' कह कापड़िया ने छींक ली और फिर सूँघनी सूँघी। अपने विषय में वे तल्लीन हो रहे थे, और अव्यवस्थित रूप से शब्द बाहर निकलते थे।

'अब नापो माननीय, हमारी राष्ट्रीयता। भौगोलिक स्वास्थ्य आया है, तो भी देश का विस्तार तीन चतुर्थांश यूरोप के बराबर है। तीन चतुर्थांश यूरोप में कितने राष्ट्र-धर्म हैं ? चन्द्रगुप्त मौर्य व चन्द्रगुप्त ने राजकीय एकता लाने का प्रयत्न किया, पर कुछ न हो सका। क्योंकि एक छोर से दूसरे छोर तक हाथी पर बैठकर जाने में कितने वर्ष चाहिएं। ब्राह्मणों की परम्परा ने बहुत प्रयत्न किया, पर भौगोलिक भूसम्बद्धता के बिना अकेले संस्कार क्या करें ?' कह प्रोफेसर हँसे। 'देखो

अब सारांश में कहता हूँ। ब्रिटिश सत्ता से भौगोलिक स्वास्थ्य आया है, भौगोलिक व्यक्तित्व प्रकट हुआ है; पर सुसम्बद्धता सत्रह लाख वर्गमील में कैसे आए ? कलकत्ता व बम्बई के बीच में 'टेलीफोन' होवे, मद्रास से लाहौर दो दिनों में जाया जाय, तब यह सुसम्बद्धता आयगी। समझे ? फिर एक संस्कार की जागृति होने में कितने ही युग बीत जायंगे। इङ्गलैण्ड-जैसे भाग्यशील देश में नवीं सदी से लेकर सत्रहवीं सदी तक, 'एडवर्ड दी कन्फेसर' से विलियम व मेरी तक जीवन तपता रहा, तब सांस्कारिक अहंभाव उत्पन्न हुआ। अब हम लोगों की कठिनाइयों की गिनती करो।" प्रोफेसर ने अंगुलियां अलग करते हुए कहा—'अगणित पंथों को भूलकर राष्ट्र-धर्म का स्वीकार करने में कितने वर्ष बीतेंगे ? दूसरे, विभिन्न भाषाएँ भूल एक भाषा कितने वर्षों में आयगी ? तीसरे, देशी राज्यों को नष्ट कर राष्ट्रीय एकता कितने वर्षों में आयगी ? ये तीन बातें जब आवें तब सम्पूर्ण राष्ट्रीयता खिलेगी। वर्तमान गति से यह प्राचीन देश कब राष्ट्रीयता प्राप्त करेगा ? 'समझे ?' कह प्रोफेसर हंसे।

: ५ :

'Thank you (धन्यवाद), याने आपके विचारानुसार ये विप्लववादी कुछ करने वाले नहीं हैं। मुझे शान्ति हुई।'

'मैं ऐसा नहीं कहता। मैंने जो हिसाब लगाया, वह अभी जो कुछ हो रहा है, उसके अनुसार है। पर कितने ही छोटे रास्ते हैं। विप्लव उनमें का एक है।'

'वह कैसे ?' जरा चिन्तातुर आवाज़ में माननीय ने पूछा।

'विजयी विप्लव याने उत्क्रान्ति क्रम थोड़े समय में पूरा करने की तरकीब है। एक ऐसा विप्लव हो कि जो धार्मिक व जातीय भेदों को एक झटके में नष्ट कर राष्ट्र-धर्म को प्रसारित करे, तो इस प्रकार राष्ट्री-

यता आयगी। विप्लव-वृत्ति ऐसी है कि जहां भौगोलिक सुसम्बद्धता न हो वहां भी राष्ट्रीयता उत्पन्न करती है; और एक प्रकार का अहंभाव जल्दी से पैदा करती है। विप्लव के फैलने पर दस वर्ष में, डेढ़ सौ वर्ष में न हो, ऐसा परिणाम निकलेगा।'

'तब तो ये विप्लववादी कुछ-का-कुछ करेंगे।'

कापड़िया गर्व से हंसे। 'घबराओ नहीं, आपका माननीय पद व आपका 'हाईकोर्ट' ले न लेंगे।' हम लोगों में विप्लव करने की शक्ति बिलकुल नहीं है।'

'बङ्गाल में कैसा-कैसा होता है?'

'उभार—दूध का। जब तक भाव के लिए परलोकीक चिन्ता नहीं जायगी और इस लोक में भूखों मरने की हिम्मत नहीं आती, तब तक विप्लव शक्य नहीं है। हमारे वहां धर्मान्धता है, और निश्चिन्तता से रहने की इच्छा है। परलोक व इस लोक की झंझटें छूटने की नहीं हैं। और गरीब वर्ग इतना निर्जीव व जोशविहीन है कि वे बिगड़कर क्रान्ति का प्रसार करेंगे ही नहीं। गरीब वर्ग के विप्लव के लिए दुष्काल व अत्याचार की आवश्यकता है। ब्रिटिश सरकार पक्की है। वह किसी को बिलकुल भूखा मरने नहीं देगी, और आपके 'कोर्ट' जहां अत्याचार हों वहां भी अत्याचार नहीं है, यह विचार जमाने के साधन हैं। याने Sans Cullote (कपड़े बिना के) का विप्लव यहां सम्भव ही नहीं है।' प्रोफेसर ने एकदम खड़े होकर बढ़ी हुई दीये की बत्ती कम कर धोती ठीक की।

'सुरेन्द्रनाथ व उनके अनुयायी स्कूलवाले विप्लव तो कर बैठे हैं।'

'विप्लव के साथ राजसत्ता का अत्याचार होगा, और क्या अत्याचार सहने की शक्ति हम लोगों में दिखाई देती है? विप्लव के लिए तो समग्र जनता में, नहीं तो उसके शक्तिशाली भाग में, चहुँओर से उभार आना चाहिए। बम्बई में जागृति होने के पहले कलकत्ता कुचल

डाला जायगा। विप्लव के लिए थोड़ी अधिक भौगोलिक सुसम्बद्धता चाहिए।'

'पर आपने जिन दूसरे छोटे रास्तों का उल्लेख किया वे कौनसे हैं ? जब से इन विप्लववादियों को देखा है, तब से मुझे तो कोई रास्ता नहीं सूझता है।'

एक क्षण तक प्रोफेसर चुप रहे।

'दूसरा रास्ता राष्ट्रीय सरकार का है।'

'याने ?' माननीय ने पूछा।

'जापान में हुआ वैसा। यदि पांच-सात दीर्घदर्शी राजनीतिज्ञों के हाथ में राजतन्त्र आये तो पच्चीस वर्षों में राष्ट्रीयता आयगी। अत्याचार से, बल से, चाहे तो अन्याय से वे राष्ट्रीयता प्रसारित कर सकते हैं, सम्पूर्ण शिक्षा को राष्ट्रीय कर सकते हैं, धार्मिक व जातीय विरोधों को बिसरा सकते या कुचल सकते हैं। नेपोलियन या मार्क्विस ईटो के समान प्रचण्ड इच्छाशक्ति वाला कोई सर्वसत्ताधिकारी चाहिए।'

'पर ब्रिटिश लोग ऐसा न करेंगे; वे न्यायी हैं, स्वातन्त्र्य-प्रेमी हैं,' जगमोहनलाल ने कहा। कापड़िया खिलखिलाकर हंसे।

'माननीय, आप भी पूरे मूर्ख ही रहे। मेरा सब कथन व्यर्थ हुआ।'

'क्यों ?'

'आप फीरोज़शाह मेहता के अनुयायी हैं। वे बेचारे इंगलैण्ड जाकर ग्रेडलॉ, ब्राइट व फॉसेट की लौ लगा आये हैं। वे मानते हैं कि वे स्वतः भारतीय पार्नेल बन जायंगे। उन्हें तो केवल विक्टोरिया-युग की व्यवस्थात्मक हलचल का पाठ पढ़ना आता है।'

'आप भी उस विप्लववादी सुदर्शन के समान बोलते हैं।'

'मैं जो कुछ कहता हूँ वह इस इतिहास के अध्ययन की दृष्टि से। इंगलैण्ड न्यायी है, व स्वतंत्रता-प्रेमी है—अंग्रेज़ों के लिए; दूसरों के लिए वह केवल रोम है। वह Pax Britannica (ब्रिटिश शांति) के नाम पर अपनी शक्ति व समृद्धि बढ़ाने के साधन खोजता है। वह

आपको रशियन से बचाता है, पर अपना स्वार्थ साधने के लिए। Pax Romana के समान Pax Britannica व्यवस्थित स्वार्थ है, ब्रिटिश साम्राज्य याने दुनिया के खर्च से ब्रिटेन को श्रेष्ठ व समृद्ध बनाने का प्रयोग है। यदि वह शान्ति व व्यवस्था न रखे तो शान्तिपूर्वक इंगलैण्ड-निवासी दुनिया का धन किस प्रकार एकत्रित करे ? माननीय ! व्यक्ति, नगर व राष्ट्र के जीवन-विग्रह का विचार करते समय न्याय व स्वातंत्र्य-प्रेम के बातें भुला देना।'

'आप ब्रिटेन पर बहुत अन्याय करते हैं। वहां की प्रजा को क्या बिलकुल ऐसी ही मानते हैं ? तो बर्क, ब्रेडला व ब्राइटन का क्या ?'

'मैं अन्याय नहीं करता हूँ, क्योंकि मुझे केवल ऐतिहासिक सत्य प्रिय है। मुझे किसी प्रजा या देश का पक्षपात नहीं है। मैं तो इङ्गलैंड को रोम का नया अवतार मानता हूं, जन-समाज को विस्तृत जीवन का अनुभव करानेवाला एक प्रबल साधन मानता हूं। जिस शक्ति से उसने सर्वोपरिता प्राप्त की है, उसकी मैं प्रशंसा करता हूं। जिस खूबी से वह भारत को बचाये रखे है, उसे देख मैं मुग्ध बनता हूं; System—Glorious System अपूर्व व्यवस्था। पर माननीय ! मैं बर्क, ब्रेडला व ब्राइट से प्रभावित नहीं होता। कितने ही हिंसक जीव भक्ष्य को आकर्षित करने के लिए Lures (आकर्षण) प्रयुक्त करते हैं। बर्क, ब्रेडला, ब्राइट व अंग्रेज़ी शिक्षा, ये सब इङ्गलैंड के ऐसे Lures (आकर्षण) हैं, और कुछ नहीं। इङ्गलैंड एक राष्ट्र के रूप में सर्वोपरि सत्ता प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। प्रत्येक वस्तु इस प्रवृत्ति के साधन हैं। इसी में इङ्गलैंड की महत्ता व उसकी दुर्धर्षता है व ऐतिहासिक दृष्टि से उपयोगिता है।' कहकर कापड़िया ने पुनः सूंघनी सूंघी।

'फीरोज़शाह मेहता सोचते हैं कि वे व्यवस्थित आन्दोलन से स्वातन्त्र्य प्राप्त करेंगे। उनमें न ऐतिहासिक दृष्टि है, और न मनुष्य-हृदय परखने की नम्रता है। सौ वर्ष हुए आयरलैण्ड कुछ न कर सका।

फीरोज़शाह ने अंग्रेज़ी हितों का विरोध किया कि जल्दी से उन्हें ससुराल भिजवा देंगे।'

'हम इङ्गलैंड जाकर स्वातन्त्र्य ले आयंगे।' माननीय ने जोश से कहा।

'हां, रोम में भी मिश्र व गॉल के भिक्षुक कृपा याचने जाते थे। जगमोहन भाई! आपसे अंग्रेज़ों की दृष्टि अधिक परिणामकारक है। उन्हें साम्राज्य बनाना व सुरक्षित रखना आता है। आप शान्ति से रहें इतनी शान्ति वे प्रदान करेंगे; सुख से रोटी खाकर विप्लव न करें इतनी व्यवस्था स्थापित करेंगे; तुम जोश पैदा न करो इतना न्याय करेंगे। पर स्वातन्त्र्य तो इङ्गलैंड में ही रहेगा; नर तो टेम्स पर ही रहेंगे। आपको बाहर खड़े रहकर नम्र मांग पेश करने का हक़ वे हमेशा देंगे। जगमोहन भाई! जरा ऐतिहासिक कल्पना तो प्राप्त करो। जरा कल्पना तो करो महान् सूला या दैवी जुलियस के पास उस समय के ब्रिटेन निवासी जाकर मांग पेश करते कि "जैसे आप रोम में हैं, वैसे हमें अपने देश में होने दो! आप हमारी राष्ट्रीय सरकार बनाइए!" उत्तर क्या मिलता?' कापड़िया कहकहा मारकर हंसे। माननीय भी हंसे।

'अच्छा,' थककर माननीय ने कहा, 'अब और कोई छोटा रास्ता है कि सब हो चुके?'

'दूसरा छोटा रास्ता यदि विधाता करे तो एक है, और ऐसा हो भी सकता है। पर ऐतिहासिक भविष्यवाणी है, सिद्धान्त का विषय नहीं।'

'क्या है? कहिए।'

'जहां तक मैं देख सकता हूँ वहां तक ज्यों रोम ने पीछे से इटली का नगर-संघ अपने साथ रखा, त्यों इङ्गलैंड ने राष्ट्र-संघ रखने का प्रयत्न किया है। पूर्व में यदि जापान चीन की सहायता प्राप्त करे तो एक राष्ट्र-संघ प्रकट हो। रशिया व जर्मनी का एक राष्ट्र-संघ होता जा रहा है। इस्तंबुल से काबुल तक के मुस्लिम राष्ट्र-संघ के सपने

देखते हैं। इस संघों में से यदि एक भी खड़ा हुआ तो ब्रिटिश-साम्राज्य के साथ उसकी मुठभेड़ अवश्य होगी, और ऐसे समय यदि भारत की सीमा समराङ्गण बने तो भारत को तैयार किये बिना इङ्गलैंड का छुटकारा ही नहीं है। विज्ञान के साधन, विनाश के शस्त्रादि सब यहां लाकर इन करोड़ों भारतीयों को यदि पल्टनी घानी में दस वर्ष तक जोत दे, तो इस युद्ध के अन्त में भारत प्रतापी राष्ट्रीयता या राष्ट्र-संघ की भावना का प्रतिनिधि होकर बाहर निकलेगा। पर यह दिन कैसे आयगा ?' प्रोफेसर कहकहा मार कर हंसे, और उन्होंने सूंघनी सूंघी। घड़ी में नौ बज गए।

'ओहो ! नौ बजे।' माननीय ने कहा, 'बहुत उपकृत हुआ। आपके ऐतिहासिक दृष्टि-बिन्दु बहुत ही अच्छे हैं, पर व्यावहारिक राजकीय नेता की दृष्टि से मुझे बहुत-सी बातें देखनी पड़ती हैं। मुझे इङ्गलैंड में श्रद्धा है।'

प्रोफेसर हंसे। 'मुझे आपकी बुद्धि में विश्वास है। "सन्तुष्ट भारत इङ्गलैंड का सहचारी है, असन्तुष्ट भारत इङ्गलैंड के गले में चक्की का पत्थर है"—इस सूत्र को अंग्रेज़ राजनीतिज्ञ समझते हैं। इङ्गलैंड के साथ रहकर लोक-सत्ता हम अवश्य प्राप्त करेंगे।' प्रोफेसर ने हंसकर नाक पोंछी।

'आप भले हंसें। मैंने निश्चय किया है मैं ब्रिटिश-साम्राज्य में समानता प्राप्त करने की योजना बना रहा हूँ। मैं विप्लववादियों से निपट लूंगा। मैं आप-जैसे निराशावादी को मिथ्या प्रमाणित करूंगा। मैं सिद्ध कर दूंगा कि भारत व ब्रिटेन की मैत्री में दैवी कृपा छिपी हुई है।'

'दैवी कृपा ! सचमुच !' प्रोफेसर मज़ाक में हंसे।

'देखिए, मैंने विचार किया है। अब मैं बैठ न रहूंगा।'

'बहुत अच्छा। मुझे स्पष्ट होंगे।'

'आपके विचारों से बहुत-कुछ मेरी समझ में आया है।'

'Thank you (धन्यवाद)' प्रोफेसर ने कहा।

'अच्छा, हां' खड़े होते हुए माननीय ने कहा, 'सुदर्शन नाम का मेरे मित्र का लड़का अक्तूबर में यहां आयगा। वह विप्लववादी है। जरा उसे कुछ सिखाइयेगा।'

'मेरी जो सुने उसे सिखाने तैयार हूं।'

'अच्छा, नमस्ते। सुलोचना! उठो, क्या नींद लेती हो?'

सुलोचना आंखें मलती हुई उठी, और पिता-पुत्री ने इजाज़त ली।

जब सुलोचना दरवाज़े में से अदृष्ट हुई, तब कापड़िया को भान आया कि वे एक सुन्दर बाला की उपस्थिति में दो घण्टे तक थे। उन्होंने खिड़की में से सुलोचना को गाड़ी में बैठते देखा; और जब वे अपनी पुस्तकों की ओर फिरे तब उनके हृदय में समझ में न आनेवाली तृषा हो, ऐसा मालूम पड़ा।

नौ

बम्बई में सुदर्शन

: १ :

माननीय जगमोहनलाल की आंखें प्रोफेसर कापड़िया के साथ बात कर खुल गईं, और कुछ रास्ता खोजने का वे परिश्रम करने लगे।

भारतीयों की दुर्दशा का उन्हें बहुत तीव्र भान था, साथ ही भारत में अंग्रेज़ी अधिकारियों की नीति अच्छी नहीं है, ऐसा भी उन्हें विश्वास था; और तो भी अंग्रेज़ प्रजा के स्वातन्त्र्य-प्रेम में उनका अडिग विश्वास था। भारत में विप्लव का होना उनके मन में बड़ी-से-बड़ी आकस्मिक घटना मालूम होती थी, और जिस राज्य ने उनके-जैसे को शिक्षा, प्रतिष्ठा व मान प्रदान किये, यदि वह उखड़ जाय तो देश का भाग्य फूटे, ऐसा उन्हें स्पष्ट दिखाई देता था। इस राज्य की शान्ति, व्यवस्था, प्रगतिकारक नीति रहे, अंग्रेज़ी अधिकारियों का रौब कम हो, लोग सुधरें और अंग्रेज़ी साम्राज्य में ही स्वातन्त्र्य मिले, ऐसा कोई रास्ता वे खोजने लगे।

वे फीरोज़शाह मेहता व गोखले को मिले। उनमें से किसीको देश में कुछ नया होता हो, ऐसा दिखाई नहीं दिया। कुछ पागल बने हुए लड़कों द्वारा बङ्गाल में किया जाता आन्दोलन उनके मन में केवल एक महत्वहीन प्रसङ्ग था। और दोनों को अंग्रेज़ प्रजा की उदार नीति में श्रद्धा थी; और प्रारम्भ से कांग्रेस द्वारा स्वीकृत नीति की सफलता में पूरा विश्वास था।

जब वे फीरोजशाह के साथ अधिक बात करने लगे, तब बम्बई

के सार्वजनिक जीवन के सर्वसत्ताधिकारी की शान से वे हंसे, और टेबल पर हाथ पटक कर जवाब दिया, 'जगमोहनलाल ! अंग्रेज़ों के पास से हम अपने अधिकार छीन लेंगे, आप घबराइये नहीं।'

वर्तमान काल फीरोज़शाह के व्यक्तित्व के प्रताप को न समझ सके यह स्वाभाविक है, पर १९०६ में बम्बई के उनके अनुयायियों व सार्वजनिक जीवन पर उनका विचित्र प्रभाव था। वे सार्वजनिक जीवन के जनक, स्वातन्त्र्य सेना के नायक, देशभक्तों के शिरोमणि, राज-नीतिज्ञों के अग्रणी थे—माने जाते थे यह तो निश्चित था। उनकी उपस्थिति में प्रत्येक को शैशव प्राप्त होता था; उनके हास्य से सब प्रसन्न होते थे, और भ्रूभङ्ग से सब कांपते थे।

इस प्रतापी मनुष्य के विश्वासपूर्वक दिये गए ऐसे अन्तिम अभि-प्राय के विरुद्ध माननीय कुछ बोल न सके। उनके कान में बेचारे गरीब प्रोफेसर का अट्टहास सुनाई दिया। 'क्या किसी अर्वाचीन सूला या सीज़र से जाकर वे कह सकेंगे कि हमें हमारे अधिकार दो ?' या यह विक्टोरिया-युग के अंग्रेज़ी सार्वजनिक जीवन का केवल प्रतिशब्द था ? 'राजाबाई टावर' की सामने की गुफा में बम्बई के केसरी की गर्जना के सान्निध्य में शङ्का को कोई स्थान हो सकता है ? माननीय जगमोहनलाल की शङ्का का समाधान हो गया हो, ऐसा मालूम पड़ा।

पर जब-कभी अनेक शंकाएं उन्हें हो आती थीं।

: २ :

पिता की आज्ञा से सुलोचना पहले तो बहुत चिढ़ी, पर उसका आदर किये बिना चली नहीं। केकी रुख व गमन दलाल के साथ कालेज के बाहर फिरना उसने बन्द किया। कुछ शब्दों में, बिना हस्ताक्षर की चिट्ठी से, लाइब्रेरी में या टेनिस-कोर्ट पर बातचीत हुआ करती थी। न जाने क्यों, पर ज्यों ही वह कालेज में आती, त्यों ही केकी दर-

वाजे में प्रवेश करता था या साथ में गमन जीना चढ़ता ही रहता था। ज्यों ही वह लड़कियों के कमरे में से बाहर निकलती थी, त्यों ही उनमें से एक 'गेलरी' में खड़ा ही रहता था। वह 'लाइब्रेरी' में पुस्तक लेने जाती कि दोनों वहीं मिलते थे। बहुत बार बातचीत हो जाती थी या दो दिन की अधूरी बात का उत्तर दिया जाता था; नहीं तो हास्य से हास्य का प्रत्युत्तर दिया जाता था। बिना बोले सुलोचना माननीय की आज्ञा का पालन बाह्यरूप में तो करती ही रही।

नवम्बर मास आ पहुँचा, और सुलोचना की परीक्षा पूरी हो गई। एक दिन सबेरे जगमोहनलाल ने सुलोचना को बुलाया। 'ब्रीफ' के ढेर व कानून की पुस्तकों से भयंकर लगते टेबल पर विराजे हुए माननीय ने सुलोचना के सामने पत्र रखा। "सुलोचना! आज रात की गाड़ी से सदुभाई आने वाले हैं। गाड़ी लेकर जाना और ले आना।" '

'क्या मैं जाऊं?' सुलोचना ने गुस्से में कहा।

'क्यों, क्या तू बहुत बड़ी हो गई है?' कड़ाई से माननीय ने पूछा। 'जाकर उसे यहां ले आना है, समझी?' जगमोहनलाल ने स्पष्ट आज्ञा की।

'Alright,' कह नाक चढ़ाकर सुलोचना चली गई।

'इस लड़की का क्या होगा?' जगमोहनलाल ने बड़बड़ की।

थोड़ी देर बाद माननीय कोर्ट गये, इससे सुलोचना पिता के कमरे में आई। वह 'टेलीफोन' के पास गई और दो व्यक्तियों को 'टेलीफोन' किया। दोनों को दो ही वाक्य कहे—'Come tonight at 8-30 on the Grant Road up Station. There is great fun.' (रात के साढ़े आठ बजे ग्रांट रोड स्टेशन पर आना। बहुत मज़ा आयगा।)

रात के साढ़े आठ बजे केकी रुख, शानदार कपड़े पहन ग्रांट रोड स्टेशन पर आ पहुंचा। बहुत दिनों में उसे सुलोचना का संदेशा मिला था, इससे उसका दिमाग आसमान में उड़ता था।

ज्यों ही वह प्लेटफॉर्म पर आया त्यों ही एक बत्ती के पास उसने गमन दलाल को खड़ा देखा और उसके मन में शंका हुई। यह बनिया इस समय यहां कहां से? गमन लापरवाही से सिगार पीता था। उसकी शान्ति देख केकी का एक चांटा मारने का मन हुआ।

क्षण-भर में दोनों की आंखें मिलीं, क्षण-भर गमन के मुख पर घबराहट हुई, पर उसने तुरन्त हँसता हुआ मुख बना लापरवाही से सलाम किया।

'ओहो! तुम यहां?' केकी ने पूछा।

'मैं भी तुम्हें यही पूछनेवाला था।' दोनों प्लेटफॉर्म के दरवाजे की ओर एक साथ दृष्टिपात कर द्वेष से देखते रहे।

'क्या 'माननीय' से मिलने आये हो?' गमन ने पूछा।

'Mind your own business,' केकी ने रौब में उत्तर दिया।

'क्यों?' सिगार पर की राख झटकते हुए गमन ने कहा, 'क्या झगड़ा करने की धुन में हो?'

'चिढ़ो मत दोस्त।' केकी ने कहा।

'Physician, heal thy self' (वैद्य! अपने को सुधारो) गमन ने उत्तर दिया। 'लो, यह शिवलाल ऑफ आया।'

दो लड़के 'प्लेटफॉर्म' पर आये—भीमनाथ तालाब पर एकत्रित हुए लड़कों में से दो बम्बई वाले—शिवलाल ऑफ व अम्बेलाल देसाई। शिवलाल ऑफ 'एल्फिन्स्टन' में नहीं पढ़ता था, पर उसके विख्यात पिता के काफी दौलत रख जाने से और अपनी होशियारी से वह लगभग सब कालेजों में प्रसिद्ध था। शैतान लड़कों में और उसी प्रकार होशियार लड़कों में उसका स्थान था।

'हलो, गमन!'

'कौन, ऑफ?'

'और यह केकी रुख कहां से?' सबने हाथ मिलाये।

'ये मेरे मित्र अम्बेलाल देसाई एम० ए० का अध्ययन करते हैं।

ये केकी रुख व गमन दलाल एल्फिन्स्टन के Ornaments (अलंकार) हैं।'

शिवलाल हंसकर मीठा बोलता, तब भी उसके अर्थ में कुछ कटाक्ष मालूम पड़ता था। अम्बेलाल देसाई गम्भीर व सरल मालूम पड़ता था। उसने एल्फिन्स्टन के इन दो फक्कड़ विद्यार्थियों की ओर तिरस्कार से देखा।

केकी व गमन का इरादा इन दोनों से तुरन्त अलग होने का था, पर शिवलाल के साथ तुच्छता का व्यवहार नहीं हो सकता था।

'गाड़ी आने का समय हुआ।' गमन दलाल ने कहा।

'आपके 'फ्रेन्ड्स' (मित्र) तो 'सेकंड' या 'फर्स्ट' में होंगे। हमारे तो गटर क्लास में आयंगे।' हँसकर शिवलाल ने कहा, और दोनों ने चालाकी व निर्जीवता का अनुभव कराने वाली दृष्टि डाली।

'ऐसा कौन है ?' केकी ने पूछा।

'बड़ौदा कालेज में पढ़ता है।'

पर शिवलाल के वाक्य पूरा करने के पहले गमन व केकी की दृष्टि दरवाजे पर पड़ी, और दोनों उस ओर गये। सुलोचना 'प्लेटफार्म' पर आई थी।

शिवलाल व अम्बेलाल शान्ति से उस ओर फिरे।

'ये दोनों इस समय यहां क्यों आये हैं, यह समझ में आया।' शिवलाल ने जरा हंसकर धीरे से अम्बेलाल से कहा। अम्बेलाल ने आंख से ही कारण पूछा।

'वह हैं माननीय जगमोहनलाल की लड़की सुलोचना, जो 'एल्फिन्स्टन' में है।'

'समझा,' अम्बेलाल ने कहा। जिस शीघ्रता से केकी व गमन सुलोचना के पास गये व जिस उत्साह से बात करने लगे, यह सब वे दोनों देखते रहे।

वहां सुलोचना मित्रों की ओर देख हंसने लगी—'आ गये ? वह

'बुद्धू' आने वाला है। उसे देखने के लिए तुम्हें बुलाया है।'

'अहा—हा—,' दोनों हंसे, पर अन्तर में जरा खिन्न हुए। इस खास निमंत्रण के परिणामस्वरूप उन्होंने कुछ सच्चा मजा लेने का विचार किया था।

'मुझे मालूम पड़ता है कि शिवलाल भी उसे ही लिवाने के लिए आया है,' गमन ने कहा।

'क्या यही शिवलाल श्राफ है?' सुलोचना ने पूछा। 'चलो, हम लोग उसके साथ रहें, नहीं तो पपा जानेंगे तो जी खायंगे।'

'Oh these papas!' (इन पिताओं से तोबा) केकी ने अपना उद्गार निकाला, और तीनों शिवलाल श्राफ के पास गये।

'शिवलाल, क्या मिस सुलोचना को पहचानते हो?' गमन ने कहा।

'नाम सुना है, मिलने का सौभाग्य आज ही प्राप्त हुआ। कैसी हैं, बहन?' शिवलाल ने कहा और हाथ मिलाया।

'ये अम्बेलाल देसाई हैं,' गमन ने कहा, 'ये भी शिवलाल के साथ विल्सन में ही हैं।'

'I see, मिलकर बहुत ही आनन्द हुआ।' कह सुलोचना ने हाथ मिलाया।

'ये भी बड़ौदा के एक विद्यार्थी को ही लिवाने आये हैं।' केकी ने अंग्रेजी में कहा।

पर शिवलाल के उत्तर देने के पहले गाड़ी आई, और शिवलाल व अम्बेलाल अलग होकर 'थर्ड क्लास' के डिब्बे की ओर जल्दी से चले। नारण भाई पटेल डिब्बे में से आधा शरीर बाहर निकाल आंखें फाड़कर देख रहा था। वह शिवलाल को पहचानकर इस प्रकार के हाथ से इशारे करने लगा कि समस्त स्टेशन आकर्षित हो जाय।

सुलोचना ने अपने मित्रों से कहा, 'जरा दूर से ही देखना, फिर मैं पहचान करवाऊंगी।' वह 'सेकण्ड क्लास' के डिब्बे की ओर गई। उसके पहचाननेवालों में से कोई भी 'थर्ड क्लास' में मुसाफिरी करे यह कल्पना

उसने अभी तक नहीं की थी। वह धीरे से 'सेकंडक्लास' के डिब्बे में नजर डालती चली, पर सुदर्शन दिखाई नहीं दिया।

'क्या नहीं आया है?' थोड़ी दूर चलकर गमन ने कहा।

'शायद गटर क्लास में ही हो,' केकी ने हँसकर कहा।

सुलोचना की शरम का पार न रहा। वह जिसे लिवाने आवे, जिसे उसके पिता पति बनाना चाहते हों, वह 'थर्ड क्लास' में मुसाफिरी करे? दो मित्रों को अपनी इस अधमता को देखने बुलाया, इससे उसे पश्चात्ताप हुआ। उसे लगा कि सुदर्शन को 'थर्ड' में खोजने की अपेक्षा घर जाकर वह नहीं आया है, ऐसी गप्प हांकना अधिक अच्छा होगा।

वह इस विचार में व्यस्त होकर थोड़ी देर खड़ी रही; गमन व केकी पास आ पहुंचे। इतने में गाड़ी से उतरकर बाहर जाती भीड़ में शिवलाल की आवाज़ सुनाई दी।

'गमन! केकी! नमस्ते।'

सुलोचना फिरी और एक भयङ्कर दृश्य उसकी दृष्टि में पड़ा। एक मोटा, तोंदवाला, बड़ी आंखों वाला लड़का छोटी धोती पहने शिवलाल का हाथ अपनी बगल में दबाये चल रहा था। उसके पीछे वही बैठी हुई टोपी, खुले बटन का काला कोट, मैली धोती, दक्षिणी जूते, राजा भाई मामा के वहां देखा हुआ दुबला, छोटा शरीर! मुंह जरा सूख गया था, आंखें जरा गहरी हो गई थीं, मुख पर गाम्भीर्य जरा बढ़ गया था। निर्जीवता की पराकाष्ठा मूर्तिमान् हो उसका गला दबाती हो, इस प्रकार सुलोचना घबरा गई। उसकी आंखों में अंधेरा आ गया। ग्रान्ट रोड पर उसके मित्रों के देखते, इस भीड़ में इसके साथ परिचय है, क्या यह क़बूल करना चाहिए? शकुंतला ने धरती माता से रास्ता मांगा था, यह उसे याद न था, इससे पिता के भय से प्रेरित हो उसने उच्चारित किया—उसके मुख से निकल गया—'सदुभाई।'

सुदर्शन ने सिर ऊंचा किया व सुलोचना को देखा--पहचान गया।

उसे क्षोभ हुआ। क्या करना है, यह उसे सूझा नहीं। शिवलाल नारणभाई का हाथ छोड़ आगे आया।

'क्या आप सद्दुभाई को पहचानती हैं?' उसने सुलोचना से पूछा।

'मैं इन्हें लिवाने आई हूं,' सुलोचना ने निस्तेज मुख से कहा। 'चलिए, 'पप्पा' ने मुझे विशेष रूप से भेजा है।'

'सुलोचना बहन! जगमोहन काका का मेरी ओर से आभार मानना। मैं कल-वल मिल आऊँगा। पर अब तो अम्बेलाल देसाई के यहां जाऊंगा।'

'यह कैसे हो सकता है?'

निश्चयात्मक आवाज़ में सुदर्शन ने कहा, 'मुझे अम्बेलाल के वहां पढ़ने में ठीक होगा।'

सबके साथ सुलोचना दरवाजे की ओर चलने लगी, और टिकिट देकर सब बाहर निकले।

'अम्बेलाल!' शिवलाल ने कहा, 'मैं नारणभाई को ले जाता हूं।'

'अरे हां, मुझे तो पचास और मेहमान होंगे, तो भी आपत्ति न होगी।' नारणभाई ने जोर से कहा।

'अच्छा, सुलोचना बहन! नमस्ते,' सुदर्शन ने हाथ जोड़कर कहा, और अम्बेलाल जो किराये की गाड़ी लाया था उसमें बैठकर वह चला गया।

सुलोचना को 'नमस्ते' करने का देशी रिवाज भी पसन्द न आया। केकी व गमन का हास्य सुनाई नहीं दिया था, पर उसकी झनकार सुनाई देती थी।

फिर शिवलाल की गाड़ी आई व नारणभाई घोड़े पर चढ़ने के लिए छलांग मारता हो, इस प्रकार कमानवाली गाड़ी हिल उठे ऐसी छलांग मार चढ़ गया।

'नमस्ते, सुलोचना बहन! नमस्ते गमन! केकी! नमस्ते!' शिवलाल ने हाथ मिलाया।

'क्या यह तुम्हारा बड़ौदा का मित्र है ?' केकी ने सुलोचना को रिझाने के लिए शिवलाल से पूछा।

शिवलाल हंसा। कुछ मजाक से कुछ शैतानी से वह बोला—'केकी! हम-जैसे बीस भी इकट्ठे हों तो भी इन दो में से एक की भी बराबरी नहीं कर सकते। समझे?' शिवलाल अपनी गाड़ी में बैठा और गाड़ी चल दी।

शिवलाल से अकस्मात प्राप्त हुए प्रमाणपत्र से तीनों जरा दुखित हुए।

सुलोचना की गाड़ी आई, और बिना उत्साह से 'नमस्ते' कर वह अपनी गाड़ी में बैठी। उसकी गाड़ी के रवाना होने के पहले, वह सुने इस प्रकार गमन ने कहा, 'बिलकुल बुद्ध है।'

: ३ :

किराये की गाड़ी सुदर्शन व अम्बेलाल को लेकर गिरगांव के राज-मार्ग से होकर कांदावाड़ी में से कल्याण-मोती के मकान पर पहुंची। इस मकान के पहले मंजले पर अम्बेलाल अपनी मां व बहन के साथ रहता था।

अम्बेलाल जितना होशियार था, उतना गरीब था; इससे लड़के पढ़ाकर अपना निर्वाह करता और शिक्षा प्राप्त करता था। उसकी विधवा माता हमेशा बीमार रहती थी, इसलिए अम्बेलाल पांच बजे उठकर चौदह वर्ष की बहन को नल से पानी लाने में सहायता करता था। फिर अपना बिस्तरा उठाकर धनी बहन को वह पानी का 'बंबा सुलगाने में सहायता करता था। इतने में बहन द्वारा तैयार की हुई चाय पी, नहा, डेढ़ घंटे तक 'डिटमार' के सस्ते दीये के सामने पढ़ता था।

साढ़े सात बजे कपड़े पहन वह बाहर निकलता था, और एक लड़के को मैट्रिक व दूसरे लड़के को पांचवीं कक्षा का अध्ययन कराकर

रोज़ डेढ़ रुपये कमाकर दस बजे वापस आता था। तत्पश्चात वह भोजन कर कालेज जाता और 'लेबोरेटरी' में शाम के साढ़े चार बजे तक प्रयोग करता था।

वह पांच बजे एक तीसरे शिष्य को रुपया रोज़ के हिसाब से पढ़ाता था, और शाम को चौपाटी पर घूमकर आठ बजे घर आता था। माता व बहन ने जो तैयार किया हो वह खाकर, दस बजे तक वह अपने अध्ययन में रुकता था। अम्बेलाल होशियार व दृढ़ हृदय का था। उसके अन्तर में अन्याय का भाव बहुत तीव्र था; ईश्वर ने उस पर अन्याय किया था, क्योंकि बिना पूछे ही उसे जन्म दिया था, और बिना अनुमति के निर्धन पिता व बीमार माता प्रदान किये थे। समाज ने उस पर अन्याय किया था, क्योंकि इतनी बुद्धि के रहते हुए भी वह मानो रास्ते का कूड़ा हो, इस प्रकार समाज उसके साथ बर्ताव करता था। विधि ने उस पर अन्याय किया था, क्योंकि उसके भाग्य से जिन लड़कों को पढ़ाने का काम मिलता था, वे सब भोंदू निकलते थे। स्वभाव ने उस पर अन्याय किया था, क्योंकि यह सब अन्याय सहन करने की सहिष्णुता उसमें नहीं थी। इन सब अन्यायों का शिकार अपने को मानने से समस्त जगत् की ओर वह द्वेष से देखता था। इतना द्वेष अन्तर में उछलता था, तो भी वह सीधा, सरल व भावनायुक्त, पर दुःखभञ्जन था; इस द्वेष से केवल उसकी जीभ पर कटुता आ गई थी।

अन्याय के विरुद्ध सदैव झगड़ते हुए उसके दो विश्राम-स्थान थे; एक उसकी खिलवाड़-पसंद, हंसमुख बहन और दूसरी उसकी सहाध्यायिनी मिस वकील थी। मिस वकील व अम्बेलाल मैट्रिक से एक साथ थे, और एक पारसी और दूसरा हिन्दू होते हुए भी एम० ए० तक उन्होंने मैत्री सुरक्षित रखी। विज्ञान-गृह में पांच घंटे तक प्रयोग अध्ययन नहीं था, पर उस विचक्षण सहाध्यायिनी के साथ आनंदपूर्ण सहचार था। इन पांच घंटों में उसका अन्याय का ख्याल चला जाता था, और कांच की बोतलों व नलियों में मानो अमृत भरा हो, इस प्रकार सुम-

धुरता प्रसारित हो जाती थी। १६०७ में वे और मिस वकील एम० ए० में बैठने वाले थे।

सुदर्शन उसके यहां आया, और कपड़े निकाल भोजन करने बैठा। धनी बहन परोस रही थी। जिन कठिनाइयों में अम्बेलाल जीवन के ध्येय का सेवन कर रहा था, उसका इसे इस समय स्पष्ट ख्याल हुआ; और ऐसे हिम्मतवान व भावनाशील व्यक्ति के मित्र बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, इससे वह प्रसन्न हो रहा था। ऐसी कठिनाइयों में, ऐसी गरीबी में, ऐसे जीवन के विग्रह में ही सच्ची मानवता का निर्माण होता है, यह विचार करके अम्बेलाल की अंधेरी कोठरी महल के प्रकाश से चमकने लगी, और इधर-उधर फिरती हुई, मीठा बोलती हुई धनी बहन में फरिश्ते का तेज दिखाई देने लगा।

धनी पतली, ऊंची व भली दिखाई देती थी। वह रङ्ग में बहुत गोरी नहीं थी; उसे सुन्दर नहीं कहा जा सकता था, तो भी बड़ी आंखें, घने बाल, छोटी नाक और हमेशा हंसता हुआ मुख उसके व्यक्तित्व को आकर्षक बनाते थे। फुरसत के समय अम्बेलाल उसे थोड़ा-बहुत पढ़ाता था, और स्वाभाविक चंचलता से वह जितनी थी उससे अधिक होशियार दीख सकती थी। सहानुभूति दरशाने की कला उसने हस्तगत की थी और जान-अनजान में अम्बेलाल की कठिनाइयों व सपनों में हिस्सा लेने की उसको आदत पड़ी थी।

'सदुभाई बहुत होशियार है, धनी बहन !' अम्बेलाल ने हंसते-हंसते कहा, 'और इनकी मेहमानी अच्छी तरह से करनी है। माननीय जगमोहनलाल का बङ्गला छोड़ ये यहां आये हैं।

'हमारे यहां तो शबरी के बेर मिलेंगे,' धनी ने कहा।

'मैं रामचन्द्रजी नहीं हूँ पर गरीब विद्यार्थी हूँ, इतना ही अन्तर है।' सुदर्शन ने कहा।

सब हंसे, और हंसते-हंसते रोटी, दूध व साग खतम हो गए।

'हमारा मण्डल कैसा चलता है ?'

'अभी तो वे सब परीक्षा में व्यस्त हैं, उसके पश्चात् कुछ किया जाय,' सुदर्शन ने कहा। पुस्तक निकाल वह पढ़ने लगा, और अम्बेलाल सोरठ, मल्हार के सुर गाने लगा। अन्दर धनी बर्तन मलती थी वह सुनाई देता था, और थोड़ी-थोड़ी देर में वह किसी कारण से बाहर आ मीठा बोलकर जाती थी। सुदर्शन पढ़ने में लगा था, तो भी इस छोटी कोठरी में स्थित निर्धन भावनाशीलता का प्रभाव उसके अन्तर पर होने लगा।

धनी ने बिस्तरा लगाया, देसाई सोने लगा और सुदर्शन पढ़ता रहा। बारह बजे उसने पुस्तक बंद की और वह बिस्तरे पर लेट गया। मच्छर गुनगुनाते थे, कांदावाड़ी की गंदी हवा चारों ओर फैलती थी, पढ़े हुए विषय के मुद्दे उसके दिमाग में तैर रहे थे, और तो भी इस स्थिति में सपने सिद्ध करना उसे सरल मालूम पड़ने लगा।

वह सबेरे उठा तब अम्बेलाल बाहर जाने की तैयारी कर रहा था।

'मैं काम पर जाता हूं, भोजन के समय आऊंगा। धनी बहन! सदुभाई को चाय देना,' कह अम्बेलाल चला गया।

सुदर्शन उठा। बम्बई की धनी बस्तीवाले मकान की प्रातः बाहर रहनेवाले को विचित्र लगे बिना नहीं रहती। पानी भरती हुई स्त्रियां, दातुन करते हुए पुरुष, बरामदे में पड़े हुए देरी से उठने वाले, धीरे से फिरते हुए नाई, नल के पास हल्ला-गुल्ला, नीचे से आता हुआ प्रचण्ड घोष—"नल बंद करो," रास्ते में चिल्लाते हुए शाक-भाजी बेचनेवाले—ये दृश्य, ये नाद, यह गड़बड़ संस्कृति के कलंकरूप बम्बई के मकानों के सिवाय कहीं भी प्राप्त नहीं होते। सुदर्शन को यह अनुभव उत्तेजक मालूम पड़ा। यह उभरता हुआ मानव-समूह उसकी दृष्टि में तो उछलता हुआ उत्साह, उभरती हुई शक्ति की मूर्ति मालूम पड़ा।

उसने दातुन किया और धनी चाय ले आई। कमर पर हाथ रख वह सुदर्शन के सामने देखती रही।

'आप पास होकर क्या करेंगे?' उसने पूछा।

'मैं देशसेवा करनेवाला हूं।'

'भैया भी यही करनेवाले हैं। आप दोनों मिलकर काम करेंगे तो देश के दिन अवश्य फिरेंगे। क्या आपने स्वदेश-व्रत लिया है? भैया ने तो लिया है।'

सुदर्शन ने सिर ऊंचा किया। यह छोटी लड़की स्वदेश-व्रत की बात करती है? कैसी छोटी लड़की है! उसकी चमकती हुई आंखों में कैसा उत्साह है!

'मैंने भी लिया है।'

'मैंने भी लिया है। मैं कांच की चूड़ियां पहनती ही नहीं।' कह वह अपनी 'कचकड़े' की चूड़ियां बताकर हंसी।

'आप तो बड़ी देश-भक्त हैं,' सुदर्शन के मुख से निकल गया।

'नहीं, भैया देश-भक्त बनेंगे और मैं उनकी सेवा करूंगी,' धनी ने कहा।

'क्या अम्बेलाल का विवाह नहीं हुआ है?' सुदर्शन ने पूछा।

'भैया भी विवाह नहीं करेंगे और मैं भी विवाह नहीं करूंगी।'

'सच बात है।' इस लड़की के शब्दों से उत्पन्न तरङ्गों में तल्लीन सुदर्शन ने कहा।

'जिसने देश-भक्ति का वरण किया हो, वह दूसरे का कैसे वरण करे?'

'क्या आपका भी विवाह नहीं हुआ है?'

'नहीं।' सुदर्शन ने कहा।

'अच्छा, पढ़िए,' धनी ने कहा, 'भैया आयेंगे तो नाराज़ होंगे।'

सुदर्शन पढ़ने लगा, पर धनी के वचन व हास्य सुनाई देते रहे।

पांच दिन सुदर्शन ने परीक्षा दी। पहले दिन उसने रावबहादुर प्रमोदराय को पत्र लिखा। उसमें लिखा था कि मैं अपने मित्र के यहां ठहरा हूं। यह समाचार जान रावबहादुर के क्रोध का पार नहीं रहा, और उन्होंने एकदम जाकर 'माननीय' को मिल आने के लिए तार दिया।

सुदर्शन को अंबेलाल की संगति में से व धनी की प्रेरणा में से

अलग होना अच्छा नहीं लगा, इससे जब तक परीक्षा पूरी नहीं हुई, तब तक उसने अपने पिता की आज्ञा को कार्यरूप नहीं दिया। पर पांचवें दिन, अन्तिम विषय की परीक्षा पूरी होने पर वह और अम्बेलाल माननीय जगमोहनलाल का दफ्तर खोजने निकले। थोड़े परिश्रम से माननीय जगमोहनलाल का दफ्तर तो मिला, पर वहां नौकर ने सूचना दी कि साहब फीरोज़शाह मेहता के दफ्तर में गये हैं, और लगभग एक घंटे तक नहीं आयंगे। सुदर्शन व अम्बेलाल 'टावर' के सामने फीरोज़-शाह मेहता के दफ्तर के पास जाकर खड़े हो गए।

सुदर्शन ने फीरोज़शाह को एक बार अहमदाबाद कांग्रेस के समय दूर से देखा था। वह फीरोज़शाह की नीति का विरोधी था, तो भी उनके सान्निध्य में जाते समय उसे जरा क्षोभ हुआ। वे दोनों 'फुटपाथ' पर खड़े थे; एक गाड़ी आकर खड़ी हुई और वे अपने भव्य लिबास व चमकती पगड़ी की तेजस्विता में गाडी में से उतर कर दफ्तर में गये। सुदर्शन ने मान से प्रेरित होकर सलाम की, फीरोज़शाह ने अपना दुर्जय हास्य मुख पर लाकर सलाम स्वीकार की।

'तीस वर्ष तक इन्होंने बम्बई में चक्रवर्ती राज्य किया है,' सुदर्शन ने कहा।

'बेगार का बादशाह है।' कटुता से अम्बेलाल ने कहा।

'अपने समय के अनुसार इन्होंने भी ठीक किया है।'

'सदुभाई! इनका 'प्रेसिडेन्सी एसोसियेशन' प्रतिवर्ष पचास भिक्षा-पत्र सरकार को भिजवाता है। यह तो इस देश का दुर्भाग्य है कि ऐसे भी देश के नेता बने फिरते हैं। चलो ऊपर चलें।'

दोनों ऊपर गये व फीरोज़शाह के नौकर के हाथ रावबहादुर का तार जगमोहनलाल के पास भिजवाया। तुरंत 'माननीय' बाहर आये।

'कौन सदुभाई! वाह! इतने दिनों से आये हो और आज मिले?'

'परीक्षा में लगा था,' सुदर्शन ने उत्तर दिया।

'पन्द्रह मिनट बैठो। अभी जरा मैं काम में हूँ। चपड़ासी! दो

कुरसियां इधर रखो। चले न जाना, बैठना,' कह माननीय वापस गये। चपड़ासी ने दरवाज़े के पास दो कुरसियां रखीं और दोनों बैठ गए। वे जहां बैठे थे वहां आड़ा परदा था, और परदे के छिद्रों में से अंदर बैठे हुए सब दिखाई देते थे।

'सदुभाई,' धीरे से अम्बेलाल ने कहा। 'ये सब देश के उद्धारक देखने-जैसे हैं। बेगार के बादशाह को तो नीचे देखा। वे दीनशा वाञ्छा हैं, बादशाह के वज़ीर हैं। वे चिमनलाल सेतलवाड़ हैं, सेनापति हैं। चक्करवाली पगड़ी पहने हुए जो कोने में बैठे हैं, वे हरि सीताराम दीक्षित हैं। गोकुल काका तो पहचान में आये, साधारणतया उनकी आंखें ही नहीं खुलतीं।' इतने में दो नये व्यक्ति आये।

'ये तो गोखले हैं न?' सुदर्शन ने एक को अंगुली से निर्देश कर अम्बेलाल के कान में पूछा, 'और दूसरे कौन हैं?'

यह दूसरा व्यक्ति ऊंचा, पतला व शानदार था। अंग्रेज़ी कपड़े बेचनेवाले के विज्ञापन के तख्ते पर चित्रित नमूना सजीव हो आया हो, ऐसी उनकी वेशभूषा की शान थी। एक बड़ी सिगार उसके मुख में थी।

'ये बैरिस्टर जिन्ना हैं।'

सुदर्शन ने निश्वास लिया।

'देखे अपनी बम्बई के महान् नर?' कटाक्ष से अम्बेलाल ने कहा।

'क्या आफत है?' सुदर्शन ने कहा।

'राष्ट्र की महत्ता की अपेक्षा इन सबको सरकार की महत्ता में अधिक विश्वास है।'

'हम राष्ट्र हैं, यह इनमें से किसीको अभी तक पता नहीं है।'

'उन्हें यह भी कहां से पता होगा कि गलियों व गांवों में राष्ट्रीय भाव जागृत हुआ है, और इनके-जैसे कितनों को ही उलटा देगा।'

इतने में अन्दर इतना तेज़ वादविवाद होने लगा कि उसे दोनों सुनने लगे। अन्दर आगामी कांग्रेस का प्रश्न उठाया जा रहा था, और वङ्ग-भङ्ग, स्वदेशी-व्रत, 'बॉयकाट', 'बंदेमातरम्' आदि विषयों का, जिन्हें

सुदर्शन प्राण से भी अधिक प्रिय मानता था, वे सब कम-ज्यादा अंश में मज़ाक कर रहे थे। कमरे में व्यावहारिक वातावरण फैला हुआ था। सुरेन्द्रनाथ अविचारी थे; राष्ट्रीय आन्दोलन केवल लड़कों की मूर्खता था; 'वंदेमातरम्' बचपन का एक ढोंग था; 'बॉयकाट' एक पाप था; ऐसे-ऐसे अभिप्राय वहां उच्चारित किये जा रहे थे। प्रश्न केवल इतना ही था कि आगामी कांग्रेस अधिवेशन सबको अलग रख किस प्रकार सफलता-पूर्वक मनाना चाहिए।

सुदर्शन का खून खौल उठा। ये सब उसकी दृष्टि में देशद्रोही दिखाई दिए। बीच का परदा फाड़ उन सबको उसका यह कहने का मन हुआ कि जिसकी वे मज़ाक उड़ा रहे थे वह राष्ट्रीयता विजय के प्राबल्य में बाहर निकली थी और उनके-जैसे सैकड़ों के भी हाथ न रहेगी।

आखिर सभा विसर्जित हुई और माननीय ने आकर सुदर्शन को अपने यहां आने का आग्रह किया। सुदर्शन नाहीं न कर सका। माननीय ने अपनी गाड़ी कांदावाड़ी की ओर मुड़वाई और सुदर्शन का आवश्यकीय सामान ले लिया, व अम्बेलाल को उतार दिया।

मानो जेल में जाता हो ऐसी मनोदशा का अनुभव करता हुआ सुदर्शन कांदावाड़ी से वालकेश्वर गया।

: ६ :

सुदर्शन ने जब से माननीय के बंगले में पैर रखा, तब से वह अक्षम्य पाप करता हो, ऐसा उसे मालूम पड़ने लगा।

कांदावाड़ी की गन्दी कोठरी में निर्धनता थी, भावना थी, देश की लगन थी, स्वदेश-व्रत था, आत्म-त्याग था। वह सब छोड़, जहां वैभव व स्वच्छता साथ में विहरते थे, जहां मिजाज़ व स्वार्थ का साहचर्य था, जहां विदेशी सामग्री व राजद्रोह पद-पद पर दिखाई देते थे, वहां आने

पर उसका हृदय फट गया। गोल्डस्मिथ के शब्द उसके कान में सुनाई देते रहे—'The nackedness of the indigent world can be clothed from trimmings of the rich' (निर्धन दुनिया की नग्नता धनवानों की झालरों से ढांकी जा सकती है।); और उसके हृदय में 'मां' की आवाज़ सुनाई दी—"मेरे ऐसे पुत्र विदेशी विलास में लुब्ध होकर मेरी पराधीनता को दीर्घजीवी बनाते थे। सुदर्शन, तुझे ऐसे कपूतों से क्या मतलब ?"

सुदर्शन को एक कमरा दिया गया था। उसने वहां रखे हुए कांच में अपने बाल, वेश-भूषा व मुंह देखे; और साथ ही चारों ओर देखने पर उसे स्पष्ट जान पड़ा कि उसका स्थान इस शानदार दुनिया में नहीं था, पर कांदावाड़ी में, देहात में, गन्दगी में था, जहां उसके देश-बान्धव सड़ते थे। वह स्वतः यहां कलंकरूप में था; यह विदेशी शान भारत में कलंकरूप थी।

ऐसे अनेक विचारों के चक्कर में उसने कपड़े निकाले, मुंह धोया और वह बाहर आया तब 'माननीय' व सुलोचना उसकी प्रतीक्षा करते थे।

'सदुभाई ! तुम यहां न आये यह ठीक न किया। मैं व रावबहादुर तो बालपन के मित्र हैं,' माननीय ने नम्रता से कहा।

'मुझे लगा कि यहां ठीक न मालूम पड़ेगा।'

'अरे यह भी कोई बात है ? सब सहूलियतें कर दी जातीं।'

'काका ! मैं इन सहूलियतों व सुख से परिचित नहीं हूं।' सुदर्शन ने सिर नीचा करके कहा।

'तो परिचित हो जाओगे। तुम पास हो जाओ, फिर यहीं रहकर 'एल-एल० बी०' करना है।'

सुदर्शन ने हंसकर सिर धुनाया।

'क्यों ?' माननीय ने आश्चर्यचकित होकर पूछा।

'इतने सुख में मुझसे पढ़ा नहीं जा सकता, व मैं विचार भी नहीं कर सकता। मुझे तो कठिनाइयों में ही आनंद आता है।' सुदर्शन ने

उत्तर दिया। उसकी दृष्टि सुलोचना पर पड़ी। कहां इस अकड़कर अभिमान से बैठी हुई, विदेशी शान में आनंद मनाती सुलोचना का शुष्क, दयापूर्ण स्वागत और कहां मेहनत करती हुई, सादी धोती में भी गर्व धारण करती, देश की लगन से आर्द्र बनी हुई हंसमुख धनी बहन का स्नेहपूर्ण आतिथ्य! उसे लगा कि इस घर का वातावरण यदि तीन दिन उसके आसपास रहे तो अवश्य उसे आत्म-हत्या करनी पड़े।

'बड़ौदा में बैठे-बैठे तुमने भी जीवन के सिद्धान्त ठीक बना रखे हैं,' माननीय बड़ी कठिनाई से घबराहट दूर कर हंसे।

सुदर्शन चुप रहा।

'अभी तक कापड़िया क्यों नहीं आये?' माननीय ने पूछा।

'मैं सोचती हूं कि यह गाड़ी जो खड़ी हुई है उन्हें ही लेकर आई होगी,' सुलोचना बोली।

सुदर्शन के गम्भीर व्यक्तित्व का प्रभाव माननीय पर भी पड़ा। उन्हें मालूम पड़ा कि इस छोटे लड़के में सबको चुप कराने योग्य वातावरण उत्पन्न करने की विचित्र शक्ति थी।

इतने में प्रोफेसर कापड़िया छोटी धोती, 'हाफ कोट' व टोप पहने आ पहुँचे।

'अच्छा, प्रोफेसर कापड़िया आ गए?' माननीय ने कहा।

'हां, आ पहुंचा,' सूंघनी की एक चिपटी नाक में रखते हुए कापड़िया आये।

'सुलोचना! जाओ, भोजन की तैयारी करो,' माननीय ने आज्ञा की।

'कापड़िया! ये मेरे मित्र के पुत्र, सदुभाई—जिनके बारे में मैंने बात की थी।'

कापड़िया कमरे के बीच में खड़े रहे। उन्होंने धीरे से नाक पर चश्मा जमाया, और मानो सुदर्शन नया जानवर हो इस प्रकार उसे सिर से पैर तक वे देखते रहे।

'अच्छा ! सदुभाई कैसे हो ?'

'अच्छा हूं।' खड़े होकर विनयपूर्वक सुदर्शन ने कहा।

'बी० ए० की परीक्षा देने आये हैं,' माननीय ने कहा। 'बड़ौदा-कालेज में हैं, विप्लववादी हैं, अरविंद घोष के भक्त हैं।'

कापड़िया एक 'सोफे' पर बैठे, नाक पोंछा और बोले, 'कालेज में सब विप्लववादी, मध्यावस्था में सब कांग्रेस वाले और बुढ़ापे में सब सरकार के सेवक होते हैं। छुटपन में कुछ गंवाने का नहीं रहता इससे विप्लववाद अच्छा लगता है; मध्यावस्था में आगे आने के लिए व्यवस्थित आन्दोलन की आवश्यकता मालूम पड़ती है; बुढ़ापे में सञ्चित की रक्षा के लिए कानून व व्यवस्था सहायक बन जाते हैं। हा-हा-हा ! समझे ?' कापड़िया ने कहा।

'याने सदुभाई भी बुढ़ापे में कानून व व्यवस्था के सहायक बन जायंगे, यही न ?' माननीय ने कहा।

सुदर्शन को ये शब्द अग्नि-स्पर्श जैसे मालूम पड़े। उसने सिर ऊँचा किया और पूर्ण नम्रता से पूछा, 'मेज़िनी का क्या ?'

'यूरोपियन की बात जाने दो,' कापड़िया ने कहा, 'भारत में भारत की बात करो।'

'याने क्या हम लोग मनुष्य नहीं हैं ?' सुदर्शन ने पूछा।

'एक प्रकार के। जैसा एक वैज्ञानिक कहता है हम 'Featherless biped' (बिना पंख के दुपाये) तो हैं ही। समझे ?' कापड़िया ने उत्तर दिया।

'तब जो दूसरे दुपाये करें वह हम क्यों न कर सकें, ऐसा सदुभाई का कहना है,' 'सोफे' पर लेटते हुए माननीय ने कहा। दामाद प्राप्त करने की यह तरकीब उन्हें पसन्द न आई।

'विप्लववादी हो तो,' कापड़िया ने अंगुलियां अलग कर गिनना शुरू किया, 'निर्धन चाहिए, भावनाशील चाहिए, सपने में जी सके ऐसा चाहिए, और किसी महाद्वेष से हमेशा जलता रहना चाहिए। भारतीय

की निर्धनता इतनी साधारण है कि इससे उसे कोई असुविधा नहीं होती और परिणामस्वरूप उसे असन्तोष नहीं होता। उसकी भावनाशीलता व्यावहारिक जीवन से इतनी अलग रहती है कि दोनों नदियां बिना संगम के अलग बह जाती हैं। उसकी स्वप्नदृष्टि इतनी सूक्ष्म व अवास्तविक होती है कि तुरन्त बैकुंठ या राधाकृष्ण का नहीं हो तो ब्रह्म का साक्षात्कार करने के लिए ही उछलती है; और 'अहिंसा परमोधर्मः' उसकी नसों में इतना है कि चालीस घंटे तक द्वेष का जोश वह रख नहीं सकता। समझे? केशवचंद्र ने धार्मिक विप्लव प्रारम्भ किया और अन्त में वे धर्म व वर्ण के रहस्य परखने बैठे। बीस वर्ष होने दो, आपके सुदुभाई या तो आडम्बरी धनाढ्य बनेंगे, नहीं तो विक्षिप्तता से परिपूर्ण भक्त होंगे, समझे?'

कापड़िया का भाषण माननीय को अच्छा लगता था, इससे धीरे से सिगार पीते हुए वे यह सुनते रहे। सुदर्शन को इस प्रोफेसर के शब्दों में आनन्द आया; इससे उसमें परिचित विचार, संकल्प व सिद्धान्त जागृत हुए। उसने आतुरता से प्रत्येक शब्द सुना, और कापड़िया ने पूरा किया तब उसकी बुद्धि सतेज हुई, और उनसे बहस करने के लिए वह तैयार हो गया।

पर इतने में सुलोचना आई। 'पप्पा! समय हो गया।' 'चलो' कह कर माननीय उठे, और अनेक विद्याओं के वाक्चतुर के समान उन्होंने नया विषय निकाला। 'आगामी कांग्रेस में बहुत गड़बड़ होने वाली है, प्रोफेसर। आज हम उसका विचार करने के लिए इकट्ठे हुए थे।'

'और आपके Dictator (सर्वसत्ताधिकारी) ने क्या किया?' हंसकर कापड़िया ने पूछा।

'हमारा क्या कोई हिसाब ही नहीं है?'

'कितना? हा—हा—हा। बङ्गाल की गड़बड़ी से आप सब बहुत घबराये हुए मालूम होते हैं।'

'Not a bit,' (ज़रा भी नहीं)' पीढ़े पर बैठते हुए माननीय ने कहा।

'तूफ़ान शुरू होने पर क्या 'ऑस्ट्रिच' ने सुरक्षित रहने के लिए रेती में सिर दबा लिया ?'

'अरे ये Idiots (मूर्ख) क्या करने वाले थे ? इन बाबुओं का सिर ही ठिकाने नहीं है। सदुभाई, जरा तो लो ?'

'मुझसे अधिक नहीं खाया जाता।'

'सुलोचना, कल सवेरे सदुभाई को घुमाने के लिए ले जाना।'

'मुझे कल रात को तो जाना है, इससे कल अपने मित्रों से मिलने जाना पड़ेगा।'

'सवेरे फिर आना।'

'जी हां,' सुदर्शन ने कहा।

और फिर नाना प्रकार की बातें करते हुए भोजन पूरा हुआ। काप-ड़िया ने इजाज़त ली और माननीय अपने कमरे में गये।

सुदर्शन अपने काम में लग गया। कापड़िया के शब्दों ने उसकी कल्पना-शक्ति उत्तेजित की थी। प्रोफेसर ने भी 'मां' के शब्द मानो उपयुक्त किये हों, ऐसा उसे मालूम पड़ा। क्या 'मां' के पुत्र मानवता में ही नहीं हैं ? क्या 'मां' के 'प्रियतम' वापस नहीं आयंगे ?

पर पांच दिन की कड़ी मेहनत के बाद सुदर्शन की स्वप्न-दृष्टि थक गई थी। वह बिस्तरे में सोया, जब उसने आंखें खोलीं तब सबेरा हो गया था।

: ७ :

सुलोचना सुदर्शन को ले घूमने निकली तब गाड़ी में क्षोभ का वातावरण छा रहा था। इस 'बुद्धू' के साथ घूमने जाने से सुलोचना के अभिमान पर चोट लगी थी, और कहीं कोई इस लड़के के साथ उसे

देख न ले ऐसा उसे लग रहा था। इसके उपरान्त शिवलाल, माननीय व कापड़िया को वह प्रभावित कर सका था, यह वह समझ न सकी थी, तो भी उस अदृष्ट रहस्य का उसे भय लगने लगा था। सुदर्शन को ऐसा लगता था कि सुलोचना के साथ उसका विवाह करने की योजना में यह एक प्रयोग था, इससे किसी अप्सरा के प्रति कोई ऋषिराज चौंककर चलें इस प्रकार वह चलता था। इस शानदार, साफ-सुथरी, अभिमानी व अपमानजनक बर्ताव करने वाली लड़की के प्रति उसे तिरस्कार होता था।

थोड़ी इधर-उधर की बातें करते हुए वे चौपाटी पर आये।

'यह आपके शिवलाल आँफ का घर है,' सुलोचना ने कहा।

'हम लोग यहीं घूमना बंद करें तो कैसा हो ?' सुदर्शन ने कहा, 'मुझे शिवलाल से मिलना है।'

'पप्पा नाराज़ होंगे, आगे जैसी आपकी मर्ज़ी,' सुलोचना ने तटस्थता से कहा।

'समय थोड़ा है, और मुझे काम बहुत है,' सुदर्शन ने उत्तर दिया, 'मेरा सामान कांदावाड़ी में भिजवाना, नहीं तो मैं शिवलाल की गाड़ी भिजवा दूंगा।'

सुलोचना ने गाड़ी खड़ी करवाई और सुदर्शन उतरकर चला गया।

सुलोचना थोड़ी देर तक विचार में देखती रही। एक छोटा-सा लड़का भी घबराहट पैदा कर सकता है ? आखिर नाक चढ़ाकर उसने गाड़ीवाले को गाड़ी घर ले चलने को कहा।

सुदर्शन ने शिवलाल के यहां भोजन किया, दोपहर में कालेज में अम्बेलाल से मिलकर मिस वकील का परिचय प्राप्त किया; फिर कालबादेवी पर जाकर कुछ पुस्तकें खरीदीं व शाम को अम्बेलाल के यहां आया।

'सदुभाई ! आपके लिए मैंने एक रूमाल भर रखा है,' धनी ने यह कहकर धागे का एक छोटा रूमाल आगे रखा।

सुदर्शन ने रूमाल में धागे से भरे हुए 'वन्देमातरम्' शब्द पढ़े, और उसका हृदय उछल आया। प्रेरकता की कैसी अप्रतिम मूर्ति थी! उसने आंसू-भरी आंखों से रूमाल लिया व कपड़े बांधे।

शिवलाल व नारणभाई भी आज अम्बेलाल के यहां भोजन करने वाले थे। उन सबने भोजन किया, और रात की गाड़ी से बम्बई छोड़ने के पहले उसने व्यवस्था कर ली कि यदि वह बम्बई पढ़ने आया तो अम्बेलाल के यहां पैसे देकर रहेगा।

दस

वंबई में निवास

: १ :

सुदर्शन अपने गांव में दूसरे दिन रावबहादुर प्रमोदराय के तीव्र क्रोध का पात्र हुआ। इस क्रोध का कारण माननीय जगमोहनलाल का यह पत्र था।

बम्बई....११-१९०६

श्री प्रमोद भाई,

चि० सुदर्शन बम्बई आया था, और बहुत कहने पर भी हमारे यहां न उतरा। कुछ अभिमान, कुछ मिथ्या विचारों व कुछ मूर्ख के समान आदर्शों ने इस आशास्पद लड़के को बिगाड़ रखा है। बुरा न मानना, मेरे लिए भी यह बच्चा है, इससे ऐसा लिखता हूँ। यह सब देखते हुए हम लोगों को अपने सम्बन्ध गाढ़े करने के प्रयत्न बन्द करने होंगे। गंगा भाभी को प्रणाम !

भवदीय

जगमोहनलाल

'तूने यह क्या किया, मूर्ख ? ज़ोर से प्रमोदराय ने सुदर्शन से कहा, 'दिन-पर-दिन अक्ल कम ही होती जाती है। बम्बई जाकर क्या कर आया ?'

'पिताजी, कुछ नहीं। पर अपना जीवन अपनी रीति से व्यतीत करने के मैं योग्य हुआ हूं।'

'याने चाहे जिसको बुरा लगने का अधिकार मिला, नहीं ?' लाल-पीले होते हुए रावबहादुर ने कहा।

'मैंने उनका जरा भी अपमान नहीं किया है। जहां मुझे अच्छा न लगे, वहां कैसे उतरूं ? और उनकी सुलोचना को मैं क्या करूं ? विवाह तो मुझे करना है न ? उसे रखने के लिए मैं कांच की अलमारी कहां से लाऊँ ?' गरम होकर सुदर्शन ने कहा।

'याने तुम सुलोचना से विवाह न करोगे ?'

'मेरी इच्छा नहीं है, सुलोचना की इच्छा नहीं है। अब जगमोहन काका की भी इच्छा नहीं है। फिर व्यर्थ किसलिए आशा रखते हैं ?'

'तुम करना क्या चाहते हो ?'

'मुझे पैसा नहीं चाहिए, मुझे प्रतिष्ठा नहीं चाहिए, मुझे स्त्री नहीं चाहिए।'

'फिर क्या राख लगाकर घूमना है ?'

'मैंने तो कब से ही राख लगा ली है।'

'तुम मुझे न सताओ। अधिक गड़बड़ करोगे तो घर के बाहर निकाल दूंगा।'

'आप कहेंगे तब से दूसरे क्षण न रहूँगा। पिताजी, क्रोधित क्यों होते हैं ? क्या मैं खराब हूं ? क्या मैं दुर्गुणी हूं ? क्या मैं पापी हूं ? मेरा क्या अपराध है ? मैं अपना जीवन अपने ढङ्ग पर बनाऊँगा, और आपके ढङ्ग पर न बनने दूँगा, यह भी निश्चित है।'

'बड़े होशियार बने हो।'

'मैं तो बालक हूं।'

'इससे क्या ? यह पागलपन तुम्हें छोड़ना ही होगा। नहीं तो—'

'पिताजी, मेरा पागलपन अत्याचार से कभी न जायगा।' जरा जोर से सुदर्शन ने कहा।

'न जायगा ! न जायगा !' चिल्लाकर रावबहादुर झूले पर से उठे, और सुदर्शन के पास जाकर उसे एक तमाचा लगा दिया। 'न जायगा !'

दांत पीसकर उग्र रावबहादुर ने फिर से कहा, 'याद रखो यदि ऐसी निर्लज्जता मेरे सामने बताई तो ! काला मुंह करो अपना ।'.

सुदर्शन की आंखों में क्षण-भर के लिए द्वेष आया, पर उसे अपने पिता के लिए बहुत ही मान व प्रेम था, और हमेशा वह पुत्र का आदर्श सुरक्षित रखने के लिए यथासंभव प्रयत्न किया करता था। वह चुपचाप नीचा सिर किये खड़ा रहा। उसके हृदय में कुछ कह डालने का जोश उत्पन्न हुआ पर उसे उसने दबा दिया।

वह नीचा मुंह किये चला गया। उसे मालूम पड़ा कि उसकी मानवता की कसौटी प्रारम्भ हो रही थी। वह नीचे गया व एक कोने में बैठकर उसने संकल्प किया कि जिस घर में उसे अपनी रीति से जीने का अधिकार नहीं था, जहां उसे 'मां' की भक्ति करने का अधिकार नहीं था, वहां रहना निरर्थक था। जीवन के आदर्श व सपने उसे घर के बाहर निकल जाने के लिए निमंत्रित कर रहे थे। निरङ्कुश देशभक्ति का सेवन करने के लिए उसे स्वातन्त्र्य की आवश्यकता प्रतीत हुई।

उसने घर के बाहर जाने का निश्चय किया। उसने अपनी धोती, एक कमीज़, दो पुस्तकें, एक डायरी और अपने पास में पड़े हुए चौदह रुपये लिये; और मध्यरात्रि के पश्चात् घर से निकल दो बजे की गाड़ी से बम्बई जाने का निश्चय किया।

माता-पिता उसका इरादा समझ न जायं, इसलिए वह हमेशा की रीति के अनुसार, दस बजे बिस्तरे में जाकर जागता हुआ लेट गया। लगभग ग्यारह बजे सब घर शान्त हो गया, तब उसने उठने का विचार किया, व तीसरे मंजले से रावबहादुर के उतरने की आवाज सुनी। वह मानो सोता हो इस प्रकार करवट बदल कर सो रहा।

प्रमोदराय व गङ्गा भाभी धीरे-धीरे उसके पास आये। दोनों बिस्तरे के पास बहुत देर तक खड़े रहे। कहीं यह न मालूम पड़े कि वह जागता है, इसलिए सुदर्शन जोर से श्वास लेता हुआ सो रहा।

'मैंने बहुत जोर से मार दिया,' प्रमोदराय ने गंगा भाभी को कहा।

उनकी आवाज में स्नेह व खेद दोनों थे—'लड़का तो हीरे-जैसा है।'

'आप व्यर्थ ही नाराज होते हैं,' गङ्गाभाभी ने धीरे से उत्तर दिया, 'यह बड़ा होने पर खुद ही सीधा हो जायगा। जगमोहनभाई का मिजाज़ ठिकाने नहीं है, इससे ऐसा लिखा। उसकी सुलोचना नहीं मिलेगी तो क्या मेरा लड़का कुवाँरा ही रह जायगा?'

सुदर्शन यह भाव-प्रदर्शन देख रोने-जैसा हो गया। उसे मालूम पड़ा कि कितनी ही देर तक माता व पिता दोनों उसे स्नेह से देखते रहे; एक बार तो मानो दोनों ने एक ही भाव के भार से हाथ-में-हाथ डाले हों ऐसा लगा; एक बार उसके शरीर पर प्रमोदराय ने धीरे से हाथ फेरा। थोड़ी देर में वे धीरे से ऊपर चले गए।

वे गये तब सुदर्शन ने फिर से आंखें खोलीं; उसकी आंखों में आंसू आये थे। उसका गला भर आया था। वातावरण में अपार्थिव मृदुता व स्नेहार्द्रता थी। इस जादूभरे वातावरण में उसने फिर से अपनी आखों से वृद्ध माता-पिता को बिस्तरे के पास खड़े रहकर अपनी ओर ममता की वर्षा करते हुए देखा। उन दोनों के जीवन का वह आशातन्तु था। यदि वह चला जाय तो जिस प्रकार श्रवण के वियोग से उसके माता-पिता का देहान्त हुआ, इस प्रकार उनका भी होगा। क्या उन्हें व्यर्थ मारने में मानवता थी? क्या उन्हें सुखी कर 'मां' की भक्ति न हो सकेगी? क्या इस समय माता-पिता की सेवा व 'मां' की सेवा में विरोध था?

कितनी ही देर तक वह विरोध करता रहा। उसने अनेक बार अपनी गठरी उठाई, कपड़े पहनने का विचार किया, पर जी नहीं हुआ।

बारह हुए, एक हुआ, गाड़ी का समय हो गया; सुदर्शन जागता हुआ पड़ा रहा। उषाकाल निकट आने पर उसने निश्वास लिया।

'मां! मां! इन दोनों को इस प्रकार मारकर मैं कहां जाऊँ? मां! इन्हें छोड़ने की आवश्यकता हो तो आज्ञा करना।'

वह बिस्तरे में लेटा व थोड़ी देर में उसकी आंखें बन्द हो गईं।

: २ :

दूसरे दिन प्रमोदराय व सुदर्शन दोनों ने पहले दिन की घटना भुला दी, और सब पूर्ववत् रहा। जगमोहनलाल, सुलोचना, तमाचा आदि स्वयं एक स्वप्नवत् हो गया।

थोड़े दिनों में सुदर्शन 'बी० ए०' की परीक्षा में द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ, यह समाचार प्राप्त हुए और समस्त परिवार आनन्द-महोत्सव में मग्न हो गया। पेड़े बांटे गए, चाय पिलाई गई, अभिनंदन-पत्र आये, रावबहादुर गर्व से फिरने लगे, गंगा भाभी की आंखों में हर्षाश्रु आये, और जीवन के खुलते हुए द्वार से सुदर्शन को हर्ष हुआ। अम्बेलाल का साहचर्य, बम्बई का शान्ति-प्रेरक वातावरण, दृष्टि-बिन्दु विकसित करने के अवसर, साथ ही मण्डल को सजीव बनाने का लक्ष्य और धनी का प्रेम व सहानुभूति से पूर्ण प्रोत्साहन आदि सब अङ्गों से परिपूर्ण नये व रमणीय जीवन के सपनों का आनन्द मनाने में वह व्यस्त हुआ।

भीमनाथ के तालाब के किनारे स्थापित मण्डल के बारे में वह रोज़ विचार करता था; और उसके सदस्यों की प्रवृत्ति किस प्रकार केन्द्रस्थ हो देश में राष्ट्रीयता व स्वातन्त्र्य ला सकती है, इसका वह विचार किया ही करता था। उसके मन में एक विचार आया था। मण्डल के और सदस्य एकदेशीय दृष्टि से राष्ट्रीय प्रश्न का विचार करते थे, केवल वह अकेला ही सब दृष्टियों की समग्र रीति से देख सकता था, और केवल उसीकी योजना सर्वग्राही थी। प्रत्येक सदस्य की एकदेशीय प्रवृत्ति दूसरे की प्रवृत्ति के साथ मिलाकर एक सर्वदेशीय आन्दोलन किस प्रकार प्रकट हो सके, उसका वह विचार किया करता था। इन विचारों ने सपनों का अनुभव करने की शक्ति पर अङ्कुश रखा। प्रत्येक प्रवृत्ति को पोषित करने के लिए आवश्यकीय साधन कैसे चाहिएं, और उन्हें कैसे प्राप्त किया जाय, इसका विचार करने से सपनों का विस्तार व्यावहारिक मर्यादा में आने लगा।

इन सबसे अधिक कठिन प्रश्न तो 'मां' के 'प्रियतम' को पहचान वापस ले आने का था। प्रोफेसर कापड़िया के शब्दों ने उसके हृदय पर आघात किया था। क्या 'मां' के 'प्रियतम' ही कापड़िया की विप्लवात्मक मानवता थे ? और ये 'प्रियतम' 'मां' को पुनः प्राप्त नहीं होते; क्योंकि जिस प्रकार कापड़िया ने कहा था, उस प्रकार भारतीय निर्धन, भावनाशील, स्वप्नद्रष्टा व महाद्वेषी होने में अशक्त था।

जनवरी का महीना आया, और नरम बने हुए रावबहादुर ने सुदर्शन कानून पढ़े, इस विचार से अम्बेलाल के यहां पैसे देकर रहने की अनुमति दे दी। जगमोहनलाल के प्रति रावबहादुर की भी विरोध-वृत्ति हुई थी, इससे उनकी बात का उन्होंने उल्लेख ही नहीं किया।

शीतकाल की एक प्रातः सुदर्शन एक 'ट्रंक' और बिस्तरा लेकर चरनीरोड स्टेशन पर उतरा और लेने आये हुए अम्बेलाल को मिला। दोनों मजदूर के सिर पर 'ट्रंक' रखवाकर कांदावाड़ी में गये और धनी का स्नेहपूर्ण स्वागत स्वीकार करते हुए सबेरा बीत गया।

सुदर्शन 'लॉ कालेज' में जाने लगा, और पूरा समय 'पीटीट लाइब्रेरी' में वह बिताने लगा। उसे मालूम पड़ा कि इतिहास व जीवन-चरित्रों में स्थित रहस्य को समझे बिना 'मां' के 'प्रियतम' को वापस लाने की समस्या सुलझाई नहीं जा सकती।

ज्ञान के संचय के साथ वह विचार भी अधिक करने लगा और समय मिलने पर अम्बेलाल, शिवलाल या मिस वकील के साथ बातचीत करता था। उन सब का विषय एक ही था—मातृभूमि। उन सब का उद्देश्य एक ही था—माता का उद्धार।

साथ ही, वह मंडल के सदस्यों के साथ भी गहरा सम्बन्ध रखता था। केरशास्प रुई बाज़ार में व्यग्र रहता था, पर सुदर्शन उसको जब-कभी मिलता था और थोड़े समय तक वे अलग-अलग प्रश्नों पर विचार-विनिमय करते थे। अम्बेलाल व मिस वकील चुपचाप 'बम' तैयार करने के प्रयोग किया करते थे, और वे प्रयोग बहुत थोड़े समय में सफल

होंगे, ऐसा विश्वास वे सुदर्शन को दिलाते थे। शिवलाल 'सीनियर बी० ए०' में था पर विभिन्न संस्थाओं व उनके संचालकों के सम्बन्ध में आकर प्रत्येक के रहस्य को समझने में प्रवृत्त रहता था।

मगन पण्ड्या 'बी० एस-सी०' के अन्तिम वर्ष के लिए बड़ौदा में परिश्रम कर रहा था, और उत्तीर्ण होने पर बड़ौदा-राज्य की ओर से विदेश भिजवाए जाने का प्रयत्न कर रहा था।

पाठक 'एम० ए०' हुआ था, और किसी प्रकार अच्छी नौकरी प्राप्त करने के लिए पत्र प्राप्त करने व उसके लिए लोगों को रिझाने में व्यस्त था।

धीरुशास्त्री 'बी० एस-सी०' में उत्तीर्ण हुआ था, और किसी प्रकार आर्यसमाज की प्रवृत्ति के अध्ययन का अवसर खोजता था।

सनत्कुमार जोशी ने 'इंटरमीडियेट' में उत्तीर्ण हो व्यायामशालाओं के लिए संचालक तैयार करने की योजना हाथ में ली।

गिरिजाशंकर शुक्ल 'सीनियर' में आया था, तो भी अध्ययन के प्रति तटस्थ रहकर सैनिक व्यवस्था के बारे में बड़े-बड़े विचार कर रहा था, ऐसा सूचित करता था।

नारणभाई पटेल ने 'बी० ए०' में गणित में प्रथम श्रेणी प्राप्त की, और 'एम० ए०' किया जाय या 'आई० सी० एस०' होने विलायत जाया जाय, इसका विचार करता था।

मोहनलाल पारेख विप्लववाद को प्रसारित करने का काम किया करता था।

: ३ :

पर सुदर्शन के मस्तिष्क में सबसे अधिक स्थान धनी बहन लेने लगी थी। अम्बेलाल के समान वह भी उसे घर के काम में सहायता दिया करता था, और दोपहर-भर फुरसत में रहने से उसे सिखाने व

उससे बात करने का मौका उसे (सुदर्शन को) मिलता था। धनी आतुर शिष्य थी, और छोटी अवस्था में भी दूसरे को रिझाने की कला उसे आती थी। वह मीठा हंसती थी और जब-कभी मज़ाक भी करती थी। धीरे-धीरे इन दोनों का संसर्ग बढ़ता गया, और दो घण्टे धनी के साथ पढ़ने या बात करने में बिताना दिन के कार्य-क्रम का एक आवश्यकीय भाग बन गया।

सुदर्शन धनी के विदेशी व स्वदेशी महात्माओं की जीवन-कथा कहता था; मातृभूमि के कारनामों के विभिन्न प्रसंगों का वर्णन करता था; अर्वाचीन देश-भक्तों का जीवन-चरित्र कहता था; उसे अपने बालपन के सपने कहता था, और कालेज में जिन सपनों का सेवन करता था, उनकी कुछ रूपरेखा दरशाता था। आंखें खोलकर ओंठ खुले रख, धनी सब सुनती थी, और सुदर्शन जब बोलते-बोलते रुकता था, तब 'फिर ?—' कहा करती थी। इस 'फिर' से सुदर्शन के कान में सुमधुर झनकार उत्पन्न होती थी।

स्त्री के सामने हृदय खोलना पुरुष को मोक्ष से भी अधिक आकर्षक मालूम होता है, सच्चिदानन्द से भी अधिक आह्लादक मालूम होता है; पर यदि स्त्री शिष्या हो, यदि वह पुरुष को पूजती हो, यदि त्रुटि देखना उसे पसंद न हो और उसमें स्वतन्त्र विचार-वृत्ति का कौशल न हो, यदि पुरुष द्वारा रचित शब्दजाल की मोहिनी के वशीभूत होने की निर्बलता उसमें हो, तो वह पुरुष को क्षण-भर के लिए प्रेरणा प्रदान करती है, उसके व्यक्तित्व को विकसित करती है, उसके संस्मरण को महाकाव्य का रूप प्रदान करती है, उसके भावी को भव्य बनाती है, उसे ऐसी प्रचण्ड महत्ता का भान कराती है कि उसकी मानवता स्वाभाविक रूप का तिरस्कार कर दैवी विस्तार को प्राप्त होती है; और क्षण-भर के लिए वह देवों की बराबरी का बना हो ऐसा मानने लगता है। क्या कोई कह सकता है कि यदि मेरी मोडलीन न होती तो ईसा मसीह सचमुच में पैगम्बर हो सकता था ?

ऐसा कुछ अनुभव सुदर्शन को हुआ। अपने विचार व सपनों को इस छोटी लड़की के सामने व्यक्त करने में उसे अपनी मानवता का मापदण्ड प्राप्त हुआ, और स्वतः पैगम्बर बनने के लिए उत्पन्न हुआ हो ऐसा कुछ विचार आने लगा, और साथ ही धनी का दैवी रूप भी उसे दृष्टिगोचर हुआ। वह केवल सामान्य लड़की नहीं थी, पर उसकी आंखों में अगाध गाम्भीर्य दिखाई दिया, और उसकी वाणी में अभूत-पूर्व प्रेरणा उसने सुनी। उसे इधर-उधर घूमती हुई, काम करती हुई, बातें करती हुई जब वह देखता तब उसके छोटे-से देह में फरिश्ते की तेजस्वी पारदर्शकता उसे दिखाई देती थी। वह अपने भविष्य का विचार करता तो उसमें उसे धनी की सुवर्ण रङ्ग की देहलता अद्भुत प्रकार से बनी हुई मालूम पड़ती थी। वह अपने लिए देशनायक की कल्पना करता तो धनी हाथ में हार लेकर उसका अभिनंदन करने के लिए तैयार दिखाई देती थी। वह अपने को गुप्त-मण्डल के नायक की कल्पना करता, तो धनी उसकी बाजू में खड़ी हुई मण्डल को प्रेरणा प्रदान करती हुई सदा दिखाई देती थी। वह अपने को कारागृह में पड़ा हुआ कल्पित करता, तो धनी बाहर व्रत कर उसकी प्रतीक्षा करती हुई उसे दिखाई देती थी। वह अपने को सूली पर चढ़ता हुआ कल्पित करता, तो दूर दिखाई न दे इस प्रकार खड़ी हुई धनी की दिव्य-चक्षुओं में से शक्ति प्राप्त कर अपने अन्तिम क्षणों को गौरवान्वित करता हुआ देखता था।

इन सब सपनों में पार्थिव तत्त्व नाममात्र को ही था। धनी उसकी स्वप्न-सृष्टि में देवी के समान विराजमान थी। वास्तविक जीवन में वह चाहे जैसी हो तो भी स्वप्न-जीवन में वह अपूर्व देवी बन सब पर राज्य चलाने लगी; और तो भी यह भावना-प्रधान विद्यार्थी सगे भाई की अपेक्षा अधिक निर्मल स्नेह व मान देकर उसके साथ व्यवहार करता था। उदित होता हुआ, निर्दोष, संस्कारयुक्त मानव-हृदय कल्पना की

दृष्टि से जिस प्रकार विकसित होते स्त्रीतत्व को देखता है, उस प्रकार सुदर्शन धनी को देखता था।

: ४ :

सप्ताह में दो बार 'लॉ क्लास' में वापस होते हुए फणसवाड़ी के कोने से सुदर्शन 'बंदेमातरम्' खरीदकर घर ले आता था, तब अम्बेलाल के छोटे कमरे में राष्ट्रीय महोत्सव होता था। अम्बेलाल या सुदर्शन ज़ोर से से पूरा अखबार पढ़ जाता था। यदि भोजन तैयार हो तो कभी-कभी भोजन करते समय दो निवालों के बीच भी अधीर देश-भक्त अखबार पढ़ते थे। उस समय अरविन्द बाबू की संजीवनी भाषा का वे प्रसाद चखते थे; बंगाल में आये हुए राष्ट्रीय पूर की छौलों से वे भीगते थे; राष्ट्रीय ऊर्मियां उनके हृदय में तूफ़ान मचाती थीं; देश-भक्ति से पागल बन वे चुप बैठे रहते, अन्यथा उसे दरशाने के मार्ग खोजते थे।

१९०७ की कथा एक महाकाव्य है। सितम्बर १९०६ में सुरेन्द्र बाबू ने अभिषेक करवाया था; विद्यार्थी वर्ग ने उसे राज्याभिषेक माना था; और नये वर्ष से मानो ब्रिटिश राज्य चला गया है, ऐसा विचार सुदर्शन व उसके मित्र करने लगे थे।

दिसम्बर १९०६ में दादाभाई नवरोजी ने स्वराज्य का मन्त्र देश को दिया; और अम्बेलाल देसाई ने अंग्रेज़ देश में बसते हैं, यह विचार एकदम दिमाग़ में से निकाल डालने का प्रयत्न किया।

दिन-प्रतिदिन बंगाल के स्वयंसेवकों की समिति के समाचार आते थे। नये युग का प्रारम्भ होता हुआ मालूम पड़ा। नवयुवक कटिबद्ध हो स्वातन्त्र्य-युद्ध में कूदने के लिए तैयार हुए थे।

कोमिला में हिन्दू-मुस्लिम झगड़े हुए; कुछ रक्तपात हुआ। हवा में समराङ्गण की ध्वनि गूंजने लगी, और सुदर्शन के नकसुरे युद्ध तत्परता से गर्व से फटने लगे। पञ्जाब से भी रणशृङ्ग की आवाज़

आने लगी। लाहौर में 'पञ्जाबी' समाचार-पत्र के सम्पादक को राज-द्रोह के लिए सज़ा हुई। कैद में जाते समय सम्पादक का लोगों ने अभिनन्दन किया। स्वातन्त्र्य के लिए सब-कुछ सहन करने की आदत-सी हो गई।

रावलपिंडी में सरदार अजीतसिंह व लाला लाजपतराय गरजे। पञ्जाब याने सिक्ख, सिक्ख याने सेना, सेना याने युद्ध, युद्ध याने विजय। अब क्या रहा?

लोगों ने सत्ता के विरोध में बलवा किया। देवालय का 'फर्निचर' तोड़ा गया। देश में अफवाह उड़ी कि १० मई याने सत्तावन के बलवे के वार्षिक दिवस वाले दिन अवश्य स्वातन्त्र्य-युद्ध होगा। बाल हृदय आशा से पागल बन गए।

छठी मई को विद्यार्थियों को राजकीय प्रवृत्ति में भाग लेने से रोका गया। 'सरकार का दिमाग़ ठिकाने नहीं है,' धनी ने कहा।

६वीं मई को लाला लाजपतराय व सरदार अजीतसिंह को देश-निकाला दिया गया। अब क्या बचा?

११वीं मई को बङ्गाल व पञ्जाब में सार्वजनिक-सभा का अधिकार नियन्त्रित किया गया। कोई हर्ज नहीं; सार्वजनिक नहीं तो गुप्त रीति से एकता के सूत्र में बंधा हुआ भारत क्या अलग रहने वाला है?

सितम्बर में विपिन चन्द्रपाल पकड़े गये। 'तीस करोड़ जहां जेल में जाने के लिए तैयार हों वहां कितनों को पकड़ेंगे!' मिस वकील ने सूत्र उच्चारित किया।

सितम्बर में महायोगी माने जाते अरविंद घोष पर चलाये गए मुक-दमे में वे बरी हो गए। स्वातन्त्र्य का सूर्य चमक रहा था, इसका कौन अस्वीकार कर सकता था?

केर हार्डी व नेविन्सन विलायत से भारत की अशान्ति का निरीक्षण करने के लिए आये। इङ्गलैंड भी कांपने लगा, इसको कौन अस्वीकार कर सकता है?

पहली नवम्बर को राजद्रोही-सभा रोकने का कायदा बना। डा० रासबिहारी घोष व गोखले ने भाषणों में बहुत क्रोध प्रदर्शित किया। क्या भाषण देने से स्वातन्त्र्य मिलने वाला है?

मोर्ली साहब पुस्तकों में स्वातन्त्र्य के हिमायती थे। वे प्रधान होते ही कहने लगे कि केनाडा का स्वराज्य भारत में शोभा नहीं देगा, केनाडा का 'फर कोट' दक्षिण में सुखप्रद कैसे हो सकता है?

विप्लववादी नरमदल का मज़ाक करने लगे, 'मोर्ली के कथन के पश्चात् अंग्रेजों के पास से क्या मिलने वाला है?'

इस प्रकार प्रतिदिन कुछ नया होता था, और वे सब 'बन्देमातरम्' के समान राष्ट्रीयता को प्रोत्साहित करने वाले संजीवन मंत्रों को उच्चारित करने लगे। कर्मयोग—अशान्ति—स्वदेशी—'बॉयकॉट'—विनाश—विप्लव—और उसके अन्त में स्वातन्त्र्य! कैसी भव्य परम्परा थी!

सुदर्शन व अम्बेलाल का पागलपन बढ़ने लगा। धर्नी की आंखों का तेज अधिकाधिक चमकने लगा। मिस वकील के ओंठ जोश में अधिक बन्द होने लगे।

: ५ :

अंतर के ऐसे तूफान में एक दिन सुदर्शन का मन प्रोफेसर कापड़िया से मिलने का हुआ। उस दिन जगमोहनलाल के यहां उनके साथ थोड़ी देर बातचीत की, तब से सुदर्शन उनसे मिलना चाहता था। तब ही उसे मालूम पड़ा था कि पण्डित के समान लगते कापड़िया की बातों में गहरा विचार और अगाध पठन समाये थे, और कहीं उसकी तैयारी में कोई कमी न रह जाय इस भय से उसने अपने ज्ञान का उपयोग करने का निश्चय किया।

एक दिन शाम को उसने प्रोफेसर का दरवाज़ा खटखटाया, और हाथी के समान मस्तक वाले, दुबले-पतले शरीर व छोटी धोती से

सुशोभित प्रोफेसर कापड़िया ने दरवाज़ा खोला।

'साहब, आ सकता हूँ ?' नम्रता से सुदर्शन ने पूछा।

'क्या काम है ?' उसे अच्छी तरह न पहचानने के कारण प्रोफेसर ने बीच में खड़े रहकर पूछा।

'क्या आपने मुझे नहीं पहचाना ? माननीय जगमोहनलाल के यहां गत नवम्बर मास में हम लोग मिले थे।'

'हां—हां—' प्रोफेसर ने सिर खुजाते हुए कहा।

'यदि आपको समय हो तो मुझे कुछ पूछना है।'

'अन्दर आओ, फिर तो तुम मिले ही नहीं।'

'जगमोहनलाल बड़े आदमी हैं। उनके यहां मेरे-जैसे को स्थान नहीं है।'

'तुम तो विप्लववादी थे न ? तुम्हें शोभा दे, ऐसा तुम्हारा उत्तर है,' कह प्रोफेसर ने उसे अन्दर बुलाया और दरवाज़ा बन्द किया। सुदर्शन क्षण-भर के लिए पुस्तकों से भरे हुए कमरे को देखकर दंग रह गया। इतना अधिक कोई पढ़ सकता है, इसका उसे विचार नहीं था। उसने मानपूर्वक प्रोफेसर की ओर देखा।

'आपका समय तो नहीं लेता ?' सुदर्शन ने क्षोभ से पूछा।

'क्या बात करने तुम आये हो, उस पर इसका आधार है,' कह एक कुरसी खाली कर प्रोफेसर ने उसे बैठने के लिए सूचित किया।

सुदर्शन को जरा क्षोभ हुआ। इस छोटी-सी निर्बल मूर्ति के कुरूप मस्तक पर शोभायमान बुद्धि के तेज व सरस्वती के मन्दिर के समान उस कमरे ने उसे थोड़ी देर के लिए घबरा दिया। पर उसकी 'मां' की आज्ञा उसे याद आई। उसके प्रतापी शब्दों के स्मरण में प्रकटित प्रेरणा का उत्साह उसे प्राप्त हुआ।

'प्रोफेसर साहब, आपने उस दिन कहा था कि भारतीय विप्लववादी नहीं हो सकते। आपके इस सिद्धान्त के बारे में पूछने आया हूँ।'

'हां, हां, तुम्हारे सिद्धान्तों में गलती हुई, क्यों ?' कह कापड़िया ने सूंघनी सूंघी।

'आपका सिद्धान्त मुझे झूठा मालूम होता है,' सुदर्शन ने कहा।

'मालूम होता है, और पांच वर्ष तक मालूम होगा, समझे ?'

'१७८९ में फ्रान्स में कोई आपके समान होता तो ऐसा ही कहता, क्यों नहीं ?'

'मुझे विश्वास नहीं है, my boy ! १७८९ के पहले फ्रान्स राष्ट्र था। उसके शासक अन्धे थे; वहां की प्रजा में जोश था, वह धार्मिक नहीं थी, व निर्बल नहीं थी। उसमें व्यवस्था-शक्ति थी, तो भी वह भूखों मरती थी। क्या हमारे यहां इसमें का कुछ दिखाई देता है ? समझे ?'

कापड़िया ज्यों-ज्यों विस्तारपूर्वक कहने लगे, त्यों-त्यों क्षण-भर के लिए सुदर्शन में अश्रद्धा का संचार हुआ। घबराहट में उसके रोएँ खड़े होते मालूम पड़े।

'क्या आपको नहीं दीखता ?' उसने मानपूर्वक प्रश्न पूछा, 'कर्ज़न साहब क्या आँखवाले दिखाई देते हैं ? क्या बंगाल निर्जीव दिखाई देता है ? क्या हमारे यहां आपको क्षुधा-पीड़ा नहीं दिखाई देती ?'

'मूर्ख ! अन्धे हो, पर ब्रिटिश प्रजा अन्धी नहीं है। क्या अंग्रेज़ी प्रजा का इतिहास पढ़ा है ? उस प्रजा की मार्ग निकालने की तरकीब का पता है ?'

'अमेरिका को खोया तब वह तरकीब कहां गई थी ?'

'तरकीब तो खोजी गई थी, पर उसे कार्यरूप देरी से दिया गया। क्या बर्क व चेथम के भाषण पढ़े हैं ? तरकीब तो तैयार ही थी, पर राजा खराब था। अमेरिका खोने के पश्चात् अंग्रेज़ों ने तरकीब कर राजा को निर्जीव कर दिया। अब वह गलती न होगी, और यदि वे गलती करें तो उसका लाभ लेना हमें कहां आता है ?' प्रोफेसर ने सूँघनी सूँघी।

'आप पूर्णतया निराशावादी हैं।'

'नहीं, मैं तो आपकी व उनकी तुलना तटस्थता से करता हूं।'

'उसका क्या प्रयोजन है? मैं तो आपके पास रास्ता खोजने आया हूं। आप कहते हैं कि विप्लववाद हमारे यहां शक्य नहीं है, तब शक्य कैसे हो?'

'हां, हां,' कापड़िया हँसे, 'मैं राष्ट्ररोग का डाक्टर नहीं हूँ।'

'तो भी आपके ज्ञान का लाभ मुझे लेना है।'

'विप्लववाद उत्क्रांति-क्रम को कम करने की योजना है। जो शक्ति सौ वर्ष में जान पड़े उसे पांच वर्ष में दरशाने का नाम विप्लववाद है। समझे? सामान्य वीरता को बीस गुना तेज करना चाहिए। सामान्य भावनाओं की परिणामकारकता बीस गुनी बढ़नी चाहिए। यह पहली पैड़ी है। यह तुम लड़कों से नहीं होगा। प्रतिवर्ष जितने विद्यार्थी 'बी० ए०' पास होते हैं, उनमें से दो प्रतशित भी कालेज की भावनाएं छः महीने तक नहीं रख सकते। वे सब निर्जीव बन संसार के साथ समाधान कर लेते हैं।'

सुदर्शन मन में हंसा। इस पुस्तकों के पीछे पागल प्रोफेसर को कहां ख्याल था कि अम्बेलाल देसाई और उसके समान भावना-प्रधान युवक अब पैदा होते थे। वे प्राण दे देंगे पर भावना नहीं छोड़ेंगे।

'प्रोफेसर साहब, क्षमा करें। आप हम पर न्याय नहीं करते। अब हम ऐसे नहीं हैं।'

'My boy! जितने लड़के मैंने पढ़ाये हैं, उतने तुमने देखे नहीं हैं। तुम पास हो जाओ, फिर बताऊँगा। पत्नी होगी तो खाने को मांगेगी; माता होगी तो पैसे कमाने के लिए भिजवायगी; पिता होंगे तो सहायता मांगेंगे, और किसी दफ्तर में ५०) मासिक वेतन लेकर अपनी भावनाओं को बेच दोगे। हा, हा, हा,।'

सुदर्शन को यह हास्य कोड़े की फटकार के समान लगा। ज्ञान के आडम्बर में ये प्रोफेसर अधम-से-अधम निराशावाद का सेवन करते

थे। उनकी बात में केवल तिरस्कार ही नहीं पर देश-द्रोह के बीज भी जान पड़े। क्या यह व्यक्ति युवकों को अश्रद्धावान् बनाने का धंधा लेकर बैठा था? वह स्वतः या सरकार के बहकाने से सबको निरुत्साही करता था।

निर्जीव दिखाई देने वाले प्रोफेसर मानो नाग हों, इस प्रकार सुदर्शन उनकी ओर देखने लगा। सुदर्शन को 'मां' के दर्शनों की याद आई, भीमनाथ पर एकत्रित हुए विप्लववादी याद आए, धनी के समान उछलती हुई वीरांगना दृष्टि के सामने आई। वह ओंठ चबाकर बोलने लगा, 'प्रोफेसर साहब, आपका ज्ञान-योग निराशा का अन्धकार है। आपको सच्ची दुनिया दिखाई नहीं देती, या आप देखना नहीं चाहते। आप जिन्हें व्यर्थ मानते हैं, उन 'कालेजियनों' में भावनाशीलता बढ़ रही है। जीवन उनके मन में खिलवाड़ हो रहा है। वे सब भारत-माता की भक्ति में तल्लीन हो गए हैं। आपका ज्ञान गणना पर आश्रित है—उनका ज्ञान प्रेरणा का है, और स्वतन्त्र व स्वाधीन होने के लिए तत्पर बनी हुई परम प्रबल 'माता' उन्हें प्रेरित कर रही है।'

शान्ति से कापड़िया हंसने लगे—'यह भक्ति-मार्ग, ज्ञान-मार्ग नहीं है।'

'प्रोफेसर साहब, यह तो कर्म-मार्ग है। कर्मयोग इतिहास में नहीं आता है।'

'Confusion of ideas (विचारों का भ्रम) My boy!' सूँघनी सूँघकर हाथ झटकारते हुए प्रोफेसर बोले, 'कर्मयोग से तुम मर सकते हो। सफल विप्लव कर सकते हो या नहीं, यह बात उसमें नहीं आती।'

'साहब, कर्म की सिद्धि का विचार या विचार की स्पष्टता सोचा करें तो कर्मयोग कैसे आचरित हो सकता है?'

कापड़िया हंसे। 'मूर्ख! जरा सुनो। तुम इस समय बङ्गाली

विप्लववाद के पीछे पागल हुए हो। या तो पांच वर्ष में सब भूल जाओगे या फांसी पर चढ़ोगे; पर यहां आये हो तो एक बात सुनते जाओ। सिद्धान्त मानो, चेतावनी मानो—जो मानो सो मानो। समझे?' यदि कर्मयोग, राष्ट्रवाद या विप्लववाद जो कुछ मानते हो, उसे आचरित करना हो या उसका प्रचार करने का विचार हो तो उसे धार्मिक रूप न देना।'

सुदर्शन हंसा। 'ये सब वाद धार्मिक ही हैं।'

'इस देश में उसका परिणाम यह होगा कि तुम लोग जहां थे वहीं रहोगे। गीता से यदि कर्मयोग लोगे तो पुनः कर्मकाण्ड करने लगोगे; यदि वेदान्त से लोगे तो "अहं ब्रह्मास्मि" गुनगुनाने में ही विराम पाओगे; योगसूत्र से लोगे तो अहिंसावादी बन मरी हुई जूं की स्मृति में भी मंदिर बनवाओगे। यदि राष्ट्रवाद स्वीकार करो तो वह शुद्ध व अमिश्रित रहे।'

'हमारे लिए राष्ट्रवाद ही धर्म है।'

'पर तुम्हारा धर्म ही राष्ट्रवाद है, ऐसा पुराने ब्राह्मणों का पुराना सिद्धान्त पुनः प्रकटित न करना My boy! अभी तो तुम्हारा भाग्य तुम्हें जेल में ले जाने बैठा है।'

'वह धन्य दिवस कब आयगा?'

'क्या माता-पिता को पूछा है?'

'विप्लववादियों के क्या माता-पिता भी रहते हैं?' हंसकर सुदर्शन ने कहा।

'पर क्या तुम माननीय जगमोहनलाल की सुलोचना से विवाह करने वाले हो?'

'नहीं, उससे विवाह करके मैं क्या करूंगा?'

'क्या विवाह न करेगा?' प्रोफेसर ने चकित होकर पूछा। प्रोफेसर की आवाज़ में आश्चर्य के अतिरिक्त कुछ अलग प्रकार की ध्वनि थी। सुदर्शन उसे पहचान न सका।

'जी नहीं, साहब !'

'अच्छा, नमस्ते, फिर आना' प्रोफेसर ने दरवाजा खोलते हुए कहा। सुदर्शन ने इजाज़त ली।

प्रोफेसर ने दरवाजा बंद किया, और आकर माननीय जगमोहन-लाल का दीवार पर लटकता सपरिवार चित्र देखा। चित्र में आठ-नौ वर्ष की सुलोचना पिता के पास खड़ी थी। फिर प्रोफेसर ने कुछ अकल्प्य किया। सब भूलकर वे सुलोचना के सामने देखने लगे। थोड़ी देर में वे बड़बड़ाने लगे, 'अच्छा है कि इस पागल के साथ विवाह नहीं करने वाली है।' पन्द्रह मिनट बाद वहां से हटकर प्रोफेसर एक मैले कांच में देखने लगे, और वे अपना कुरूप अंग, गढ़े में गई हुई आंखें, हाथी के समान मस्तक, और फीके लटकते हुए ओंठ देखते रहे। उन्होंने दो मिनट बाद निश्वास लिया। रात को वह पढ़ नहीं सके।

: ६ :

सुदर्शन कापड़िया के घर से निकला तब उसकी घबराहट का पार नहीं था। जो सिद्धान्त उसे निर्विवाद मालूम पड़ते थे, उनका प्रोफेसर ने मजाक किया था। जो विप्लववाद उसे चहुँओर फैला हुआ दिखाई पड़ता था, उसकी शक्यता के बारे में कापड़िया को शक था। उसकी भावना, उसके सिद्धान्त, उसका कर्मयोग—क्या ये सब सपने ही हैं ?

प्रोफेसर द्वारा बताये हुए दृष्टि-बिन्दुओं से उसके हृदय में अश्रद्धा का सञ्चार हुआ। उस अश्रद्धा से उसका अन्तर खलबला उठा। क्या वह झूठा था ? क्या उसका कार्यक्रम निष्फल होने के लिए बनाया गया था ? क्या 'मां' के भाग्य में हमेशा के लिए पराए का दासत्व ही था ? क्या पराधीन भारत स्वाधीन बनने के लिए सरजा ही नहीं गया था ?

उसे आसपास बहनेवाली मानव-सरिता का भान न रहा। दौड़ती हुई गाड़ियां व 'ट्रॉम' नहीं-सी हो गईं। उसे मालूम पड़ा कि शङ्काओं

के सागर में उसका दम घुटा जा रहा था, वह डूबने लगा था। अश्रद्धा उसको लिपट गई, उसके प्राण लेने को तत्पर हुई। बम्बई, भारत, पृथ्वी, ब्रह्माण्ड उसे डोलते दिखाई दिए।

भावनाहीन को अश्रद्धा के समान श्रेयस्कर वस्तु नहीं है। भावनाशील को अश्रद्धा के समान दुःख नहीं है। उसके लिए तो भावना ही जीवन है, उसमें स्थापित श्रद्धा ही उसे जीवन के साथ संकलित करती है। इस श्रद्धा के चले जाने पर वह अन्धा बन जाता है, फिर उसे मृत्यु के बिना कोई चारा नहीं रहता।

ईसामसीह ने मृत्यु का सामना किया, पर पिता के अविश्वास ने उन्हें दुःखित किया। गांधीजी भी श्रद्धा का स्पर्श करने पर ही कठिन तपस्या से प्राण त्यागने को तैयार होते हैं।

अश्रद्धा के सञ्चार से घबराये हुए सुदर्शन का मस्तिष्क ठिकाने नहीं रहा। उसके शरीर पर पसीने की धार बहने लगी। उसकी आंखें देखती थीं, पर उसे कुछ दिखाई नहीं देता था। परिचित रास्ते से उसके पैर उसे कांदावाड़ी ले गए। वह मकान का जीना चढ़ा। उसके घबराये हुए अन्तर में से निराशा की हाय उसके प्राणों को साथ लेकर बाहर निकलने की तैयारी करती हो, ऐसा उसे मालूम होने लगा।

उसके पैर अम्बेलाल की कोठरी की देहली पर रुके, और टेबल पर बैठ सूरत से प्रकाशित 'शक्ति' पढ़ती हुई धनो को उसने देखा। उसका सिर सुंदरता से झुका हुआ था। उसके मुख पर दैवी तेज के समान तेज देदीप्यमान होता था।

'धनी बहन! क्या करती है?'

'शक्ति पढ़ती हूं।'

सुदर्शन थोड़ी देर खड़ा रहा। फिर मानो उसके हृदय के तार टूटते हों इस प्रकार निराशापूर्ण प्रश्न उसने पूछा, 'धनी बहन! क्या 'मां' स्वतंत्र होंगी?'

धनी ने सिर ऊंचा किया और सुदर्शन को घबराया हुआ देखा।

स्त्री-हृदय के लिए स्वाभाविक समझ से उसने उसकी ओर सहानुभूति से देखा व उठकर पास आई।

'सदुभाई ! क्या पूछते हो ? होंगी क्या ? हम लोग 'मां' को स्वतंत्र करेंगे।'

: ७ :

तिलक महाराज स्पष्ट रूप से एक ही बात में विश्वास रखते थे— राजनैतिक कौशल। निःशस्त्र भारतीयों के स्वातन्त्र्य-युद्ध में प्रत्येक प्रकार से, प्रत्येक रीति से, प्रत्येक बात में अंग्रेज़ सरकार को सताना, इसीमें उनकी नीति व उनका राजनैतिक कौशल समाया था। इससे बढ़कर उनके लिए एक भी सिद्धान्त नहीं था।

१९०७ में कांग्रेस का अधिवेशन नागपुर में होनेवाला था। नागपुर पूना का उपनगर उस समय था व कितने ही अंशों में आज है। खापर्डे तिलक के सेनानी थे।

बङ्गाल का राष्ट्रवाद केवल भावनामय था; पूना का राष्ट्रवाद संकुचित व व्यावहारिक था। राष्ट्रवाद को बङ्गीय भावना का रूप मिला था; लाल, पाल व बाल मानो एक ही भावना की त्रिमूर्ति हों, इस प्रकार पूजा चालू हुई; और कांग्रेस को इस त्रिमूर्ति की पूजक बनाने के प्रयत्न चालू हुए; और पूना की आज्ञा नागपुर ने सिर पर रखना प्रारम्भ किया।

कलकत्ते में पाल व सुरेन्द्रनाथ के बीच बड़ा विरोध हुआ था। 'नरम दल' को तोड़ डालने के लिए पाल व अरविंद घोष प्रयत्न कर रहे थे। विरोध में वैर हुआ, विष प्रकट हुआ, और 'बन्देमातरम्' अखबार सप्ताह में दो बार इस जोश की अग्नि देश में फैलाने लगा।

माननीय जगमोहनलाल यह सब चिंताग्रस्त चित्त से देख रहे थे। उन्हें लगता था कि राष्ट्रवाद प्रबल होता जाता था। लोग जगह-जगह

पर 'Nation'—राष्ट्र, 'liberty'—स्वातन्त्र्य व 'Independence' —स्वाधीनता की चर्चा किया करते थे। अरविंद बाबू की भयानक कलम होशियारी, व्यवहार-कौशल, अंग्रेज़ों के साथ साहचर्य, व्यवस्थित राजकीय प्रगति आदि पुराने आदर्शों का विनाश कर रही थी, और 'बॉयकॉट', लोकतंत्र, त्याग व विप्लव की प्रेरणा प्रसारित करती थी। उन्हें तिलक के प्रति अरुचि थी; विक्टोरिया-युग की नीति से अस्पष्ट राजनीति को वे धिक्कारते थे। जिस प्रकार के अज्ञान व कम अक्ल के मनुष्यों की सहायता से नया सम्प्रदाय सभाओं को जीतता था, उसके प्रति वे तिरस्कार करते थे। उन्हें चहुँओर प्रलयकाल प्रवर्तित होता मालूम पड़ा।

पहले तो विलायत भारत के राजकीय आदर्शों को समझे, ऐसी एक प्रवृत्ति की योजना उन्होंने बनाई। पर इस समय वह योजना कार्यरूप में परिणत हो सकेगी ऐसा नहीं मालूम पड़ा। देश में अंग्रेजों के प्रति तिरस्कार बढ़ता था; विलायत में भारतीयों के प्रति अविश्वास बढ़ता था; फिर क्या होगा? पर इस समय तो बड़ा भय 'गरम दल' का था। अंग्रेजों को मात देने के पहले इस पक्ष का विनाश करने की आवश्यकता उन्हें प्रतीत हुई।

'राजाबाई टॉवर' के सामने की गुफा में भारतीय पंच के 'Sir Leo'—'सर सिंह'—के तत्वावधान में 'नरम दल' की बैठक जब-कभी होती थी। इस बैठक में माननीय जगमोहनलाल ने पहले डरपोक की पदवी प्राप्त की थी, पर नागपुर व कलकत्ता के वातावरण से सर फीरोज़शाह भी चिन्तातुर होने लगे, और उनकी (माननीय जगमोहनलाल की) सलाह व दूरदर्शिता का आदर किया जाने लगा।

किसी प्रकार भी कांग्रेस को 'गरम दल' के हाथ में जाने से रोकना चाहिए, यह सर फीरोज़शाह की आन हो गई। कांग्रेस जल्दी से निकट आने लगी। सर फीरोज़शाह 'गरम दल' की शक्ति को अपने मन के विरुद्ध भी मानने लगे; पर उन्हें अपने में और अपनी सर्वाधिकारिता में

सम्पूर्ण विश्वास था। फ्रान्स का चौदहवां लुई यों मानता था कि "मैं राज्य हूँ," सर फीरोज़शाह यों मानते थे कि "मैं राष्ट्र हूं।" इस 'राष्ट्र' ने फरमान निकाला कि कांग्रेस अधिवेशन नागपुर के बदले सूरत में—बम्बई के उपनगर में—होना चाहिए; गोखले को जाकर सूरत में राजनैतिक जागृति लानी चाहिए; और त्रिभुवनदास मालवीय को सॉलिसिटर' का पद त्याग स्वागतकारिणी का सभापति बनना चाहिए। इस फरमान को 'आल-इण्डिया कांग्रेस कमेटी' ने स्वीकार किया; बम्बई व सूरत के प्रतिष्ठित वर्ग ने उसे सिर पर चढ़ाया। सूरत में दौड़-धूप मच गई। फीरोज़शाह ने डा० रासबिहारी घोष जैसे अप्रतिम वकील, विचारक, व नेता को सभापति के पद का निमंत्रण दिया।

इन फरमानों ने पूना, नागपुर व कलकत्ता में कोलाहल मचा दिया। गत कांग्रेस-अधिवेशन में निश्चित किये हुए स्थान को केवल स्थानीय मत से डरकर बदल देना निश्शृङ्खलता की पराकाष्ठा मालूम पड़ी। १७८९ में फ्रान्स के राजा ने 'लोकसभा' को मिलने नहीं दिया था और उसका जो प्रभाव हुआ था, वैसा ही कुछ प्रभाव इन फरमानों से हुआ। गुफा में सिंह व उसकी गुफा के सदस्य आनन्द मनाते थे; बाहर तीव्र विरोध का वातावरण बढ़ने लगा। जगमोहनलाल व उसके मित्र इस फरमान पर न्यौछावर हो गए। अरविंद बाबू की कलम ने फीरोज़शाही फरमानों का तिरस्कार किया, उनका मज़ाक किया, नाटक द्वारा उनका उपहास किया, कहावतों से उनकी अवज्ञा की। 'Pherozshahi at Surat' (सूरत में फीरोजशाही), Every dog is a lion in his street' (प्रत्येक कुत्ता अपनी गली में शेर रहता है), 'My will is law' (मेरी इच्छा ही कायदा है), ऐसे अनेक वाक्य भव्य-गर्जना से साधारण मज़ाक के रूप में प्रतिदिन प्रकाशित होते थे; और उद्दीयमान भारत उन्हें रट-रटकर सार्वजनिक जीवन में नादिरशाही के विरुद्ध द्वेष का सञ्चार करता था। 'गरम दल' ने मांडले से लौटकर

आये हुए लाला लाजपतराय को सभापति के स्थान पर बैठाने का निश्चय दरशाया।

सर फ़ीरोज़शाह को आनन्दप्रिय सूरत की राजकीय निर्जीवता में विश्वास था, जिस प्रकार सर्वाधिकारियों को अपने अनुयायियों में रहता है। किन्तु जुलियस सीज़र के समान वे भी भूल गए कि इनके कट्टर दुश्मन तो ब्रूटस के समान इन अनुयायियों में से ही निकलेंगे।

सूरत में व विशेषरूप से गोपीपुरा में मुहल्ले-मुहल्ले, घर-घर, दो-दो पक्ष बन गए। 'गरम' व 'नरम' दल ने स्थान-स्थान पर समराङ्गण रचे। 'नरम दल' के पिता के 'गरम दल' के पुत्र ने पिता का घर छोड़ा। 'गरम' व 'नरम' दल के भाइयों ने भोजन करते-करते थाली व कटोरी से मार-पीट की। ओटे पर बैठ गप्पें हांकने वाली सखियों ने एक-दूसरे से बोलना बंद किया। 'गरम दल' के पिता की पुत्री को 'नरम दल' के पति ने नैहर जाने से रोक दिया। 'शक्ति' पत्र ने 'नरम दल' वालों को हुक्म दिया—'सुधरो, नहीं तो मरो।'

स्वाभाविक रीति से सुदर्शन व उसके मित्रों का फीरोज़शाह के प्रति द्वेष बढ़ गया। 'राजाबाई टॉवर' के सामने से जाते समय सुदर्शन व अम्बेलाल की मुट्ठियां काल्पनिक कटार से अत्याचारी को शासित करने के लिए लालायित होती थीं। शिवलाल श्राफ दिन-रात सर फीरोज़शाह के जीवन की छोटी-से-छोटी बात का मज़ाक उड़ाने लगा। धनी पड़ौसी के कमरे में जाकर उसे पूछे बिना एक 'कलेण्डर' पर छपा हुआ फीरोज़-शाह का चित्र फाड़ आई। इस बात के मालूम पड़ने पर प्रत्येक स्थान पर धनी की प्रशंसा हुई, व जिसका 'कलेण्डर' फटा था, उसके यहां 'लाल, पाल व बाल' के चित्र से सुशोभित दस 'कलेण्डर' भेंट किये गए। सुदर्शन की छाती हर्ष से फूल उठी। उसकी 'जान आफ आर्क' कैसी थी!

इस तूफ़ानी वातावरण में सुदर्शन के मण्डल की कोई भी योजना तैयार न कर सका, और यह निश्चय हुआ कि ३१ वीं जनवरी १६०८

के दिन मिलकर सब योजनाएं सर्वानुमति से निश्चित की जायं। सम्पूर्ण देश एक श्वास से सूरत की परीक्षा कर रहा था। वहां देश की आन्तरिक व्यवस्था में से नादिरशाही दूर की जाने वाली थी; फिर अँग्रेज़ों की नादिरशाही के बारे में विचार करने की किसको फुरसत थी।

नानपरा में केरशास्प का एक बड़ा घर था, वहीं सबको उतरने का निमन्त्रण मिला था। 'लाइट ब्रिगेड' आक्रमण करने के लिए तैयार होती हो, इस प्रकार सुदर्शन व उसके मित्र सूरत जाने के लिए तैयार हुए। सुदर्शन को दुःख इतना ही था कि धनी साथ में आ नहीं सकती थी।

ग्यारह

सूरत कांग्रेस की तैयारी

: १ :

१६०७ की दिसम्बर के २०वीं तारीख की सन्ध्या को सूरत के स्टेशन पर सुदर्शन, अम्बेलाल देसाई, मगन पण्ड्या व शिवलाल श्राफ उतरे, और किराये से गाड़ी कर नानपरा में गए।

सुदर्शन का हृदय 'कांग्रेस' के कारण उत्साही था, पर उसका उत्साह जितना चाहिए उतना प्रबल नहीं था। धनी बम्बई में रही थी। पाठक ने ठंडे दिल से लिखा था कि वह नौकरी की खोज में रुका था, इससे सूरत आ नहीं सकता था। जब देश में राजनैतिक उथल-पुथल का समय था, तब उसका प्रिय मित्र नौकरी खोजे!

धीरु शास्त्री गुरुकुल कांगड़ी देखने गये थे। वे वापस नहीं आये थे। गिरिजाशंकर शुक्ल को 'पारेवड़ी' रियासत के ठाकुर साहब ने बुलाया था, इससे वह आ नहीं सकता था। सनत्कुमार जोशी एक सप्ताह पूर्व अपने अखाड़े के साथ बड़ौदा से पावागढ़ चला गया था, उसका अभी तक पता नहीं था। इन सबकी अनुपस्थिति से सुदर्शन के हृदय पर आघात पहुंचा। कांग्रेस की प्रवृत्ति उसके मन में पानी-पत अवश्य थी, पर उसका छोटा मण्डल उसके मन में प्राण-समान था। सबके साथ पत्र-व्यवहार रख सबके बीच एकता लाने के उसके प्रयत्न जितने चाहिए उतने सफल हुए नहीं मालूम पड़ते थे, और कांग्रेस के ऐसे अधिवेशन के समय सब एकत्रित न हों, यह उसे खला करता था।

इसके अतिरिक्त अपनी योजना तैयार करने के लिए उसने गहरा अध्ययन व कड़ा परिश्रम किया था, पर दूसरे इस सम्बन्ध में क्या करते हैं, यह स्पष्टतया उसकी समझ में नहीं आता था। ३१ जनवरी निकट आती थी, और 'मां' का भाग्योदय और आगे बढ़ा दिया जाय, यह विचार तक वह सह नहीं सकता था। यह अधीरता भी उसके उत्साह को प्रफुल्लित होने नहीं देती थी।

इन चार मित्रों को कुछ ऐसा ख्याल था कि उन्हें नानपुरा पहुँचने पर एकदम, पर न जाने किस प्रकार, केरशास्प का घर मिल जायगा, और ओटे पर खड़े हुए आतुर केरशास्प से कूदकर गले मिलेंगे। रात के आठ बजे अनजान अन्धकारपूर्ण गलियों के व्यूह के समान नानपरा में केरशास्प का घर खोजना शुरू करने पर इन देश-भक्तों की देश-भक्ति व विजयोत्साह कम होने लगा। वे थक गए थे, भूखे थे, अनजान गांव में थे। नानपरा में लगभग हज़ार घर पारसियों के, सत्तर केरशास्प व लगभग सोलह केरशास्प जी पिरोजशाह के थे, ऐसा उन्हें मालूम पड़ा। नौ बजे बहुत रात हो गई ऐसा मानने वाले व काट-कसर करने वाले पारसी कब से खिड़की-दरवाज़े बन्द कर सो गए थे। किराये की गाड़ी वाला गली-गली भटकने से थककर ज़ोर-ज़ोर से सूरती ढंग पर खूब 'स्वागत' कर रहा था।

रात के पौने दस बजे देश-भक्तों को सुलभ तप करते हुए इन मित्रों की भग्न आशाओं की पूर्ति का कारण मिला। मुहल्ले के अन्त में एक बड़ा मकान केरशास्प का है ऐसा पता लगा; और पारसी के घर के ओटे पर हुक्का पीते हुए 'पाटीदारों' को देख यही राष्ट्र-सेवकों के उतरने का स्थान होगा, ऐसा कुछ भास हुआ, मगन पण्ड्या सभ्यता को ताक पर रख किराये की गाड़ी की खिड़की में से ज़ोर से चिल्लाया, 'केरशास्प पिरोजशाह !'

'कौन है ?' ओटे पर बैठे हुए एक युवक ने मुंह में से हुक्के की नली निकालते हुए कहा।

'क्या केरशास्प जी सेठ हैं ?'

'बम्बई गये हैं।'

शिवलाल श्रॉफ की सौतेली माता को गोपीपुरा में जगाने की किसी की हिम्मत नहीं थी, इससे यदि केरशास्प का घर न मिले तो अनजान सूरत में रात कहां बिताई जाय, इसका निर्णय बहुत देर से कर न सके थे। इस समय चारों ने मानो बोले बिना निर्णय किया, और गाड़ी से उतरे।

मगन पण्ड्या हिम्मत से ओटे पर चढ़ा। 'केरशास्प सेठ कब आयेंगे ?'

'कौन जाने ?' देहली के पास छोटे बिस्तरे में लेटे हुए एक सज्जन ने कहा। 'नारणभाई !' कह उसने आवाज़ दी। अम्बेलाल ने ज्यों-त्यों व चाहे जितनी गालियां खाकर गाड़ी का किराया चुकाया, और चारों ने हाथ से ही ट्रंक ओटे पर लाकर रखा, और घबराते हुए अंदर घुसे। क्या यह केरशास्प का घर है ?—किस केरशास्प का ?—इसमें रहने की जगह है या नहीं। ये सब प्रश्न उनके हृदयों में कूद रहे थे।

मगन पण्ड्या शुद्ध 'चरोतरी' थे; प्रत्येक कमरे में बैठे हुए, पड़े हुए, सोये हुए पुरुषों की बातों में बीड़ी के धुंए में और हुक्के की गड़गुड़ाहट में उसे अपने पैतृक गांव के प्रोत्साहक वातावरण की प्रेरणा हुई। प्रत्येक को 'क्यों भाई साहब, कैसे हैं ?' 'कब से आये ?' कहकर वह प्रत्येक कमरे में, हाथ में ट्रंक व बगल में बिस्तरा लेकर घूमने लगा। और उसके तीनों मित्र मानो किसी महाप्रतापी वीर नायक के पीछे मरणोत्सुक वीर सैनिक चलते हों, इस प्रकार हाथ में पेटी व बगल में बिस्तरा लेकर चलने लगे।

प्रत्येक खण्ड में, प्रत्येक मंजले पर देश-भक्त नर्मदा से साबरमती तक बारह-बारह मील के अन्तर की बोलियां बोलते थे, और चाहे-जैसे व चाहे-जहां लेटकर कांग्रेस की गप्पें हांकते थे; और किस अधिकार से

कौन वहां था, इसका निश्चित पता किसीको हो ऐसा नहीं मालूम पड़ता था। बीच की दालान में भोजन हो रहा था, और तीन भोजन बनाने वाले पत्तल-पर-पत्तल रख कांग्रेसवालों को दाल-चावल परोस रहे थे। यह घर उन्हींके केरशास्प ऐसा मालूम पड़ने लगा। सुदर्शन व उसके मित्र दूसरे मंजले पर गये, वहां बरामदेवाली अच्छी कोठरी में लगभग तीन व्यक्ति बैठे थे और लगभग आठ का सामान पड़ा था। यह सामान अभी छेड़ा नहीं गया था, इससे उसके मालिक अन्तिम गाड़ी से आये थे, और भोजन करने गये थे, ऐसा मालूम पड़ता था।

बिना संकोच से मगन पण्ड्या ने पैर से एक व्यक्ति का सामान हटाकर, अपनी पेटी व बिस्तरा रख दिया, और लज्जाशील सदुभाई कदाचित् हिचकिचाए, इस विचार से दूसरे का सामान हटाकर उसने कहा, 'सदुभाई ! रखो यहां। यह कमरा अपना ही है।'

सुदर्शन ने वैसा किया और अम्बेलाल, देसाई व शिवलाल श्राफ भी बिना पूछे जगह कर बिस्तरा लगा कपड़े निकालने लगे।

हटाये हुए सामान के मालिक धोती से मुंह पोंछते हुए आ पहुंचे, और इन चारों को मालिकी अधिकार का उपभोग लेते देख अपना सामान लेकर, केरशास्प के विशाल घर का कोई खाली कोना खोजने के लिए बाहर निकले।

'अम्बेलाल !' मगन पण्ड्या ने कहा, 'भोजन करना हो तो भी ऐसा ही करना होगा।'

'अरे चलो,' कहकर चारों कमरे के बाहर निकले। पण्ड्या ने अपने 'ट्रंक' का ताला निकालकर कमरे को लगाया और वे नीचे उतरे।

नीचे उतरकर उन्होंने भोजन किया और प्रत्येक कमरे में पहचान-वालों की खोज में जाने लगे। दूसरे मंजले में एक कमरे में मे आवाज़ आई, 'ए पण्ड्या काका ! सदुभाई !'

'कौन नारण पटेल ?' पण्ड्या ने आवाज़ दी, 'कहां छिपे हो ?'

कमरे में खिड़की के पास बिस्तरे पर पड़े-पड़े नारणभाई पटेल

हुक्का पी रहे थे, और एक आदमी उनके पैर दाबता था।

'इधर आइए, इधर आइए!' कहकर दाबे जाते पैर पर धोती घुटने के नीचे लाकर नारण पटेल ने उनका स्वागत किया और ओठों में से धुंआ निकाला। 'कहां थे इतनी देर तक?'

'अरे मकान खोजते-खोजते नाक में दम हो गया। और केरशास्प ने यह लगाया है क्या?' शिवलाल श्रॉफ ने कहा, 'ऐसा जानता तो मैं अपनी माता के यहां उतरता।'

'सावधान,' नारण पटेल ने कहा, 'फ्रेन्च विप्लव के समय यदि ऐसा बोलते तो खंभे से लटका दिये जाते। Mr. Aristocrat (मि० अमीर) ये ही जानता है—ये ही 'demos' हैं, जिनके लिए हम लोग लड़ रहे हैं; नेपोलियन जिनकी तलवार था।'

'पर केरशास्प का क्या हुआ है?' सुदर्शन ने पूछा।

'पांच दिन पहले मुझे एक तार मिला।' पास बैठे हुए को पीने के लिए हुक्का देते हुए नारण पटेल ने कहा, 'Come with all friends. House at Nanpura ready.' (सब मित्रों के साथ आओ, नानपुरा का घर तैयार है।)

'याने ये सब आपके मित्र हैं। केरशास्प इन्हें पहचानता नहीं है।'

'नहीं!' गर्व से नारण पटेल ने कहा, 'मैंने मेरे जितने मित्र थे, उन्हें आने के लिए लिखा। वे अपने-अपने मित्र लेकर आये। पूरा घर भर गया। क्या प्रधान व्यर्थ में ही बना जाता है? इस तरह काम होता है, सद्भाई! 'Secret Societies'—(गुप्त मंडल)—इसी तरह शुरू होती हैं।'

सुदर्शन क्रोध से देखने लगा। 'ये सब क्या तुम्हारे गुप्त-मण्डल के सदस्य हैं?'

'हुक्का पीना बन्द करो, नहीं तो गन्ध के कारण सब कुछ पकड़ा जायगा,' कटुता से अम्बेलाल देसाई ने कहा।

'हुक्के के बिना क्या कोई रहा है?' नारण भाई ने जवाब दिया।

सुदर्शन के अन्तर में अन्धकार हो गया था। कुछ लोग नहीं आये थे; केरशास्प—प्रधान—का ठिकाना नहीं था; और ये हुक्का गुड़गुड़ाने-वाले नारणभाई गुप्त-मण्डल चलायंगे! उसने तो कड़े, गम्भीर, एक-निष्ठ सदस्यों का संघ स्थापित करने की आशा रखी थी, उसके बदले यह! उसे अपने प्रति तिरस्कार हुआ। क्या इन लोगों का अपराध था? नहीं, यह अपराध उसका ही था। उसमें इतना आध्यात्मिक बल नहीं था कि इन सबमें नवचेतन प्रेरित करे। बुद्ध ने किस प्रकार प्रेरित किया? शिवाजी ने कैसा किया? क्या 'मां' की सहायता उसे नहीं करनी थी? ऐसे विचार करते हुए किसी प्रकार भी रात निकाली।

: २ :

सबेरे केरशास्प आया। नारणभाई की सर्वव्यापी यजमान-वृत्ति से अपना वर उभरता हुआ देख उसकी घबराहट का पार न था। उसकी यजमान-वृत्ति की भावना विचित्र थी, इससे वह सबके सत्कार की व्यवस्था करने लगा।

जिस कमरे पर मगन पण्ड्या ने अधिकार जमाया था, उसके अति-रिक्त पूरा घर उसने मेहमानों को दिया, इसी प्रकार अपने मित्रों के लिए उसने अच्छी व्यवस्था कर दी, और एक खास आदमी उनके लिए तैनात कर दिया। अपने मित्र-मण्डल के लिए भोजन की भी व्यवस्था उसने अलग की। पर निराशा में मग्न सुदर्शन को कुछ रुचा नहीं। चहुंओर हल्ले-गुल्ले से भरे हुए मकान में काम भी क्या हो सकता है, बात क्या हो सकती है, योजनाएँ क्या बनाई जा सकती हैं। कांग्रेस की चंचल गड़बड़ में सब सदस्य मण्डल की बातें भूल गए हों, ऐसे मालूम पड़ते थे।

सबेरे सब लोग सूरत शहर की शोभा देखने रवाना हुए। चींटियों के समान चलते हुए, पर उनकी व्यवस्था से रहित, बाहर के लोगों से रास्ते

उभरते थे। किसी-किसी स्थान पर 'बन्देमातरम्' 'तिलक महाराज की जय', 'लाल-बाल-पाल की जय' का घोष होता था।

हरिपुरा में 'घी कांटा वाड़ी' में 'गरम दल' का अड्डा था। सुबह, दोपहर व सन्ध्या-समय उस पक्ष की सभा हुआ ही करती थी। रात में 'बालाजी-चौराहा' पर सभा होती थी, और लाजपतराय, अजीतसिंह, तिलक, खापर्डे व अरविंद घोष वहां गरजते थे। इन सभाओं में वे मित्र जाने लगे। श्वास रोककर सुदर्शन उन नेताओं के भाषण सुनता था, और उनके मुख से निकलता प्रेमामृत पीता था। लाजपतराय के शान्त वचन, अजीतसिंह के ज्वाला के समान शब्द, तिलक के उलाहने व आक्षेप खापर्डे की वीभत्स उक्तियां, और अरविंद का अन्तरवेधक ऊर्मियों से परिपूर्ण वाग्पाटव आदि से उसके हृदय में विभिन्न भाव उत्पन्न होते थे। उसके हृदय की व्यथा जरा दूर हुई। उसका उत्साह बढ़ गया। उसे यह कांग्रेस-अधिवेशन स्वातन्त्र्य-युद्ध के समान दिखाई दिया। इस पर देश के उद्धार का उत्तरदायित्व है, ऐसा उसे विश्वास हुआ। धीरे-धीरे वह अपने मण्डल की बात भूल गया और कांग्रेस-मय हो गया।

शिवलाल श्रॉफ सूरत के कितने ही नेताओं को पहचानता था। डाक्टर मोहननाथ दीक्षित के साथ भी उसने कुछ परिचय निकाला था। इससे वह स्वयंसेवक बन गया। वह केवल रात में सोने के लिए नान-परा आता था, और 'नरम दल' की बहुत-सी गप्पें ले आता था। 'सिविल लाइन्स' के बंगलों में उतरे हुए 'नरम दल' के महारथी सुबह, दोपहर व शाम को विचार-विनिमय करते थे, और हरिपुरा के 'गरम दल' के नेताओं के साथ दूतों द्वारा विचार-विनिमय किया जाता था। यह बात फैली थी कि 'नरम दल' के नेताओं की घबराहट का पार नहीं था। माननीय जगमोहनलाल रात-दिन काम कर रहे थे, यह समचार भी मिला था।

केरशास्प के घर तो प्रत्येक कमरे में सभा होती थी व उसमें, प्रत्येक

बात पर चर्चा होती थी। 'गरम दल' नाइयों को प्रतिनिधि बनाकर ले आया था, उनमें से कितने अपना धंधा शुरूकर सूरत से पैसा ले जाने का साहस करते थे, और उनमें से एक ने उस्तरे से 'नरम दल' के एक बेरिस्टर का सिर धड़ से अलग करने की धमकी दी थी। इस गप्प ने एक दिन केरशास्प के पूरे घर को खुश कर दिया था। 'गरम दल' के कारीगर के हाथों 'नरम दल' के व्यक्ति का सिर काटा जाय इससे अधिक गौरवशील देश-भक्ति का नमूना कैसे हो सकता है!

केरशास्प के घर में कुछ लोग 'नरम दल' के थे। वे 'नरम दल' की बातें लाते थे, और उनके साथ रात-दिन वादविवाद चला ही करता था। पूरा घर एक समराङ्गण बन गया था।

२४ तारीख को 'नरम' व 'गरम दल' के मध्य होनेवाले विचार-विनिमय के समाचार आये। फीरोज़शाह ने 'कलकत्ता-कांग्रेस' के चारों प्रस्ताव गोखले द्वारा परिवर्तित करवाए।

स्वराज्य, स्वदेशी, 'बॉयकॉट', राष्ट्रीय शिक्षा आदि चार बातों में फीरोज़शाह कांग्रेस को सुधारने बैठे। फीरोज़शाह कौन होते हैं! सुदर्शन की आंखें लाल हो गईं। किसीने फीरोज़शाह का सूत्र कहा—'राष्ट्रीय शिक्षा क्या है, यह मेरी समझ में नहीं आता।' अम्बेलाल देसाई ने प्रश्न किया, 'बेगार का बादशाह क्या, शिक्षा क्या है, कभी समझा है?' कोई समाचार लाया कि फीरोज़शाह 'बायकाट' के विरुद्ध है। 'ठीक तो है,' शिवलाल ने कहा, 'उन्हें मखमल का कालर फिर कहां से मिलेगा?'

नारणभाई पटेल, अम्बेलाल, मगन पण्ड्या व सुदर्शन चौबीस तारीख को सन्ध्या-समय हरिपुर गये। मोहन पारेख की यहीं ठहरने की व्यवस्था थी, क्योंकि वह अरविंद घोष के अंगरक्षक का काम करता था, और पूरा समय अटका रहता था।

नारणभाई पटेल १९०७ में डा० परांजपे से गणित में एम० ए० की शिक्षा प्राप्त करने पूना में रहे थे, और वहां रहकर गणित की अपेक्षा

राजनैतिक आन्दोलन पर अधिक ध्यान देना सीखे थे। तिलक के वे भक्त थे, और 'केसरी' के दरबार के सब दरबारियों से उन्होंने मैत्री की थी। प्रविष्ट होते ही "कहिये कैसे हैं, ?" "कहां चले रावसाहब," "पटेल साहब अच्छे तो हैं ?" आदि शब्दों से अभिनन्दन करते व पाते हुए मित्रों को साथ में रख वे आगे बढ़े।

सभा में अरविंद घोष सभापति थे। बड़ौदा छोड़ने के पश्चात् उन्हें सुदर्शन ने देखा नहीं था, और छोटी धोती व शाल में खुले सिर बिराजे हुए सभापति के रूप में अपने पुराने विलायती लिबास में सुसज्जित प्रोफेसर को पहचानने में जरा देर लगी।

तिलक चारों प्रस्तावों पर बोले—'कलकत्ता के प्रस्ताव किस प्रकार परिवर्तित किये जा सकते हैं ? और परिवर्तित करनेवाला कौन है ? यदि 'नरम दल' न माने तो रासबिहारी घोष को सभापति बनने ही न देना चाहिए। नहीं, नहीं, कदापि नहीं। क्या लाला लाजपतराय का नेतृत्व व त्याग कम था ? वे क्यों न सभापति हों ?' 'तिलक महाराज की जय' नारणभाई सभा गरजा देनेवाली आवाज़ से चिल्लाये और सम्पूर्ण सभा ने प्रतिशब्द किया।

तत्पश्चात् अरविन्द बाबू बोले। उनकी आंखों में भविष्यवेत्ता की चमक थी। उनके शब्दों में रुद्र के शासन के समान निश्चलता थी। 'हमने अपना जीवन-सर्वस्व अर्पित किया है। दिसम्बर की छुट्टियों में मौज उड़ाने आनेवाले की क्या मज़ाल थी कि हमारे कार्यक्रम में बाधा उपस्थित करे ?' सुदर्शन ने देव-सम प्रोफेसर को सुना, और जीवन-सर्वस्व अर्पण करने की प्रेरणा उसके हृदय में हुई।

वहां से रात को वे बालाजी की टेकड़ी पर गये। अरविन्द बाबू के भाषण से सबके हृदय उछलने लगे थे। क्या दुःखित, विभक्त बङ्गाल को उनकी जननी कांग्रेस शरण देगी ? बच्चे फिर कहां जायंगे ? बङ्गाल के प्रश्नों—स्वदेशी, 'बायकाट' व राष्ट्रीय शिक्षा—को उन्होंने राष्ट्रीय प्रश्न बनाने की प्रार्थना की। अरविन्द की आवाज़ में आंसू थे। उनके शब्दों

में आक्रन्द था। सुदर्शन की आंखों में आंसू आये। जब उसके प्रोफेसर ने याचना की कि 'हमारे स्वदेश में हमें—बङ्गालियों को—विदेशी न बनाओ।'—तब उसने सिसकी ली।

खलबलाहट से भरे हुए शहर में मध्य रात्रि के समय वे सब नानपरा में आये। मोहन पारेख हमेशा हरिपुरा में अरविन्द बाबू के पास रहता था। वह इस समय वहां सोने आया था। उसने समाचार कहे, 'ढाका के कलक्टर एलन को बङ्गालियों ने पिस्तौल से खतम किया।' मानो बम पड़ा हो, इस प्रकार पहले तो सब चौंके; फिर कितने ही नाचने लगे, और कितने ही इसका क्या परिणाम होगा, इसकी चिन्ता करने लगे।

'सदुभाई,' अम्बेलाल ने दुखपूर्वक कहा, 'ये बङ्गाली हम लोगों से आगे ही रहेंगे।' सुदर्शन विचार में थोड़ी देर चुप रहा व धीरे-से बोला—'उतावला सो बावरा, धीरा सो गम्भीर।'

मध्यरात्रि के पश्चात् दो बजे के सब लेटे, तब मोहन पारेख ने सुदर्शन से धीरे-से कहा, 'कल सुबह मुझे लाला लाजपतराय के साथ स्टेशन पर जाना है। चलोगे?'

'अवश्य, मुझे उठाना,' कह सुदर्शन ने करवट बदली।

: ३ :

'हठवा लाइन्स' में नवरोजी वकील के बङ्गले में सर फीरोज़शाह मेहता ठहरे थे। माननीय जगमोहनलाल भी पास के ही बङ्गले में उतरे थे, और पूरा समय फीरोज़शाह के साथ ही रहते थे।

व्यवस्थित आन्दोलन के सब शस्त्रों के गर्व में फीरोज़शाह को 'गरम दल' के प्रस्ताव हास्यास्पद मालूम पड़े। स्वतः पार्लियामेण्ट के नेता हों इस प्रकार सब आन्दोलनों की कीमत आंकने के लिए वे उन्हें इङ्गलैंड की पार्लिमेण्ट के दृष्टि-बिन्दु की कसौटी पर चढ़ाते थे।

केनाडा आस्ट्रेलिया के समान स्वराज्य क्या यहां सम्भव है ? क्या कोई देने वाला है? क्या स्वदेशी से कहीं प्राप्त हो सकता है ? सब पहनें इतना कपड़ा कौन बनायगा ? और सस्ता विदेशी कपड़ा छोड़ महंगा स्वदेशी कपड़ा कोई पहनेगा ? और 'बॉय-कॉट ' कैसी मूर्खता है। उन्होंने आयर्लैण्ड का आन्दोलन स्वतः देखा था; पार्नेल को स्वतः उन्होंने देखा था, उसकी प्रशंसा की थी; पर 'बॉयकॉट' याने विरोध—विरोध याने अराजकता—अराजकता याने विरोध। जो प्रवृत्ति आयर्लैण्ड में सफल न हो सकी, वह क्या निर्जीव, निःशस्त्र भारत में हो सकेगी ? और राष्ट्रीय शिक्षा—इसका अर्थ क्या है ? उसकी रीति क्या है ? उसकी व्याख्या क्या है ? इतने वर्षों के परिश्रम से बम्बई विश्व विद्यालय को अच्छे पाये पर रखा, वह झूठी और राष्ट्रीय आन्दोलन के अन्धकार में प्रारम्भ किया गया राष्ट्रीय कालेज सच्चा है ? 'Absurd !' २९ दिसम्बर को प्रातःकाल फीरोज़शाह बड़बड़ाने लगे।

इतने में उनका 'बॉय' आया—'गोखले व माननीय जगमोहनलाल आये हैं।'

'बुलाओ,' फीरोज़शाह ने आज्ञा दी।

गोपालकृष्ण गोखले का मुख चिंतातुर दिखाई देता था। माननीय जगमोहनलाल तो हमेशा चिन्ताग्रस्त रहते थे।

'चिमनलाल कहां हैं ?'

'वे और पारेख स्टेशन पर सीधे ही जानेवाले हैं,' जगमोहनलाल ने कहा।

'मुझे थोड़ी देर होगी,' फीरोज़शाह ने कहा, 'आप लोग चलें।'

गोखले के मुंह पर जरा हास्य प्रसारित हुआ। फीरोज़शाह को तैयार होने में हमेशा देर लगती थी।

'मैंने ऐसा सुना है कि लाजपतराय कुछ समाधान की बात लेकर आनेवाले हैं।'

'अभी समाधान की बात नहीं हो सकती,' फीरोज़शाह के मुख

पर प्रोत्साहक हास्य खेलने लगा, 'फिर हम लोग 'Subjects Committee'. (विषय निर्वाचिनी समिति) में समाधान करते रहेंगे। गोखले, इन लोगों को 'Constitutional' (वैधानिक) ढङ्ग से काम करना सिखाना चाहिए, याने स्वयं ही विप्लववादियों का अन्त हो जायगा।'

'पर कोई योजना हो तो ?'

'अभी पूरा दिन है। जाओ,' कहकर उन्होंने गोखले व जगमोहनलाल को विदा किया।

यह बात आधे खुले दरवाजे में से एक स्वयंसेवक सुनता था; उसकी आंखें फीरोज़शाह के शब्दों से जरा चमक उठीं। वह शिवलाल ऑफ—गोखले व जगमोहनलाल की घोड़ागाड़ी पर 'कोचमेन' के साथ चढ़ बैठा, और घोड़ागाड़ी स्टेशन पर गई।

फीरोज़शाह ने अपनी तैयारी चालू रखी। बाईस वर्ष तक उन्होंने कांग्रेस को अपनी अंगुली पर नचाया था, और अनेक प्रश्नों का सन्तोषकारक हल प्राप्त किया था। अपने राजनैतिक कौशल, वीरता, वाग्पाटव और दुर्जय व्यक्तित्व से उन्होंने अनेक सभाएं जीती थीं। सूरत उनका था; मालवीय उनके थे; गोखले, पारेख, चिमनलाल, जगमोहन आदि उनके कुशल दूत चारों ओर काम कर रहे थे। फिर चिन्ता किस बात की थी!

और क्या उनकी दृष्टि सच्ची नहीं थी? अंग्रेजी साम्राज्य के समान सबल सत्ता को डराने से कुछ नहीं हो सकता। साम्राज्य की जड़ एक ही थी—स्वातन्त्र्य-प्रेम; व्यवस्थित आन्दोलन से इस प्रेम को विकसित कर कांग्रेस ठोस काम कर रही थी—'Broadening down from precedent to precedent' के मार्ग पर चल रही थी। उसे ये अल्प-बुद्धि के 'गरम दल' वाले रोकने के लिए तैयार हुए थे, और उन्हें ठीक करने के लिए व्यवस्थात्मक नियमन ही पर्याप्त था।

वे कपड़े पहनने लगे।

आठ बजे 'कांग्रेस स्पेशल' में कलकत्ता से डॉ० रासबिहारी घोष आने वाले थे। स्टेशन पर भीड़ का पार नहीं था। वहां चिंतातुर नेता, क्या होता है यह जानने के लिए उत्सुक 'डेलिगेट', उत्साही स्वयंसेवक और चमकते हुए दुपट्टे और कड़े अंगरखे में शोभायमान सूरत के रईस एकत्रित हुए थे।

गोखले व जगमोहनलाल के पीछे उनकी छाया के समान शिवलाल आफ आगे-आगे ही बढ़ा। 'प्लेटफार्म' के बीच में स्वयंसेवकों द्वारा बड़े परिश्रम से खाली रखी हुई जगह में नेता खड़े थे।

शिवलाल ने चारों ओर दृष्टिपात किया। मालवीय, चिमनलाल व पारेख एक ओर थे। थोड़ी दूर पर लाजपतराय सादगी व सरलता के अवतार के समान खड़े थे। उनके पीछे उनके कुछ कागज़ लेकर खड़े हुए मोहन पारेख व सुदर्शन को उसने देखा। भीड़ में से धीरे-धीरे सरकता हुआ शिवलाल वहां गया व उसने मित्रों के कान में कहा, 'कुछ न होगा, बादशाह का हुक्म हो गया है।'

मोहन, पारेख, कृतनिश्चय विप्लववादी की शान्ति से हँसा।

इतने में लाजपतराय सुदर्शन की ओर फिरे।' 'जरा मि० गोखले से कह दो कि मुझसे मिल जायं।' सुदर्शन दौड़ता जाकर गोखले को बुला लाया। गोखले मृदु हास्य मुख पर धारण कर आये।

'Good morning, मि० लाजपतराय ! कहिए क्या है ?'

'कल रात को मैं तिलक आदि से मिला था,' बहुत ही गाम्भीर्य से लाजपतराय ने कहा, 'पांच वे लोग और पांच आप लोग मिलकर प्रस्तावों का निर्णय करें, तो फिर उन लोगों को आपत्ति न रहेगी।'

'यह कैसे हो सकता है ?' गोखले ने दयनीय चेहरे से पूछा। 'प्रस्ताव तो 'विषय निर्वाचिनी-समिति' करेगी न ? 'Cart before the horse' (घोड़े के आगे गाड़ी) कैसे संभव है ?'

'यदि हम लोग तय करेंगे तो 'विषय-निर्वाचिनी-समिति' अस्वीकार कैसे करेगी ?'

'यह कैसे कहा जा सकता है ? फिर देखेंगे, मैं फीरोजशाह को पूछूंगा।'

लाजपतराय ने कंधे ऊंचे किये व 'कांग्रेस स्पेशल' का 'सिग्नल' हुआ।

'अच्छा हुआ इन्हें ऐसा उत्तर मिला,' मोहन पारेख ने सुदर्शन के कान में कहा, 'ये कब से अपने यहां ढीली बातें कर रहे थे।'

स्टेशन पर एकत्रित लोगों ने 'वंदेमातरम्' का जयघोष किया, और 'कांग्रेस स्पेशल' स्टेशन पर आई; सब दौड़े। लोगों के धक्कों से 'ट्रेन' के नीचे नेताओं का बलिदान स्वयंसेवकों ने बड़ी कठिनाई से रोका। चारों ओर उत्साह फैल गया। किसीने रूमाल उड़ाए, किसीने दुपट्टे ऊपर किये; किसीने 'रासबिहारी की जय' की; थोड़े लोगों ने धिक्कार-धिक्कार, की आवाज की, और 'ट्रेन' में से रासबिहारी घोष बाहर आये। उनके साथ सुरेन्द्रनाथ, डा० रुथरफोर्ड, नेविन्सन, मोतीलाल घोष और अपूर्व यूरोपीय लिबास में पं० मोतीलाल नेहरू थे......और टिकट के दरवाजे की ओर से आवाजें सुनाई दीं—'वंदेमातरम्' 'धिक्कार' 'फीरोजशाह की जय' के मिश्रित उच्चारण से अभिनंदित किये जाते, हंसते, चौंकाते हुए फीरोजशाह स्टेशन पर आये। स्वयंसेवकों ने राजमार्ग बना दिया, और मानो स्वदेश का सम्राट् विदेशी अतिथि को लिवाने के लिए आया हो, इस प्रकार फीरोजशाह ने रासबिहारी का स्वागत किया। अभिमान से अपनी महत्ता दरशाने के लिए फीरोजशाह देर से आये। इस विचार से वहां आये हुए विप्लववादियों के हृदय में विष का सञ्चार हुआ।

चारों ओर नगाड़े बजने लगे, और सभापति का आगमन सबको सूचित किया गया। प्रत्येक मार्ग में झंडियां व बंदनवार थे। हार गुलदस्तों की वर्षा से सभापति की गाड़ी उभर गई। सूरत के मार्ग की खिड़कियों में उत्साह व आनन्द दिखाई दिया। रासबिहारी की लोकप्रियता में कोई कमी नहीं थी। उस उत्साह को देखते हुए हरिपुरा क्या कर सकता था ? जगमोहनलाल की चिन्ता अदृष्ट हो गई। फीरोजशाह

सच्चे थे। 'गरम दल' तो नाममात्र का ही था; उसकी लोकप्रियता केवल विद्यार्थियों तक ही सीमित थी; उसके व्यक्तित्व का कोई हिसाब न था।

'हम सब आज शाम को मिलेंगे,' शिवलाल ने माननीय गोखले की गाड़ी पर चढ़ते हुए लाजपतराय के पीछे चलते मोहन पारेख से कहा।

'साढ़े सात बजे,' पारेख ने उत्तर दिया।

: ४ :

शाम को सवा सात बजे केरशास्प के यहां अम्बेलाल देसाई, केरशास्प व मगन पण्ड्या चबेना, सेव व पकौड़ी खा रहे थे। साधारण तौर पर केरशास्प व पण्ड्या तो घर पर ही बैठे रहते थे। अम्बेलाल के पैर दुखते थे।

कोई जोर से पैर की आवाज करता हुआ जीना चढ़ा और नारण पटेल कांछ लगाकर खुली बटनों से तोंद के गौरव का भास कराते हुए, हाथ में डंडा लिये आये।

'मेरे लिए कुछ रखा है या नहीं?' सेव व चबेने की थाली की ओर देखते हुए उन्होंने कहा।

'बहुत है,' केरशास्प ने कहा।

नारणभाई डटकर बैठ गए। 'आज तो पूरे 'कैम्प' में जा आया। नागपुर, पूना, व गुजरात सबको समझाकर आया। इन बदमाश 'नरम दल' वालों के बारह बजा दिए।'

केरशास्प ने जरा मजाक में पूछा, 'ऐसी बात है?'

'और महाराष्ट्र 'डेलीगेटों' के आगे हम लोगों की 'सीट' है। वहां दूसरी कतार में हम सबके लिए जगह कर आया हूँ। गुजरातियों को बिलकुल पीछे रखा है।'

'यह ठीक किया,' मगन पण्ड्या ने कहा।

'तुम क्या करोगे ?'

'आगे तिलक महाराज बैठेंगे और पीछे मैं। केलकर दादा भी आगे ही हैं। पान खा-खाकर मेरे मुंह में तो छाले हो गए हैं।'

'क्योंकर ?'

'पान खाये बिना दक्षिणियों के साथ साहचर्य कैसे हो सकता है ?'

'यह कौन आया ? सटुभाई मालूम पड़ते हैं।'

'कैसे हो ?' मोहन पारेख के मोटा-ताजे शरीर के जीने पर दिखाई देने पर केरशास्प ने पूछा।

मोहन पारेख का मुख निराशा से बंद हो गया था। सुदर्शन क्रुद्ध दिखाई दिया। दोनों आकर बैठे।

'क्या है ? इस प्रकार मनहूस-जैसे क्यों आये हो ?' नारण पटेल ने चबेना मुंह में भरते हुए पूछा।

'गरम दल का अन्त हो गया,' मोहन पारेख ने निश्वास लेकर कहा।

'फीरोजशाह के अनुयायी बहुत होशियार हैं। तिलक को इतना दूर रखा है कि बेचारे घबरा गए हैं,' सुदर्शन बात करने लगा, 'और आज सवेरे उनका विश्वास हो गया कि 'गरम दल में केवल इने-गिने लोग ही हैं।'

'किसने कहा ?' नारणभाई ने जोर से पूछा।

'किसने क्या कहा ?' मोहन पारेख ने घबराकर कहा, 'खापर्डे व केलकर ने सात बार गिनती की। अब तो इन लोगों को ऐसा समाधान चाहिए, जिससे इनकी इज्जत बच जाय। इस समय तो सब बिलकुल निराश होकर बैठे हैं।'

'तो अब क्या होगा ?' केरशास्प ने कहा।

'क्या होगा ? कुछ समाधान का रास्ता खोजते हैं।' सुदर्शन ने कहा।

'तो जाकर फीरोज़शाह से मिलें,' केरशास्प ने कहा।

'यही उनकी चालाकी है। वे तिलक को मिलते नहीं। दूसरे कोई हाथ लगाने नहीं देते। रास्ते से चलनेवाले बादशाह के दरवाजे के सामने चक्कर मारें, ऐसी दशा तिलक व खापर्डे की हुई है।'

'अच्छा!' मगन पाण्ड्या ने कहा।

'अरविंद बाबू क्या करते हैं?' केरशास्प ने पूछा।

'क्या करें?' मोहन पारेख ने कहा, 'वे तो केवल इतना ही कहते हैं कि कोई न होगा तो मैं अकेला खड़ा होकर विरोध करूँगा। उससे क्या हो सकता है?'

'तब एक दूसरा रास्ता है,' केरशास्प ने एकदम कहा।

'क्या?' सब बोल उठे।

'किसी दूसरे को बोलने ही नहीं देना चाहिए,' कहकर केरशास्प ने जंघा पर हाथ ठोका। 'नारण भाई! यह आपका काम है। अपने सवा सौ दोस्तों को मण्डप में चारों ओर बांट दो, और नागपुर व महाराष्ट्र 'कैम्प' में सूचना भिजवा दो कि अपने पक्ष के सिवाय किसीको बोलने ही नहीं देना चाहिए।'

'धन्य है, धन्य है।' कहकर नारणभाई कूदे। 'यह तो एक क्षण का काम है। फिर झख मारेंगे वे लोग। शिवाजी महाराज की जय!'

'अरे भाई!' केरशास्प ने हँसकर कहा, 'कांग्रेस-अधिवेशन तो कल प्रारम्भ होगा।'

'पर मुझे तो भय मालूम होता है कि तिलक व खापर्डे तब तक मान जायंगे।'

'अरविंद बाबू कभी नहीं मानेंगे,' मोहन पारेख ने उत्तर दिया, 'पर केरशास्प की बात सच्ची है।'

'क्या मैं आ सकता हूं?' शिवलाल श्रॉफ का हंसता हुआ मुख जीने पर दिखाई दिया।

'आओ, आओ। तुम्हारे क्या समाचार हैं?'

'ठहरो, कहता हूं,' कहकर शिवलाल ने थोड़ा चबेना खाया।

सब चुपचाप देखते रहे। 'ये सब जबरदस्त हैं।'

'क्यों ?' केरशास्प ने पूछा।

'इस समय मस्कती के बंगले पर सब मिले थे।'

'कौन-कौन ?' अम्बेलाल जो अभी तक चुपचाप सुना करता था, बोला।

'सुरेन्द्रनाथ, 'नासबिलाडोघुस', फीरोज़शाह, वाच्छा, गोखले, गोकुल काका, चिमनलाल, मालवीय, मोतीलाल नेहरू, अम्बालाल, साकरलाल व अपनी सुलोचना के पिता'—वह हँसा।

'फिर क्या हुआ ?' केरशास्प ने कहा।

'और वे दो अंग्रेज़—रुथफोर्ड व नेविन्सन।'

'अंग्रेज़ों के बिना क्या हम लोग विचार कर सकते हैं ?' तिरस्कार-पूर्वक अम्बेलाल ने कहा।

'फिर ?' मोहन पारेख ने पूछा।

'आज उन्हें विश्वास हुआ कि तुम्हारे 'गरम दल' वाले कुछ नहीं करेंगे। फीरोज़शाह ने स्पष्ट कह दिया कि किसी प्रकार का समझौता नहीं करना है। ऐसा क्या हो जायगा ? सदुभाई, तुम्हारे 'would have been' (होते हुए) श्वसुर ने अच्छा भाषण किया। कुछ भी दुर्बलता नहीं बतानी चाहिए। उन्होंने कहा कि 'गरम दल' का उद्देश्य साम्राज्य के बाहर स्वाधीनता प्राप्त करना है।'

'हां है, है' नारणभाई ने कहा।

'सुनो तो सही,' केरशास्प ने कहा। 'इससे इन लोगों को पैर पकड़कर कांग्रेस के बाहर निकाल देना चाहिए।'

'निकालें तो सही,' नारणभाई ने धमकी दी। 'ऐसा किये बिना ये लोग रास्ते पर नहीं आयंगे।'

'देख लेंगे,' नारणभाई ने गुस्से में कहा।

'अब चुप तो रहो,' मगन पण्ड्या ने नारणभाई के कंधे पर चपत जमाते हुए चुप होने को सूचित किया।

'केवल लालाजी के कारण इन लोगों को समाधान-वृत्ति बतानी पड़ती है।'

'वह तो पंजाबी उस्ताद है,' मोहन पारेख ने कहा।

'मुझे मालूम होता है कि कल सब 'गरम दल' खतम हो जायगा। तिलक व खापर्डे तो थक गए हैं।'

'एक ही रास्ता मुझे दिखाई पड़ता है।' सुदर्शन, जो अभी तक चुप था, मस्तक पर की सिकुड़न व पसीना हाथ से दूर करता हुआ बोला।

'क्या ?' पारेख ने पूछा।

'समझौता होने ही नहीं देना चाहिए,' सुदर्शन ने ज़ोर से ओंठ बन्द कर कहा।

'सदुभाई, यह कहना सरल है। तुम लालाजी को पहचानते नहीं हो।' केरशास्प ने कहा।

'और तिलक, खापर्डे—' मोहन पारेख ने कहा।

'देखो,' सुदर्शन ने आगे बढ़कर कहा, 'शिवलाल श्रॉफ गोखले की तैनात में है। शिवलाल, चाहे जैसे भी हो अम्बेलाल को फीरोज़शाह की हाज़िरी में स्वयंसेवक बना दो।'

'कैसे ?'

'वहां तुम्हारा दोस्त नरोत्तम है, उसके स्थान में—।'

'अच्छा, फिर ?'

'लाजपतराय के साथ मोहन पारेख तो है ही, और पारेख, मुझे व पण्ड्या काका को तिलक व खापर्डे की तैनात में रखवा देगा।'

'फिर क्या ?' मोहन पारेख ने आतुरता से पूछा।

'संदेशे कौन ले जायगा, ले आयगा ? हम ही तो—फिर तो 'मां' का भावी—।'

'उज्ज्वल,' कह केरशास्प ने ताली दी।

'धन्य है दोस्त, इस प्रकार यदि हम करेंगे, तो किसी दिन सम-

फौता नहीं होगा। और मैं व नारणभाई 'कैम्प' में जाते हैं। पूरी रात है, देखें कौन 'नरम दल' का बोल सकता है?' एक क्षण-भर सब एक-दूसरे के सामने देखते रहे।

'क्या मैंने नहीं कहा था हमारा मण्डल क्या नहीं कर सकता ?' नारणभाई ने कहा, 'शिवाजी महाराज की जय !'

'सदुभाई, मोहन पारेख ने कंधे पर हाथ रखकर कहा, 'तुम्हारी योजना मेरी समझ में आ गई। अब देख लेना।'

: ५ :

सूरत शहर में चिन्ता ने वास किया था। क्या होगा, इस विचार से वीर हृदय काँपने लगे। रात-भर विचार-विनिमय होता रहा; 'कैम्प'-'कैम्प' में वाग्युद्ध हुआ।

लाला लाजपतराय आठ बजे उठे। दो बजे तक तिलक व अरविंद बाबू के साथ उन्होंने विचार-विनिमय किया था। वे स्वतः 'नरम दल' के थे, तो भी 'गरम दल' के आदर्श समझ सकते थे।

दोनों पक्ष कांग्रेस में रहें, यह उनका उद्देश्य था।

इस उद्देश्य से वे यह सब परिश्रम करते थे। अन्त में उन्होंने तिलक, खापर्डे व अरविंद बाबू से इतना कबूल करवाया कि यदि कलकत्ता कांग्रेस के चारों प्रस्ताव उसी स्वरूप में कायम रहें तो 'गरम दल' को सभापति के चुनाव का समर्थन करना चाहिए। अब केवल एक ही प्रश्न रहा—चार प्रस्तावों के रूप का।

जैसे ही लालाजी उठे, वैसे ही उनकी दृष्टि मोहन पारेख पर पड़ी। लालाजी हंसे व उन्होंने कहा, 'Thank you'। यह व्यक्ति क्या काम करता था? रात को उन्हें सुलाकर वह सोया, और उनके उठने के पहले तो वह हाज़िर था।

'देखो, चाय बनी हो तो।'

'हाज़िर है,' कह मोहन पारेख हंसते मुख से दौड़ता हुआ चाय ले आया। लालाजी ने चाय पीकर कपड़े पहने।

'गाड़ी मंगाओ।'

'जी, अभी मंगवाता हूं।' थोड़ी देर में मोहन वापस आया। "'गाड़ी मंगवाने को कहा है।'

पांच, दस, पन्द्रह मिनट हुए, आठ बजे, लालाजी अधीर हो गए। मोहन पांच-सात बार इधर-उधर दौड़ा, पर गाड़ी का कोई पता लगा ही नहीं।

'किसको भेजा है ?'

'एक स्वयंसेवक को। ठहरिए साहब, मैं ले आता हूं।' कहकर मोहन पारेख वहां से निकला। उसके मुंह पर जरा मुस्कराहट थी। नौ बजे के पहले गोखले के पास से प्रस्ताव ले आने का लालाजी ने तिलक को वचन दिया था; और इस समय लगभग सवा आठ हुए थे। मोहन पारेख रास्ते पर गाड़ी खोजने के बदले निश्चिन्तता से एक पेड़ के नीचे जा बैठा।

लालाजी व्याकुल हुए। समय बीत रहा था; और कोई गाड़ी लाता नहीं था। क्या हुआ ? वे स्वतः एक पञ्जाबी मित्र के साथ बाहर निकले। साढ़े आठ हुए थे।

पारेख ने लालाजी को निकलते देखा, और वहां से दौड़ा। थोड़ी दूर जाने पर एक गाड़ी हाथ लगी। उस पर चढ़कर वह सामने आया।

'गाड़ी मिलने में बहुत देर हुई,' वह बड़बड़ाया।

'कोई हर्ज़ नहीं, मि० गोखले के यहां जाने दो,' कह लालाजी गाड़ी में बैठे।

सूरती घोड़े को समझाते-समझाते नाक में दम आया, पर नौ बजने में दस मिनट कम रहने पर वह लालाजी को गोखले के स्थान पर ले आया। शिवलाल श्रॉफ स्वयंसेवक के रूप में दरवाज़े के पास हाजिर था।

लालाजी आगे व मोहन पारेख पीछे दो-दो पैड़ियां कूदते हुए ऊपर

चढ़े। लालाजी अन्दर गये। और मोहन पारेख शिवलाल के साथ दर-वाजे के पास खड़ा रहा।

'क्यों, क्या हो रहा है ?' शिवलाल ने हंसते-हंसते कहा।

'लालाजी समझौते का संदेशा लेकर नौ बजे तिलक को मिलने वाले हैं।'

'पर नौ तो बज गए।'

'क्या करें ? इस सूरत शहर में गाड़ी ही नहीं मिलती। Shame' (धिक्कार) कह मोहन हंसा।

घड़ी में नौ बजे।

'पहली तरकीब तो सफल हुई,' उसने धीरे से ऑफ के कान में कहा।

इतने में एक स्वयंसेवक दौड़ता हुआ ऊपर आया।

'क्या है ?'

'सिन्धी कैम्प में एक 'डेलिगेट' मर रहा है। कैम्प में से सबने कहलवाया है कि कांग्रेस-अधिवेशन देर से प्रारम्भ करना होगा।'

'अच्छा, मैं गोखले से कह दूंगा। पर यह काम तो त्रिभुवनदास मालवीय का है। उसे कहने जाओ; यहां क्यों आये ?'

'क्या वहां जाना पड़ेगा ?' उस स्वयंसेवक ने पूछा।

'पारेख, तुम निश्चिन्त हुए।'

'क्यों ?'

'अब लालाजी को 'कैम्प' में ले जाओ।'

'वह मर रहा है, इससे ?'

ऑफ अपने मित्र की जड़ता पर हंसा। 'पारेख ! हुआ क्या है ? सिन्ध याने पञ्जाब—दोनों में क्या अन्तर है ? और यदि पञ्जाब कैम्प में कोई मरने लगे तो क्या लालाजी गये बिना रह सकते हैं ?'

'शिवलाल !' अन्दर से माननीय जगमोहनलाल की आवाज़ आई।

'जी' कह शिवलाल अन्दर गया।

गोखले, लालाजी और जगमोहनलाल बातें करते थे। गोखले ने

शिवलाल से कहा, 'कल रात के प्रस्तावों का मसौदा तुमने प्रेस में दिया है न ?'

'जी हां ।'

'अभी जाकर उसकी नकल मि० तिलक के पास पहुंचा दो, और जरूरी समझकर,' जगमोहनलाल ने कहा ।

'अभी, साहब !'

'तुरन्त ही,' लालाजी ने कहा, 'मैं भी अभी तिलक के पास जाता हूं ।' लालाजी उठे ।

घड़ी में नौ बजकर दस मिनट हुए थे ।

लालाजी आये व पारेख के साथ जीना उतरे ।

'लालाजी, पञ्जाब कैम्प से आपको बुलावा आया था ।' पारेख ने कहा ।

'क्यों, मुझे ?'

'जी हां, कोई पञ्जाबी डेलिगेट मर रहा है, और आपको सब बुलाते हैं । सब नेता वहां हैं ।'

'कौन होगा ?' लालाजी ने गाड़ी में बैठे हुए पञ्जाबी को पूछा ।

'कौन जाने कौन होगा ।' उसने कहा । लालाजी गाड़ी में बैठे ।

'साहब, गाड़ी कहां ले चलूं ?' पारेख ने हांकनेवाले के पास बैठते हुए कहा ।

'पञ्जाब कैम्प,' लालाजी ने कहा ।

मोहन ने घड़ी निकाली । सवा नौ हुए थे । उसके मुख पर समझ में न आये ऐसा हास्य था ।

शिवलाल आफ प्रेस में जाने के लिए निकला । अनेक कांग्रेस की गाड़ियां रहते हुए धीरे-धीरे चलकर विचित्र रीति से वह नानपरा में केरशास्प के घर आया । धीरे-से वह नहाया, उसने भोजन किया व कपड़े पहने । ग्यारह बजे । धीरे-धीरे वह प्रेस की ओर जाने लगा ।

: ६ :

तिलक महाराज व खापर्डे हरिपुरा में बैठे-बैठे चिन्ता कर रहे थे।

फीरोज़शाह व गोखले याने बम्बई व पूना के—याने भारत के—प्रतिष्ठित नेताओं के सर्वाधिकारी; फीरोज़शाह याने कांग्रेस के व सार्वजनिक जीवन के सूत्रधार; गोखले याने लाजपतराय के विश्वासपात्र मित्र—विशुद्धता व सौजन्य की मूर्ति; सूरत याने फीरोज़शाह का घर; और समस्त भारत में स्वतः खापर्डे व अरविंद तूफान मचाने वाले, शैतानी करनेवाले व कांग्रेस विध्वंसक थे। इन सब विचारों की परम्परा से तिलक घबरा उठे।

तिलक महाराज के राजकीय जीवन में दो ध्रुव सत्य थे—सरकार का विरोध व व्यक्तिगत सुख के लिए लापरवाही। काम करते समय इन दोनों ध्रुवसत्य पर दृष्टि रहते हुए भी उनका मन डांवाडोल होता था। ऐसी डगमगाहट उन्हें दो दिन से सता रही थी। सौ पूना के, सौ नागपुर के व पचास बङ्गाल के, और अधिक-से-अधिक सौ बम्बई व गुजरात के प्रतिनिधियों पर उनका आधार था। विरोधपक्ष में पन्द्रह सौ प्रतिनिधि, चुने हुए नायक, पार्लिमेण्ट के अंग्रेजी पत्रकार-जीवन के प्रतिनिधि, फीरोज़शाह का राजनैतिक कौशल, गोखले की न्यायवृत्ति व सुरेन्द्रनाथ का वाग्पाटव था।

केवल 'गरम दल' की इज्जत रखने के लिए कलकत्ता के चार प्रस्ताव पर्याप्त थे। पर वह रहें कैसे ?

जिन सुरेन्द्रनाथ ने इन चार प्रस्तावों को उपस्थित किया था, वे इस समय प्रतिपक्षी होकर बैठे थे।

क्या करना चाहिए ?

उनकी बाईं आंख प्रतिक्षण फड़क रही थी। उनका मुख अधीरता से पान चबा रहा था। साढ़े आठ बजे थे।

कलकत्ता के प्रथम 'गरम दली' मोतीलाल घोष व अरविन्द बाबू आ पहुंचे। कितने ही समय तक सब चिन्तामग्न रहे। डेढ़ बजे कांग्रेस-

अधिवेशन प्रारंभ होने वाला था, और घड़ी जल्दी से चलती थी।

अरविंद बाबू के मुख पर निराशा की शान्ति थी। 'लाभालाभौ जयाजयौ' की उन्हें परवाह न थी। हारेंगे ही न ? इस शान्ति से तिलक महाराज घबराते थे। जय की उत्कट इच्छा के बिना उत्साह उनकी समझ में नहीं आता था।

पौने नौ हुए। सबने घड़ी के सामने देखा। लालाजी अभी नहीं आये। शायद उन्होंने दौत्यकार्य छोड़ दिया था। मिनट का काट धीरे-धीरे—बहुत ही धीरे आगे बढ़ा। नौ में दस कम—आठ कम—पांच मिनट कम रहे, इतने में गाड़ी की गड़गड़ाहट सुनाई दी। सब चुप हो गए।

'देखो कौन है ?' खापर्डे ने सुदर्शन से कहा। सुदर्शन बाहर जा आया। 'कोई नहीं, स्वयंसेवक आये हैं।'

'लाजपतराय को क्या हुआ ?' मोतीलाल घोष ने कहा। घड़ी में नौ बजे।

'तब क्या करेंगे ?' तिलक ने पूछा।

'युद्धस्व विगतज्वरः।' जरा हंसकर अरविंद बाबू ने कहा।

सुदर्शन व मगन पण्ड्या ने संतोष के स्मित से एक-दूसरे की ओर देखा।

'एक काम करें, अन्तिम उपाय है,' मोतीलाल घोष ने कहा।

'क्या ?'

'सुरेन्द्र बाबू से मिलें। उन्हें मिला लें।'

'वे नहीं मानेंगे।' तिलक ने कहा।

'वे तो अब 'पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्टों' के मित्र हैं।' अरविन्द बाबू ने शान्ति से कहा।

'तो भी मैं व आप जाकर कहें तो सुरेन्द्र बाबू ना नहीं कहेंगे,' उत्साह-वृद्ध मोतीलाल ने तीस वर्ष का सुरेन्द्र बाबू का अनुभव दरशाया।

'अच्छा चलो,' खापर्डे ने कहा व सब उठे। हांकनेवाले के साथ मगन पण्ड्या व सुदर्शन दोनों बैठे।

जब वे सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के निवास-स्थान पर पहुंचे, तब पौने दस हुए थे। चारों 'गरम' नेता अंदर गये। मगन पण्ड्या व सुदर्शन बाहर खड़े रहे।

'पण्ड्या काका साढ़े दस बज गए। सब काम अभी तक तो ठीक चला है।'

'मुझे मालूम पड़ता है कि मोहनभाई ने कोई चालाकी की सही।'

'देखें,' सुदर्शन ने कहा।

दस बजकर चालीस मिनट पर चार 'गरम दल' के नेता बाहर निकले। सुरेन्द्र बाबू उनको पहुंचाने आये। अपनी खुरखुरी आवाज़ में वे बोलते थे—'मालवीय के पास जाइए, 'चेयरमेन' हैं। कोई रास्ता निकालेंगे।'

'पर आप पर हमारा विश्वास है।'

'बिलकुल मत घबराओ।'

चार 'गरम दल' के नेता पुनः गाड़ी में बैठे व त्रिभुवनदास मालवीय के यहां गाड़ी ले जाने की उन्होंने आज्ञा दी। गाड़ी के चलने पर मगन व सुदर्शन ने अन्दर की जाने वाली बातें सुनने का प्रयत्न किया। जो बातें हो रही थीं, उनसे वे इतना समझे कि कलकत्ता के चारों प्रस्तावों को जैसे-के-वैसे रूप में रखना सुरेन्द्र बाबू को स्वीकार था; यदि ऐसा हो तो रासबिहारी घोष को सर्वानुमति से प्रमुख होने देना 'गरम दल' के नेताओं ने स्वीकार किया था; केवल सभापति के चुनाव के समय लालाजी को सभापति बनाने की इच्छा कितनों की ही थी, ऐसा उल्लेख किया जा रहा था। पर प्रस्ताव जैसे-के-वैसे ही रहेंगे इसका क्या प्रमाण होगा? गोखले के यहां जाना तो व्यर्थ था। क्योंकि लालाजी वापस नहीं आये, इससे वे तो समझौते के विरुद्ध ही होने चाहिएं।

त्रिभुवनदास मालवी इस समय सत्ताधीश थे। वे ही कुछ आश्वासन दे या दिला सकते थे।

साढ़े ग्यारह बजे मालवीय के घर पर पहुंचे। सुदर्शन पूछने के लिए ऊपर गया।

एक लड़के ने कहा कि मालवीय पूजा में बैठे हैं, इससे अभी मिल नहीं सकते।

सुदर्शन के मुख पर विजय का हर्ष था।

'मालवीय आपसे मिल नहीं सकते।'

'क्यों?' तिलक ने पूछा।

'पूजा में बैठे हैं।'

'कब उठेंगे?'

'कहा नहीं जा सकता, कांग्रेस-अधिवेशन प्रारंभ होने के पहले मिला नहीं जा सकता।'

तिलक महाराज के मुख पर खेद छा गया। अरविन्द बाबू हंसे।

'अब जो कुछ होना हो सो हो,' हाथ के दुपट्टे का छोर जोर से पकड़ते हुए खापर्डे ने कहा, 'हमारा उत्तरदायित्व पूरा हुआ।'

'हां,' तिलक महाराज की आंखें ज़ोर से खुलने व बन्द होने लगीं। सवा बारह बजे तिलक अपने स्थान पर गये। एक बजे तो कांग्रेस-अधिवेशन प्रारंभ होने वाला था।

'पर होगा क्या?' उनके मुख पर अपार चिन्ता थी।

बारह

केकी के क्लब का उद्घाटन

: १ :

बम्बई में २२वीं दिसम्बर की संध्या को केकी रुख चौपाटी पर मस्त होकर घूम रहा था।

कहा जाता है कि यूनानी मिनर्वा सशस्त्र व सुसज्जित रूप में जन्मी है। केकी भी फलैनल की पतलून, सफेद बूट, ऊपर के बटन बिना कमीज़ व 'रैकेट' सहित पूर्णतया सुसज्जित 'टेनिस' के खिलाड़ी के रूप में जन्मा था, ऐसा बहुत-से मानते थे। किसी भी समय वह इस सब सजावट के बिना रहता है, इसकी कल्पना करना बहुतों के लिए अशक्य हो जाता था। इस समय भी वह वैसे ही ठाठ में था। उसका सिर खुला था। उसकी घुंघरू वाली जुल्फें मानो माथे पर चिपकाई गई हों, ऐसी मालूम होती थीं। इन जुल्फों से यदि लोगों को मोह न हो तो उसका श्वासोच्छ्वास रुक जाय, ऐसा कुछ उसका मन्तव्य था। वह साधारण तौर पर टोपी पहनता ही नहीं था। थोड़ी-थोड़ी देर में वह 'रैकेट' को पैर पर ठोकता था।

जिस क्रिया को सामान्य जनता 'विचार करना' कहती है, वह उसके दिमाग में आती हुई स्पष्ट दिखाई दी। उसे 'उकताहट' की ही बीमारी हुई थी। यह बीमारी बहुत ही विख्यात है, और बहुत बार बहुत लोगों को होती है। इसका मुख्य लक्षण यह है कि बीमार 'मैं क्या करूं? मैं क्या करूं?' सवाल पूछा करता है; और किसीका नहीं तो अपना ही सिर तोड़ने की तीव्र उत्कण्ठा उसे हुआ करती है।

थे लक्षण केकी में स्पष्ट रूप से दिखाई देते थे।

केकी पैसेवाला था, होशियार था, सुंदर था; बुढ़िया मां के हाथ के नीचे पलने से स्वच्छंद स्वभाव का था। पिता के अभाव में वह किसीकी परवाह नहीं करता था, और बम्बई के आनंदी जीवन में मस्त रहने वाला रसिक था। उसे वह दर्द किसी दिन हुआ न था। इस समय वह बीमारी होने पर घबरा उठा था।

उसने सोचा था, इस प्रकार वह परीक्षा में तो अनुत्तीर्ण हुआ ही था। इसकी उसे कोई चिन्ता नहीं थी। पर कालेज बंद होने पर इस बीमारी के होने का उसे एक ही कारण मालूम पड़ा। पहले दिन में चार-पांच घंटे वह माननीय सुलोचना की सङ्गति में बिताता था। कालेज बंद होने पर उसकी सतत सङ्गति के बिना निर्बल बने शरीर में इस रोग के कीटाणुओं ने घर किया था।

किसीके साथ घूमने जाने की तो जगमोहनलाल ने सुलोचना को मनाई की थी, परंतु जब-कभी वे टेनिस खेलने के लिए एकत्रित होते थे। पर इससे उन्हें सन्तोष नहीं होता था। उस गमन दलाल को भी टेनिस का शौक होने लगा था, और हमेशा वह खेलने के लिए साथ हो जाता था। 'That brute of Bania' (वह जंगली बनिया), केकी बड़बड़ाया।

केकी को एक बात सबसे अधिक खलती थी। वह 'माननीय' के खुश करने के लिए इतना परिश्रम करता था पर उसके साथ गहरी मैत्री नहीं होने पाती थी। सुलोचना हंसती, बोलती व बखान करती थी; तो भी दूर-ही-दूर—जिस तरह गमन के साथ रहती थी, उस तरह—रहती थी। 'माननीय' उसकी ही 'Friend' (मित्र) कैसे हो, इस बड़े प्रश्न का वह विचार कर रहा था। एकदम उसने सुना कि गमन दलाल सूरत कांग्रेस में गया है। जीवन-भर जो अवसर न मिले, वह अवसर मिला था। 'That's good' (अच्छा हुआ), उसने पैर पर 'रैकेट' लगाते हुए कहा, 'What a useful congress !' (कैसी

उपयोगी कांग्रेस है !) उसने इस अवसर का लाभ उठाने का निश्चय किया, और विशेष संदेशा भिजवाकर 'माननीय' को चौपाटी पर बुलवाया था ।

वह कब से ही आती हुई गाड़ियों को देखता था। अभी तक सुलोचना क्यों नहीं आई ?

इतने में उसकी गाड़ी दिखाई दी, और विद्युल्लेखा के समान सुलोचना गाड़ी में से उतरकर उसकी ओर दौड़ी। ऊंची और सुंदर सुलोचना दिन-पर-दिन मोहक होती जाती थी । उसके मुख पर उदित होते यौवन की लालिमा चमकती थी, और उसके अङ्ग का लालित्य पद-पद पर टपकता था। उसमें हिन्दू लड़की की घबराहट नहीं थी, पारसी लड़की का अल्हड़पन नहीं था। कालेज के लड़कों से हंसने-बोलने से उसकी लज्जाशीलता जाती रही थी। पर निश्चिन्त मनोवृत्ति के कारण एक प्रकार की गौरवशीलता प्राप्त की थी। तेज़ स्वभाव की तो वह थी ही, और उसे ढांकने का उसने कभी प्रयत्न नहीं किया था।

उसे यह फक्कड़ पारसी अच्छा लगता था, और उसके द्वारा भेजे गये विशेष संदेशे से वह जरा उत्साह में आ गई थी। केकी याने मज़ा था। उसकी बोलचाल उसे अच्छी लगती थी; उसका व्यवहार उसे पसन्द था; उसका खेल आनन्दपूर्ण था। हास्यपूर्ण प्रसङ्ग उपस्थित करने में वह अद्वितीय था। उसकी सङ्गति में तूफान का अनुभव मिलता था। कितनी ही बार 'कोर्नेलिया' में, 'भोन्जनी' मे या उसके यहां वह चाय पीने गई थी। उस समय कैसा आनन्द आता था, कैसी बातें होती थीं, कैसी शान व कैसा मज़ा रहता था ! कितने ही दिनों तक उसका नशा उस पर सवार रहता था। इस समय भी ऐसे ही किसी प्रसङ्ग के लिए वह मिलना चाहता होगा। उसके साथ जीवन याने आनन्द की पराकाष्ठा थी।

'हल्लो, केकी ! नमस्ते ।'

'जी 'माननीय' ! छाती पर हाथ रख कृत्रिम नम्रता से हंसते मुख

से झुकते हुए केकी ने कहा, 'बन्दा हाज़िर है।'

'क्यों, क्या काम है ? मुझे जाने की जल्दी है।'

'ऐसी बात है ?' केकी ने साथ में चलते हुए कहा, 'मैं समझा था कि निश्चिन्तता से हम लोग एक घण्टे तक साथ रहेंगे। अच्छा, मुझे आपसे एक कृपा-याचना करना है।'

'क्या ?' चमकती हुई आंखों से हंसते हुए सुलोचना ने पूछा।

'मुझे आपको एक 'पार्टी' देना है।'

'पार्टी !' सहर्ष सुलोचना ने कहा, 'किसलिए ?'

'बहुत दिन हुए हम लोगों ने आनन्द नहीं मनाया। आनन्द—पांच-दस मिनट के लिए नहीं, किन्तु पांच-दस घण्टों के लिए। 'Not drops but tons' (बूंदों से नहीं, पर 'टनों' से)।'

'कब ?'

'अभी।'

'Impossible'. (अशक्य)

'क्यों ?'

'मैं 'पपा' व 'ममी' के साथ सूरत जाने वाली हूँ।'

'सूरत गया जहन्नुम में,' केकी ने घबराकर पैर पर 'रैकेट' पटकते हुए कहा।

'यह कैसे हो सकता है ? फिर कांग्रेस का क्या होगा ?' ज़रा मज़ाक में सुलोचना ने कहा।

'वह भी जाय भाड़ में। You cannot go (आप जा नहीं सकतीं।) कुछ भी करके रहिए।'

'पर है क्या ?'

'"केकी क्लब" का उद्घाटन है।'

' "केकी क्लब" क्या ?' हंसकर सुलोचना ने पूछा।

'यह मैं केकी,' हंसकर केकी ने कहा, 'उसका एक 'क्लब' जिसका प्रधान मैं हूँ, मंत्री मैं हूँ।'

'और सदस्य—'

'वह भी मैं हूं। और जब चाहे तब निःशुल्क सदस्य घटते व बढ़ते हैं।'

सुलोचना हंसी, 'उसका क्या है?'

'उसका उद्घाटन है।' केकी ने हंसकर कहा। सुलोचना भी खूब हंसी। 'पपा को कह दो कि मेरे मित्रों की 'पार्टी' है।'

'इस तरह क्या वे मानेंगे? एक बात हो तो ठीक हो सकता है। क्या किसी लड़की को बुलाओगे?'

'हुं' केकी ने क्षण-भर विचार किया, 'मेरा क्लार्क है, मेरी रिश्तेदार है, 'इन्टर' में पढ़ती है। क्या आप नहीं पहचानतीं? उसे व उसके मित्र रुस्तम पहलवान दोनों को बुलायंगे।'

' 'पपा' इस तरह नहीं मानेंगे।'

'क्या करूं, मेरे 'पपा' नहीं है; नहीं तो कब से मनाना सीखता। 'माननीय'! कोई तो रास्ता निकालो,' केकी ने निराशा से याचना की।

'एक काम कर तो 'पपा' मानें।'

'क्या?'

'क्या तुम प्रोफेसर कापड़िया को पहचानते हो?'

'हां, उस 'Old ass' (बूढ़े गधे) को कौन नहीं पहचानेगा?'

'क्या तुम्हें पता है वह 'Old ass' मुझसे 'Love' (प्रेम) करता है?' हंसकर सुलोचना बोली।

' By jove!' केकी बोला, 'क्या कहती हो?'

'याने मेरी देखभाल के लिए वे हमारे घर रहेंगे, और वे होंगे, तो 'पपा' मुझे यहां अकेली रहने देंगे। पर 'पार्टी' में आने की कठिनाई तो रहेगी ही।'

'वह किस काम का?' थोड़ी देर निराशा से बालों में अंगुलियां डालकर उन्हें संवारने लगा। थोड़ी देर तक दोनों चुप रहे। एक विचार आने से केकी ने आनन्द से पैर पटका।

'उस 'Idiot' मार्तण्डकर को बुलाऊंगा। वह बहुत बार चुपचाप मेरे 'क्लब' में आ गया है। कापड़िया के कालेज में संस्कृत का 'Lecturer' है।'

'Splendid !' सुलोचना की आंखें चमकीं, 'आदमी तो अच्छा है न ?'

'हां ! गये महीने में मुझसे दो-सौ रुपये उधार ले गया है।'

'अच्छा ! तब क्या हम लोग परसों 'पार्टी' नहीं रख सकते ?'

'परसों ! इसमें क्या है ? पर—'

'चौबीसवीं हो तो 'पपा' को कह सकूंगी कि 'कांग्रेस-अधिवेशन' के पहले सूरत पहुंच जाऊंगी।'

'हां, यह भी ठीक है।'

'क्या गमन है ?' जरा शैतानी से सुलोचना ने पूछा।

'वह तो कल सूरत गया।' केकी ने तिरस्कारपूर्वक कहा।

सुलोचना क्षण-भर इस फक्कड़ नवयुवक की ओर देखती रही। उसे इसके साथ कितना आनन्द आता है !

'अच्छा तो मैं कापड़िया के यहां जाती हूं। पर मार्तण्ड को कल सुबह के पहले निमन्त्रण मिलना चाहिए।'

'Certainly, (अवश्य) नमस्ते।' कहकर रुख ने सुलोचना से हाथ मिलाया, केवल हाथ ही नहीं मिलाया, पर जरा ऊर्मिपूर्ण हाथ आगे बढ़ाया।

: २ :

सुलोचना की युक्ति सफल हुई। 'माननीय' जगमोहनलाल कांग्रेस की झंझट में इतने व्यग्र थे कि उनका लड़की पर अत्याचार करने का मन नहीं हुआ; और २३ तारीख की रात को ग्रांट रोड पर 'माननीय' व गौरी बहन सूरत गाड़ी में बैठने के लिए आये। जब तक 'मान-

नीय' वापस न आएं तब तक कापड़िया ने सुलोचना के साथ बालकेश्वर रहना कबूल किया था।

दूसरे गांव से स्वामी के लौटने पर कुत्ते को जैसे उत्साह होता है वैसे ही कापड़िया ने सुलोचना के साथ रहना कबूल किया। पूंछ हिलाने के बदले वे सब समय हाथ घिसते थे। जीभ से चाटने के बदले उनके ओंठ बोलने के लिए लालायित होते थे। सूंघने के बदले वे हमेशा आसपास घूमा करते थे। इस प्रकार की चञ्चलता जब वे कोई अच्छी पुस्तक पढ़ते, कोई नया दृष्टि-बिन्दु देखते, या नया सिद्धान्त सुलझाते, तब उनके मुख पर हमेशा दिखाई देती थी; इससे वह किसीको असाधारण नहीं लगी।

इस चञ्चलता ने कापड़िया के बोलने की शक्ति हर ली थी। जिस प्रकार ठंड से अकड़ता हुआ व्यक्ति अग्नि के पास चुपचाप तापता है, उस प्रकार वे बोले बिना इस नई आई हुई गरमी का मज़ा लेते थे। इस गरमी से उन्हें सन्तोष था।

जब वे घर गये तब प्रोफेसर का विचार बैठक में बैठ सुलोचना के साथ कुछ बातें करने का था; पर सुलोचना कल के सपनों का अनुभव लेने के लिए उत्सुक थी, इससे वह सोने चली गई।

कापड़िया हमेशा के समान हाथ में एक पुस्तक लेकर पढ़ने बैठे। पुस्तक कानून की थी—'Dicey's Conflict of Laws' इस समय इस पुस्तक में उनका मन लगा हो, ऐसा नहीं लगा। वे जब-कभी सिर ऊंचा करते व आंखें इधर-उधर फेरते थे; थोड़ी देर बाद उन्होंने पुस्तक नीचे रखी। वे उठकर ऊपर गये, और जब सुलोचना के बन्द दरवाजे पर से निकले तब कहीं मन्दिर के देव कहीं जाग न जायं ऐसे भय से नीची दृष्टि कर धीरे-धीरे वे चले गये। थोड़ी देर बाद दूर जाकर वे उसके दरवाजे के सामने देखते रहे और ध्यान से सुनते रहे। थोड़ी देर में जरा हंसकर वे चले गये। अपने सोने के कमरे में जाकर उन्होंने कागज़-पेन्सिल लेकर लिखना शुरू किया—

'प्राणीशास्त्र के नियम,

प्राणियों का आकर्षण।

आकर्षण का रूप।

उसका मनुष्यों में परिवर्तन।

वृद्ध व कुरूप का युवा व रूपवान् की ओर आकर्षण।

प्रेम व आकर्षण के बीच अन्तर।'

इस प्रकार लिखते-लिखते मध्य-रात्रि बीत गई। सबेरे चाय पीते समय सुलोचना ने कहा—'काका! दिन-भर क्या करेंगे? मैं तो बिलकुल शाम को आऊंगी।'

कापड़िया ने रक़ाबी में से सिर ऊंचा किया। 'क्या करेंगे? बैठे-बैठे लिखूंगा। मैं भी छोटा होता तो आता! साथ में गणपत को ले जाती है न?'

'क्या काम है? हम लोग मुस्लिम-काल में थोड़े ही रहते हैं? मुझे क्या कोई खा जायगा?'

'कुछ आवश्यकता पड़े।'

'नहीं, देखिये मेरे मित्र लोग आ गए।'

इतने में एक गाड़ी में मेरां क्लार्क, रुस्तम 'पहलवान', गणपतराम मार्तंडकर, और एक दक्षिणी आये।

'ओह हो, प्रोफेसर साहब, कैसे हैं?' कह मार्तण्डकर ने प्रोफेसर से हाथ मिलाया, 'मिस सुलोचना, कैसी हैं?'

'हल्लो मेरां!' सुलोचना ने कहा, 'क्यों रुस्तमजी, चाय तो लेंगे न?'

'दीयर', 'दीयर' 'माननीय', लेंगे ही!' मेरां ने बारीक आवाज़ में जवाब दिया।

'हां, बहुत खुशी से।'

'ये मेरे मित्र हैं,—' मार्तण्डकर ने कहा, 'मेहमान हैं, पूना से आये हैं, मि० अभयंकर।'

'थैंक्यु ! थैंक्यु !' करते हुए मि० अभयंकर ने हाथ मिलाया और सब बैठे।

मेरां व रुस्तम को प्रोफेसर की उपस्थिति से जरा क्षोभ होने लगा।

मेरां क्लार्क जरा मोटी व देखने में सादी थी। उसके बाल पक्षी के घोंसले के लिए विशेष रूप से तैयार करने में आये हों ऐसे मोटे, चौड़े व फैलाये हुए थे। वह लचकती हुई चलती थी, और बारीक आवाज़ मे हंसती थी। चाहे जिसके साथ व चाहे जहां, चाहे जैसी मज़ाक करने में वह निष्णात मालूम पड़ती थी।

रुस्तम 'पहलवान' के नाम से जाना जाता था। वह ऊंचा व मोटा था। उसके गाल इस प्रकार भरे हुए थे, मानो वह बिगुल ही बजाया करता हो। उसकी छोटी नाक मानो बनाते समय अधबीच में कोई रुक गया हो, ऐसा भास होता था। जिस प्रकार मेरां बारीक आवाज़ में हँसती थी, उस प्रकार रुस्तम खुरखुरी आवाज़ में हंसता था; और दोनों एक साथ हंसते तो ऐसा मालूम पड़ता कि कोई मानो चाहे जैसे 'हारमोनियम' पर घूँसे मारता हो।

मि० गनपतराव मार्तंडकर उर्फ अन्ना साहब लगभग पैंतीस वर्ष के, मोटे, अधिक काले, बहुत गम्भीर संस्कृत के अभ्यासी व अतिशय विद्वान् मालूम पड़ते थे। वे जन्म से गुजराती थे व पूना में रहकर संस्कृत भाषा के सात समुद्र पार कर गए थे, और 'मार्कंड' उपनाम गौरवशील न मालूम पड़ने से उसे उन्होंने मार्तंडकर का रूप दिया था। उनके मुख पर आजन्म उपदेशक का तेज सदा ही दीखा करता था। उनकी आंखों से शिक्षक की कड़ाई कदाचित् ही अदृष्ट होती थी। वे बोलते तो मानो जीभ पर कांटा रखकर, उसमें से माप-तोलकर घी बेचते हों, इस ढङ्ग से। वे हँसते तो मानो कोई महादरिद्री दयार्द्रता के पागलपन में दान के लिए पाई निकालकर बटुए का मुंह धीरे से खोलता हो, ऐसा लगता था। वे हाथ मिलाते तो हाथ अधिक ऊँचा-नीचा करने से शेषनाग पर अधिक भार हो जाता हो इस प्रकार धीरे-से हाथ मिलाते थे।

अभयंकर दुबला व ऊंचा तथा तेजहीन युवक था। अन्ना साहब के शब्द सुनकर उनसे सम्मत हुए बिना जन्म लेने या जीवित रहने का कोई भी कारण न होगा, ऐसा दिखाई देता था।

'कापड़िया साहब ! आज हम वरसोवा जाने वाले हैं। सृष्टि-सौंदर्य से मन का विकास होता है। इस छोटे मस्तिष्क पर सौंदर्य व स्वातन्त्र्य की जब-कभी छाप पड़ना बहुत अच्छा है।'

कापड़िया ने आंखें इधर-उधर कर सूँघनी सूँघी। 'इन सबको ठीक से रखना। समझे ? हा-हा-हा।' उन्होंने कहा।

'मैंने सूचना दे दी है—क्या पूछा प्रोफेसर कापड़िया ?—कि हम कोई सीख सुनने के लिए तैयार नहीं हैं।'

'सीख सुनने के लिए तैयार न रहना अधोगति का स्पष्ट चिह्न है। 'Mind must be open. (मस्तिष्क खुला रखना चाहिए।)' अन्ना साहब ने कहा।

'That's it,' प्रशंसक की तत्परता से अभयंकर ने कहा।

'यह मेरा अभयंकर—'

'मि० मार्तंडकर ! चाय ठंडी हो जाती है,' सुलोचना ने याद दिलाया।

'अन्ना साहब, कहने से बोलने में सुगमता व स्नेह में वृद्धि होगी,' जरा जोरदार अंग्रेज़ी में अन्ना साहब ने कहा।

'अच्छा,' हंसकर सुलोचना ने कहा। मार्तंडकर को केकी ने क्यों साथ में लिया था, इसका ख्याल उसे हुआ।

'Don't be silly' (बेवकूफ न बनो) अन्ना साहब !' प्रोफेसर ने कहा, 'सीख देने वाले के सिवाय किसीको सन्तोष नहीं देती। सीख लेने वाला, यदि उसके अनुसार चले तो स्वमान भङ्ग हो जायगा; नहीं चले तो स्वर्ग से भ्रष्ट हुआ हो, ऐसा असन्तोष उसे दुःखित करता है।'

'पर आप तो रोज सीख देते हैं।'

'हां, इसीसे ही मेरी पाचन-क्रिया चलती है, हा, हा।' कापड़िया ने हंसकर कहा—'पर मैं सीख ऐसे रूप में देता हूँ कि किसीकी समझ में

नहीं आती। इससे किसीको कोई तकलीफ नहीं होती, समझे ?'

'अच्छा, तब मैं कपड़े पहनकर आती हूं,' कह सुलोचना चली गई और उसके पीछे मेरी दौड़ती-दौड़ती उठी।

थोड़ी देर में जब सुलोचना मित्रों के साथ चली गई तब प्रोफेसर उसके पीछे देर तक देखते रहे। उनकी छोटी आंखों के निस्तेज गाम्भीर्य में विकल दयार्द्रता दृष्टिगोचर हुई। वे अपना लेख लिखने बैठे।

: ३ :

केकी का 'क्लब' वरसोवा गया। 'ट्रेन' में मेरी सीटी बजाती थी व रुस्तम मुंह-मुंह से 'पकभम' कर तबला बजाता था। मार्तंडकर सबके उद्धार के लिए सीख देते थे और अभयंकर सबकी बातें सुनते थे। केकी हंसता-हंसाता और बाल संवारता था। सुलोचना यह मज़ा देख-सुनकर आनन्द मनाती थी। उसे स्वातन्त्र्य का मजा आने लगा था।

अंधेरी से तांगे में बैठ सब वरसोवा गये। सवेरे की हवा, रेती के ढेर, समुद्र-तरंगों का नर्तन, उछलता हुआ यौवन, विजातीय मित्र; तब क्या चाहिए ? मेरी व सुलोचना कूदने-फिरने लगीं। सब दौड़े, कूदे व गिरे।

अन्त में पुरुष-वर्ग समुद्र में कूदा। पहले स्त्री-वर्ग लज्जित होता, हिचकिचाता हुआ किनारे पर खड़ा रहा; फिर हंसकर सिर नीचा किया; फिर मेरी नहाने का लिबास पहन, आंखें बन्द कर कूद पड़ी; फिर सुलोचना नहाया जाय या न नहाया जाय इसका विचार करने लगी, और अन्त में हिन्दू लड़की की लज्जाशीलता की जीत होने से वहीं खड़ी रही।

दोपहर हुआ और सब किसीके एक खाली बंगले में गये और माली को रुपया देकर दरवाज़ा खोला। वहां जाकर नाश्ता किया; खा-पीकर सब थोड़ी देर आराम करने लगे। शाम को पांच बजे चाय

बनवाकर उन्होंने पी और वापस लौटने की तैयारी की।

शान में आया हुआ केकी का 'क्लब' रात होने पर 'ग्रांट रोड' लौट आया।

सुलोचना ने घर जाने की प्रार्थना की, पर सबने उसे हंसी में उड़ा दिया। सच्चा उद्घाटन तो अब होने वाला था।

सब केकी के घर गये। शौकीन केकी का 'फ्लैट' स्वच्छ व सुन्दर था, और वहां भोजन की तैयारी हो रही थी।

प्रत्येक व्यक्ति हंसता, गड़बड़ करता हुआ आया और फूलों से सुसज्जित टेबल को देख ताली बजाने लगा। केवल अन्ना साहब जो न्याय के सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण करते थे, अपना काम करते रहे; और केवल अभयंकर ने 'अच्छा, अच्छा' कर अपना ध्यान उस ओर है इसका प्रमाण दिया।

एक सुन्दर छोटे कमरे में सुलोचना व मेरी वस्त्र ठीक करने गईं। सुलोचना का मुख लाल सुर्ख हो गया था; और धूप, तूफान, हास्य व मौज से उसका खून उछल रहा था। बाल संवारते हुए सामने पड़े हुए केकी के 'फोटो' को वह टकटकी लगाकर देखने लगी। यह जीवन कितना आनन्दमय था! इस जीवन का नायक····कितना अच्छा हो?

मेरी सीटी में 'ला-मार्सीस' बजाती हुई आई, व स्तम्भ तालबद्ध हाथ-पैर ऊंचे-नीचे करता हुआ रुस्तम उसके पीछे आया। चमकती हुई आंखों व बालों से सुशोभित केकी नये कपड़े पहन सबका स्वागत करता हुआ खड़ा था। तीन नौकर—'बोयज़',सफेद चांदी-जैसे भेष में मूर्तिवत् कुरसियों के पीछे खड़े थे। अन्ना साहब व अभयंकर आये।

'अभयंकर! इतना याद रखना कि हमारी आर्य-संस्कृति का आधार हमारे चरित्र पर है, और हमारे चरित्र का आधार हमारे संयम पर है, और संयम का आधार—'

'आइए अन्ना साहब! यह आपकी है,' केकी ने कहा, 'और अभ-यंकर! आप यहां आइए।'

'—हमारे संचित पर है।' अन्ना साहब नीचे झुककर टेबल पर रखे हुए फूल को नाक लगाकर सूंघने लगे। 'यह देखो! रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द की मोहिनी क्या कुछ कम है? इससे आत्मा अधम बनता है—केकी! तुम्हारा मकान सुन्दर है। तुझे सब व्यवस्था आती है। 'सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ते।' ठीक है न अभयंकर?'

'आइये 'माननीय'!' केकी ने आगे बढ़कर स्वागत किया।

जरा लज्जित होती सुलोचना आई और केकी के पास बैठी। मेरां ने सीटी की तर्ज़ बदल दी। रुस्तम टेबल पर तबला बजाने लगा। केकी ने 'बॉय' को इशारा किया, इससे वह भोजन लाने लगा।

'केकी!' अन्ना साहब ने कहा, 'पैर लटकाकर बैठना शास्त्र-विरुद्ध है; वैद्यक-ग्रन्थ इस तरीके के विरुद्ध हैं।' उसने 'बूट' निकाल धीरे-से कुरसी पर पैर रख आसन जमाया। 'अभयंकर—'

'रुस्तम! क्या लोगे? 'कॉकटेल'? मेरां, तुम?' केकी ने पूछा।

'—इतना याद रखना कि भोजन के समय लिप्सा नहीं रखनी चाहिये। इससे शरीर का सामञ्जस्य बिगड़ता है।'

'—नहीं, शेंपेन,' मेरां ने कहा।

'—भोजन के समय ऊंचे प्रकार की ज्ञानगोष्टि से ही शरीर व आत्मा को शान्ति मिलती है।' अन्ना साहब ने कहा; 'केकी! रजोगुण अशान्ति की जड़ है—विशेषरूप से भोजन करते समय। मैं 'चम्पीन' ले सकता हूं, अभयंकर! तुम जरा चखना।'

' 'माननीय' आप?'

'कुछ नहीं।'

'क्या ऐसा हो सकता है? मेरे 'क्लब' के उद्घाटन का क्या होगा?'

सुलोचना सिर नीचा कर 'नहीं', 'नहीं' कहने लगी।

'यह नहीं हो सकता, मेरी कसम!' केकी ने कहा।

सुलोचना ने सिर नीचा रख आंखें ऊंची कीं। उनमें तेज चमकता था।

'आपकी इच्छा—'

'मिस सुलोचना,' अन्ना साहब बीच में बोल उठे, 'यद्यपि 'शुद्धं लोकविरुद्धं न करणीयम्' का सिद्धान्त हमेशा लागू नहीं होता, इस समय 'चम्पीन' लोकविरुद्ध नहीं है, और द्राक्षासव है, इससे शुद्ध है। कोई काम वासना से करने से ही अशुद्ध बनता है।'

'अच्छा ! जरा—' सुलोचना ने कहा।

'रखो।' केकी ने कहा।

'नहीं, नहीं, इतनी ज्यादा—'

'तुम रखे जाओ,' रुस्तम ने कहा।

'किसीको कुछ आता नहीं,' कहकर मेरां ने 'बॉय' के हाथ से बोतल लेकर सुलोचना के ग्लास में 'शैंपेन' डाली।

'अररररर !' एक बड़ी मछली रकाबी में पड़ी हुई देखकर सुलोचना बोल उठी।

'ए बेवकूफ' कहकर केकी ने 'बॉय' को चपत जमाई। 'ये 'मीट' मांस नहीं खातीं।'

'बॉय' ने कांपते हुए हाथ से रकाबी उठा ली।

'हिन्दू-शास्त्र में मांसाहार निषिद्ध है, ऐसा कितने ही मानते हैं...,' अन्ना साहब बोलने लगे।

'जरा 'एग्स' (अंडे) तो लाओ,' मेरां ने आवाज़ दी, और टेबल के नीचे से सुलोचना का पैर दाबने के बदले केकी का पैर दाब दिया।'

'हिन्दू-शास्त्र पहले ही से मांसाहार के पक्ष में हैं। 'बॉय' एक और 'फिश—।'

'बॉय' के हाथ में एक ही 'फिश' होने से अन्ना साहब ने असन्तोष प्रकट किया, 'अभयंकर ! यह तो जल फल—,'

'मेरां बहन,' अपना पैर दबाये जाने से केकी हंसकर बोला, 'मेरा पैर दर्द नहीं करता। पहलवान के पैर को ही दबाते रहो—'

'ओ ! You unchivalrous brute !' (स्त्री-सम्मानरहित पशु) मेरां चिल्लाई।

'Fickleness ! Thy name is woman.'(अस्थिरता, तेरा ही नाम स्त्री है) रुस्तम ने मेरां के कन्धे पर एक चपत जमाई।

'स्त्री अस्थिर नहीं है, स्थिर है,' अन्ना साहब ने कहा, 'नारी प्रत्यक्ष राक्षसी है, ऐसे शास्त्र के वचन हैं। उसका यह स्वभाव बदला नहीं। अभयंकर ! जब से विश्वामित्र ने मेनका को —'

' 'शेम' ! 'शेम' !' (धिक्कार ! धिक्कार !) मेरां ने कहा।

'आर्डर ! आर्डर !' सुलोचना ने कहा व टेबल पर छुरी ठोकी।

'माननीय !—माननीय ! सुनिए।'

'—मेनका का त्याग किया, उसी समय से स्त्री का एक ही प्रकार का स्वभाव है।'

'अन्ना साहब ! स्त्री का द्वेष न करें, नहीं तो मैं व मेरां—'

'यह क्या गालियां दे रहे हैं ?' मेरां ने आंखें निकालकर कहा।

'मैं,' मुंह का निवाला ज्यों-त्यों ठिकाने लगाकर अन्ना साहब बोले, 'स्त्रियों के प्रति बहुत आदर रखता हूँ। मनु महाराज का वचन है'—कह उन्होंने 'शेंपेन' के ग्लास की सहायता से निवाला गले के नीचे उतारा, 'यत्रनार्यस्तु'—पता है न ?'

' 'माननीय' आपका मुख लाल हुआ है। देखिए इस ग्लास में दिखाई देता है। 'Lovely !' केकी ने सुलोचना से कहा।

'क्या निर्लज्ज बनते हो, केकी ?' सुलोचना ने लज्जित होकर कहा।

'नहीं होऊंगा ! पर यह 'शेंपेन'—'

'थोड़ी लेती हूं—'

'क्या यह हो सकता है ?'

' 'शेंपेन', 'शेंपेन' ! 'माननीय' लीजिए,' मेरां चिल्लाने लगी।

'नहीं, धन्यवाद—'

'थोड़ी,' अन्ना साहब ने कहा, 'थोड़ी ली तो भी क्या और अधिक ली तो भी क्या। एक बार मुसलमान का पानी पिया या अनेक बार।'

: ४ :

एक घण्टे में नई सृष्टि पैदा हुई। अन्ना साहब, केकी व पहलवान सिगार पीने लगे थे, और कमरे में सब जगह धुआं फैल रहा था। पेट भरने पर ये तीनों व मेरां 'शेम्पेन' पर हाथ साफ कर रहे थे।

'केकी!' अस्थिर आंखों व खुरखुरी आवाज़ से अन्ना साहब बोलते थे, 'याद रखना कि चरित्र के बिना मनुष्य पशु-समान है।' यह शास्त्र-वचन कभी न भूलना चाहिए। अ—अहा—अहा—'—उन्हें हिचकी आई इससे उसे शान्त करने के लिए उन्होंने ग्लास लिया। 'वचन···· शास्त्र का मनु—अहह केकी!'

'मेरां, तुम्हारे बाप के लिए सबका 'टोस्ट' लेता हूं—' पहलवान बोलता था। उसने एक हाथ से मेरां की कमर पकड़ी थी।

'धिक्कार! अपने ही बाप का 'टोस्ट' लो,' मेरां ने उत्तर दिया।

'माननीय!' धीरे-से बोलते हुए केकी के मुंह से जोर की आवाज़ निकल गई, 'आप बहुत ही सुन्दर हैं—'

'म—मनु महाराज ने कहा है, केकी, कि 'दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं.... मन....पूतं समाचरेत्।' अब स्वच्छन्दता में मेरा विश्वास नहीं है। मैं संयम, त्— तप व वैराग्य में अह....'

'यह मनु मुआ कौन है?—' मेरां ने टेबल के नीचे पैर बढ़ाकर केकी को एक लात मारी।

'केकी! मेरा घर जाने का समय हुआ,' चमकती हुई आंखों से सुलोचना ने कहा।

'मनु महाराज!—मेरां क्लार्क! वे प्राचीन आर्यावर्त के आद्य-

शास्त्रकार थे। सूर्य के पुत्र को—बाँय ! शैंपेन ! नहीं 'व्हिस्की' क्या बुरी है ? बाय ! व्हिस्की !—'

'माननीय ! अभी क्या जल्दी है ? आप जायंगी तो—'केकी ने टेबल के नीचे हाथ बढ़ाकर सुलोचना के पैर पर रखा।

'बाय ! जरा डालो।' सुलोचना अपने हाथ से उसका हाथ हटाने गई, और हाथ वहीं रह गया।

'अन्ना साहब, ऐसा 'नॉन्सेन्स' (निरर्थक) क्यों बोलते हो ? आपके शास्तर-वास्तर से तोबा। अन्ना साहब दीर्घजीवी बनना, और—और मेरां बाई—' रुस्तम ने कांपते हुए हाथ से ग्लास लिया।

'माननीय ! आप मेरा हृदय हैं,' केकी ने कांपती हुई आवाज़ में सुलोचना के कान में कहा।

सुलोचना उत्तर देने लगी, पर जीभ सूखने से उसने स्नेहार्द्र दृष्टि डालकर सन्तोष माना।

'रुस्तम ! शास्त्र की अ—व—अह—अह—तुम अनार्य क्या समझो ? हम तपस्वी—'

'माननीय ! यह क्या बकता है ?' मेरां ने पूछा, 'अरे रे ! मरो तुम !' वह कुरसी हटाकर चिल्लाई। रुस्तम ने गलती से ग्लास मुंह पर डाला था।

'तपस्वी याने जोगी—' सुलोचना ने कहा।

'जोगी—मैं जो-जो-गी।' अन्ना साहब ने कहा।

'जोगी—' रुस्तम ने कहा व गाने लगा—

"पुष्प काज जोगी बनें व भैंस की पकड़ी पूंछ।
इस मेरां काज जोगी बनें व अन्ना साहब की पकड़ी पूंछ।"

'मिस सुलोचना ! तप व योग में ब-बहुत—तप में रूप व रस-स—सबका 'तपस्वीभ्योऽधिको योगी—' अन्ना साहब ने कंधे पर सिर डालते हुए कहा।

रुस्तम ने गाना चालू ही रखा।

"अपनी गाड़ी धीरे हांको ऐ मेरां गाड़ी वाले—"

'माननीय ! मैं आपको चाहता हूं,' मानो सुलोचना बाहर हो इस प्रकार उसके कान के पास मुंह लाकर सब सुनें, ऐसे कहा।

'Don't be a fool (मूर्ख न बनो)।' सुलोचना ने कहा, और केकी का हाथ दबाया।

मेरां ने दोनों ओर देखा और दो रुस्तम दिखाई देने से, समझ न पड़ने से अभयंकर के कंधे पर हाथ रखकर कहा—'मैं तुम्हें चाहती हूं।' अभयंकर रोनी सूरत हो गया था और पागल के समान बैठा था, बोलना न सूझने से वह मेरां का सिर सहलाने लगा।

'मुझे कोई तपस्वी कहे—? किसकी मजाल—मनु महाराज तस्पवी—केकी—' कहकर अन्ना साहब ने टेबल पर सिर डाल दिया।

रुस्तम गाता ही रहा—

"समुद्र-तट पर होटल निकालो,
और पियो 'ब्रॉण्डी' वीर।
लिया जिसका कभी न फेरें,
भाई कहें व मनु फकीर॥"

मेरां अभयंकर को रुस्तम मानकर निश्चिन्तता से उस पर सिर रखकर पड़ी रही।

'माननीय ! क्या मुझसे विवाह करेंगी ?'

'सुलोचना ने सिर ऊँचा किया। उसकी आंखों के सामने दीये नाचते थे, और केकी की चार-चार आंखें नाचती थीं। उसने हाथ बढ़ाकर केकी का हाथ पकड़ा, केकी ने बायां हाथ सुलोचना के पीछे डाला।

'मेरी जिगर ! मेरी 'लव' !' केकी निस्तेज आंखों से बड़बड़ाने लगा।

'मेरे दिलदार !' मेरां अभयंकर का हाथ सहलाती हुई बोलती थी।

रुस्तम ने जोर से सिर धुनाकर गायन चालू रखा—

"अपनी गाड़ी धीरे हांको ऐ मेरां गाड़ीवाले।"

एकदम किसीने दरवाज़ा जोर से खटखटाया। भूकम्प हुआ हो, इस प्रकार दरवाज़ा हिलने लगा, और कमरा भी हिला। कोई दरवाज़े को पैर से मार रहा था।

सुलोचना घबरा गई—'कौन है ?'

'जिगर !' केकी ने कहा, 'कोई नहीं। पड़ोसी के घर साले बदमाश हैं....।' उसने कुरसी पर सिर डाल आंखें बन्द कीं।

'मेरा गाड़ी वाले।' रुस्तम ने अन्तिम बार पलटा।

दरवाजा जोर से हिला।

'कौन है ?' रुस्तम ने कहा और वह उठा।

'बोलो मत,' सुलोचना ने विनयपूर्वक कहा।

'क्यों न बोलूं ?' रुस्तम ने शान से कहा, 'आओ दोस्त !' कहकर वह दरवाजे के पास गया।

'किसके बाप को पड़ी है, बेटा !' केकी अपने को ही धीरे-धीरे सम्बोधित करने लगा।

"घूंघट के पट खोल"

गाता हुआ रुस्तम उठा व उसने दरवाजा खोला; और गमन दलाल का पैर मारने से लाल बना हुआ मुख दिखाई दिया। रुस्तम उसके गले से लिपट गया।

'मेरे दोस्त ! गमन ! आओ ! तुम्हारी ही बात हो रही थी।'

गमन के पीछे प्रोफेसर कापड़िया आये। उन्होंने अंदर से दरवाजा बंद किया व स्तब्ध बन वे कमरे में देखते रहे।

'कौन कापड़िया !' रुस्तम कापड़िया की पीठ ठोकने लगा। 'घबराओ नहीं। 'Welcome !' महफिल तैयार—'

अन्ना साहब ने सिर ऊँचा किया व बड़बड़ाने लगे—'दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं शास्त्रपूतं समाचरेत्।'

केकी सुलोचना को धक्का देकर आत्म-संतोष से बड़बड़ा रहा था। मेरा अभयंकर के कन्धे पर सिर डालकर छत की ओर देख रही

थी। अभयंकर कुरसी पर सिर रख ऊंघता था।

अकेली सुलोचना होश में थी, और घबराहट के कारण इधर-उधर देखती थी। चारों ओर पड़े हुए मित्रों की स्थिति का उसे तीव्र भान हुआ। उसका सब नशा बिलकुल जाता रहा था। शरमाती हुई, घबराती हुई वह खड़ी हो रही।

उसकी आंखों के सामने दृढ़ भावनाशील सुदर्शन की निश्चल आंखें दिखाई दीं व अदृष्ट हुईं। उसने अधमता का पूरा स्वाद चखा।

'सुलोचना !' कापड़िया ने सूंघनी सूंघते हुए कहा।

'गमन ! कुछ लोगे ? कापड़िया, क्या लोगे ?' रुस्तम ने पूछा।

सुलोचना उठकर कापड़िया के पास गई।

'सुलोचना ! चलो।' स्नेहपूर्वक कापड़िया ने कहा। उसकी आवाज में डांट-फटकार का जरा भी अंश नहीं था। 'नीचे गाड़ी लाया हूं।'

'केकी ! 'Good night !' सुलोचना ने कहा।

'I don't care,' सब सुनें इस प्रकार वह बड़बड़ाया, 'किसकी परवाह है जिगर ! 'Dear' (प्यारी) कल सवेरे—Happy dreams (सुख के सपने)।' वह कुरसी पर से गिरता-पड़ता उठा व दरवाजे के पास आया।

सुलोचना उस पर एक दृष्टि डालकर बाहर निकली। उसके पीछे कापड़िया निकले।

केकी दरवाज़े में खड़े-खड़े सुलोचना के लिए चुम्बन भिजवाता था। इस लज्जाजनक प्रसंग के लिए सुलोचना जल-सी जाती थी। कापड़िया घर जाते समय या रात में घर पर एक भी शब्द न बोले।

: ५ :

सवेरे सुलोचना देरी से उठी। जब तक वह न आई तब तक काप-ड़िया ने चाय नहीं पी। और जब सुलोचना को पता लगा कि कापड़िया

उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं तब ज़बरदस्ती उसे नीचे आना पड़ा।

सुलोचना चाय डालने लगी। दोनों में से एक भी न बोला। आखिर कापड़िया ने चश्मा लगाया, सूंघनी सूंघकर खांसकर गला साफ किया।

'सुलोचना, क्या तुमने प्राणीशास्त्र पढ़ा है ?'

'नहीं।'

'प्रकृति ने लज्जा किसलिए बनाई है, क्या यह जानती है ?'

'नहीं' नीचा सिर कर घबराती हुई सुलोचना बोली।

'लज्जा एक बड़ा दुर्ग है। इससे भावी प्रजा की रक्षा होती है।'

'किस तरह ?' सुलोचना ने पूछा।

'नहीं समझी ? यदि लज्जा न हो तो स्त्रियों में से सङ्कोच चला जाय। यदि सङ्कोच चला जाय तो पुरुष को पसंद करने का उसे समय न मिले; यदि समय न मिले तो 'Sexual selection' कैसे हो सकता है ? स्त्री-पुरुष एक-दूसरे को कैसे पसंद कर सकते हैं ? और यदि पसंद करने के लिए न ठहरें तो प्रेम कैसे उत्पन्न हो सकता है ? इस-लिए जितनी लज्जा अधिक होगी उतनी ही प्रेमपात्र की पसंदगी अच्छी होगी। समझीं ?'

सुलोचना ने सिर नीचा किया।

'मैं दोष नहीं देता' हाथ घिसते हुए प्रोफेसर ने कहा; 'क्योंकि जहां स्त्री-पुरुष इकट्ठे हुए हों वहां दोष किसे दिया जाय ? मैं सीख नहीं देता, क्योंकि स्त्री-पुरुष के आकर्षण पर सीख का अधिकार नहीं है। मैं तो प्राणीशास्त्र का सिद्धान्त बताता हूं, बहुत उपयोगी सिद्धान्त है।' प्रोफेसर ने आंखें बंदकर सूंघनी सूंघी। 'सच्चा प्रेम है या नहीं, यह जानना हो तो लज्जा के पट के पीछे स्त्री को छिप जाना चाहिए। पुरुष आयगा, चालाक होगा तो लज्जा के पट को हटाने का प्रयत्न करेगा। उस पट को हटाने में जितनी मेहनत होगी, उतनी उसकी भक्ति बढ़ेगी, और स्त्री का उसके प्रति आदर बढ़ेगा। और लज्जा के

इस महादुर्ग का केवल प्रेम ही भेदन करेगा।'

सुलोचना नहीं बोली।

'क्या तुम केकी को चाहती हो ?'

सुलोचना ने एकदम सिर ऊंचा किया—'हां।'

'क्या तुम किसी दिन लज्जा के गढ़ में छिपकर बैठी हो ?'

'नहीं।'

'तब कैसे जाना कि उसे तुम सच्चे प्रेम से चाहती हो या वह तुम्हें सच्चे प्रेम से चाहता है ?'

'मुझे पता है।'

'अर्वाचीनता ने तुम्हें निर्लज्ज बनाया है, इससे प्राणीशास्त्र के नियमों का उल्लङ्घन तुमने किया है। तुम लज्जित नहीं होतीं, इससे तुम-से सच्चे प्रणय की परख नहीं होती।'

सुलोचना हंसी।

'केकी तुम्हें नहीं चाहता।'

'आपने कैसे जाना ?'

'यदि चाहता हो तो ऐसी निर्लज्ज 'पार्टी' में प्रणय न बताए। वह खोखला है, निर्लज्ज है, धन के गर्व में पागल है। उसे लज्जाशील स्त्री की कीमत नहीं है।'

'मैं आपके विचार से सहमत नहीं हूं।'

'यदि तुम लज्जा में छिपकर बैठी होती, तो उसकी नालायकी तुरंत तुम्हारी समझ में आ जाती।'

सुलोचना ने सिर धुनाया।

'क्या तुम्हें उससे विवाह करना है ?'

'हां।'

'पारसी है, छैल-छबीला है, पिताजी मना करेंगे।'

'मैं जानती हूँ।'

'तब ?'

'जहां मेरा हृदय, वहां मेरे हाथ।'

'यदि मैं पिताजी को मना लूं तो ?' आंखें इधर-उधर कर कापड़िया ने पूछा, और सूंघनी सूंघी।

'आपका बहुत आभार मानूंगी।'

'एक काम करो।'

'क्या ?'

'एक महीने तक लज्जाशील बनो; यदि वह तब तक प्रणयी रहे, तो फिर मैं मदद करूँगा।'

'अवश्य।' हंसकर सिर ऊंचाकर सुलोचना उठी।

बाहर किसी की गाड़ी आई। सुलोचना का मुँह लाल हो गया। 'केकी आया,' उसने कहा।

प्रोफेसर नहीं बोले। एक नौकर आया, 'बाई, गमनलाल सेठ आये हैं।'

'उन्हें कहो कि बाई को बुखार आया है,' कापड़िया ने कहा।

'Thank you ! (धन्यवाद)' सुलोचना ने कहा।

वह उठकर बाहर गई। कापड़िया कितनी ही देर तक देखते रहे। उनके मुख पर दीनता छा रही थी। सुलोचना को सामने से नौकर मिला।

'बाई ! चिट्ठी आई है।'

सुलोचना ने हर्षित होकर चिट्ठी ली, और उसे लेकर ऊपर अपने कमरे में चली गई। चिट्ठी पर प्रियतम केकी के अक्षर थे।

: ६ :

प्रोफेसर कापड़िया कितनी ही देर तक सूंघनी सूंघते रहे। उनकी आंखें निस्तेज होने लगीं। उनका नीचे का ओंठ ढीला पड़ने लगा। दो घंटे तक वे निराशा की मूर्ति के समान वैसे ही बैठे रहे।

बारह बजे और वे चौंककर उठे। उन्होंने निश्वास लिया, चश्मा ठोककर नाक पर जमाया और नहाने जाने की तैयारी की।

नहाकर उन्होंने सुलोचना की थोड़ी देर तक प्रतीक्षा की, और फिर धीरे-धीरे ऊपर गये। सुलोचना का दरवाज़ा, जो बन्द था, उन्होंने खट-खटाया। कितनी ही देर तक कोई उत्तर न मिला और वे घबराये। क्या सुलोचना ने ज़हर खा लिया?

उन्होंने बहुत जोर से दरवाज़ा खटखटाया, इससे सुलोचना ने खोल दिया। कापड़िया अन्दर आकर स्तब्ध बन गए। सुलोचना की आंखें रोने से सूज गई थीं, उसके बाल बिखर गए थे।

'सुलोचना! क्या है?'

'कुछ नहीं।' सुलोचना ने खाँसकर जवाब दिया और वह पलंग पर बैठ गई।

'यह क्या है?'

'कुछ नहीं।' वही जवाब दुःखपूर्ण आवाज़ में लड़की ने दिया।

'मुझसे कह दो,' बिनती करते हुए कापड़िया ने कहा।

'यह देखो,' कहकर उसने केकी का पत्र दिया। कापड़िया चश्मा ठीक कर पढ़ने लगे। उसका अनुवाद इस प्रकार था—

२६-१२-१९०७

प्रिय मिस जगमोहनलाल,

कल की मूर्खता के लिए मैं माफी चाहता हूं। शराब के नशे में यदि मैंने कुछ कहा हो तो उस पर ध्यान न देना। मैं पारसी व आप बनिया हैं। मुझे जिस प्रकार मानती थीं, उस प्रकार मित्र ही रहें तो?

आपका

केकी

एक क्षण के लिए कापड़िया स्तब्ध हो गए। उन्होंने धीरे-से चश्मा निकाल कर पोंछा और फिर लगाया, सूँघनी सूँघी व हाथ हिलाकर विसे।

'सुलोचना ! तुम इस पशु को चाहती थीं ?'

सुलोचना ने सिर नीचा कर 'हां' कहा।

'तुम्हें इस समय मालूम पड़ता है कि तुम्हारा हृदय भग्न हो गया है, पर यह भ्रम है। तुम उदित होती स्त्री हो। प्राणीशास्त्र के अनुसार तुम योग्य पुरुष प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील बनो, यह स्वाभाविक है, और ऐसा करते आघात होने पर हृदय टूट गया, ऐसा भी मालूम पड़ सकता है। पर प्रणय प्राप्त कर खोये बिना हृदय टूटता नहीं। ऐसा जरा होने पर भी यदि सब खतम हो जाय तो स्त्री जीवित नहीं रह सकती, समझी ? सुनो, क्या कहा ?' वे सूँघनी सूँघकर बोलने लगे। 'जीवन की शक्तियां स्त्री-पुरुष को एकत्रित करती हैं। स्त्री प्रजा के पिता की खोज करती है—खोजने का निष्फल प्रयत्न करती है। ऐसे प्रयत्न करने पड़ें—इससे क्या कोई निराश होता है ?'

सुलोचना पलंग पर सिर रख सिसकियां लेने लगी। प्रोफेसर कापड़िया दोनों हाथ बढ़ाकर व्याख्यान देते रहे—

'निष्फल प्रयत्न करने से आत्माभिमान को ठेस लगती है, इससे हृदय के बन्धन टूटते हुए मालूम पड़ते हैं, क्या समझी ? मौके से जोड़ी मिल जाती है; खोज पूरी होने पर यदि प्राप्त किया पुरुष गुम जाय तो ही स्त्री आकर्षित करने का शौक खो बैठती है; और जिसे 'Heart-break' (हृदय-भङ्ग) कहते हैं, वह दशा प्राप्त होती है; समझी ?'

कापड़िया ठहरे और उन्होंने सूँघनी सूँघी।

'केकी तो केवल निष्फल प्रयत्न था। अब प्राणीशास्त्र की शक्तियों की आत्माभिमान पर चोट लगी है; कल चोट ठीक हो जायगी। पुनः प्रयत्न प्रारम्भ होगा।'

'बहुत हुआ, बहुत हुआ !' आक्रन्दपूर्वक सुलोचना ने कहा।

'पुनः प्रयत्न प्रारम्भ होगा,' हाथ घिसकर कापड़िया ने कहा; 'किसी समय शक्तियों को संतोष प्रदान करनेवाला पुरुष आ पहुंचेगा।'

सुलोचना ने केवल सिसकी से उत्तर दिया।

'और पुरुष से संतोष होगा।'

'सब पुरुषों को मैं धिक्कारती हूं।'

'क्या कोई स्त्री पुरुष को धिक्कार सकती है ? प्रयत्न करने पर जब निष्फलता का विचार आता है, तब ऐसा ढोंग करती है। पर प्रत्येक स्त्री का हृदय एक पुरुष की प्रतीक्षा में रहता है; अथवा वैज्ञानिक दृष्टि से जीवन समृद्ध करने के साधन के लिए स्त्री प्रतीक्षा करती है।'

'खतम करिए, आपका विज्ञान तो मेरे प्राण लेता है।'

'विज्ञान को प्राण या पत्थर किसीकी परवाह नहीं है। पुरुष के बिना स्त्री नहीं, स्त्री के बिना पुरुष नहीं।'

'पुरुष-मात्र बदमाश हैं—और स्त्री-मात्र मूर्ख है।'

'नहीं, स्त्री केवल लोभी है—जीवन की; पुरुष केवल धूर्त है। दोनों मिले बिना कभी रहे हैं ?'

'मुझे कुछ नहीं सुनना है,' कह सुलोचना खड़ी हो गई।

'और' हंसकर कापड़िया ने कहा, 'इतना याद रखना कि स्त्रीत्व प्रयत्नशील हो तब क्या उसका हृदय टूट जाता है ? खड़े होकर पुनः प्रयत्न प्रारम्भ किया जाता है।'

'You are a brute !' (आप पशु हैं),' कह गुस्से से वह नीचे कमरे में चली।

'हम सब 'animals first, angels afterwards' (पहले प्राणी, फिर देव) हैं।—इस समय प्राणी-जीवन की प्रथम—वृत्तिक्षुधा, उत्तेजित हुई है। एक बजा है।'

'चलिए,' कहकर गुस्से से सुलोचना भोजन के लिए उतरी।

तेरह

सूरत कांग्रेस

: १ :

बारह बजे से काँग्रेस का दरवाज़ा खुला और समस्त भारत मानो फ्रेन्च गार्डन में आ पहुँचा हो।

उस समय कांग्रेस भारत की छोटी-सी प्रतिमा थी। वही अमेव विस्तार, वही अनेक दृष्टिवाला जमघट, वही अल्पजीवी उत्साह, वही पचरंगी चित्रमयता, वही भव्यता का भास, वही सनातन अनन्तता के दर्शन, वही कार्य-दक्षता का अभाव, और वही कुशल एकाग्रता के प्रति अरुचि थी। उसका यह स्वरूप दो मुद्दों पर रचा गया—एक प्रजा में उत्साह उत्पन्न करने के लिए, दूसरे अपना प्रतिनिधित्व सिद्ध करने के लिए। और कितने ही समय निश्चयात्मक कार्यतत्परता का बलिदान कर उसने दोनों बातें कीं। इतने वर्षों में जन्म के समय के दोष जाते नहीं। 'ऑल इन्डिया काँग्रेस' व 'वर्किंङ्ग कमेटी' व्यावहारिकता लाने का प्रयत्न करती हैं, तो भी रङ्ग-बिरङ्गी मेले की अस्थिर मनोवृत्ति जाती नहीं।

पर जो केवल जिज्ञासा को तृप्त करने वहां जाता था, वह भक्ति-भाव से कण्ठी बँधवाकर आता था। समग्र उत्साह की लपट उसे लगती थी। जहां तक दृष्टि पहुंचे वहां तक फैला हुआ जनता का जमघट भारत-माता की प्रचण्ड शक्ति का भास कराता था। बसन्त द्वारा चित्रित किसी विशाल महावन की शोभा की विडम्बना करता हुआ मण्डप भव्यता के भास से हृदय को दबा देता था।

उस सिंधी डेलिगेट की मृत्यु से कांग्रेस लगभग ढाई बजे शुरू हुई थी, पर डेढ़ बजे से 'वन्देमातरम्' के नारे जब-तब सुनाई देने लगे, और अधीरता के स्पष्ट दर्शन हुए। थोड़ी देर में 'शिवाजी महाराज की जय' का घोष करता हुआ 'दक्षिणी कैम्प' आया, सूरत के लिए कदाचित् ही वह वास्तविक जयघोष था। नारण पटेल की थोड़ी सेना गुजरात डेलिगेटों के विभाग में बैठी थी। केरशास्प व कुछ लोग दूरी पर दरवाजे के पास प्रेक्षकों में इधर-उधर बैठ गए। बाकी की आधी सेना को नारण भाई हाथ में डण्डा लेकर आगे बढ़ाते हुए महाराष्ट्र-विभाग में आये।

दो सूरत के स्वयंसेवक आये, 'भाई साहब! यह तो महाराष्ट्र है। गुजरात तो उस ओर है।'

'हम महाराष्ट्री हैं,' नारणभाई ने लड़ाकू शान से डण्डा जमीन पर ठोकते हुए कहा।

वे हँसे। 'चतुर भाई, आगे चलो,' नारणभाई ने हुक्म दिया।

'टिकट लाओ।'

'लो, देखो' नारण भाई ने चालीस टिकट महाराष्ट्र व नागपुर के 'डेलिगेटों' के निकाल कर दिखाए।

'ठहरो, मैं कप्तान को बुलाता हूं।'

'अपने कप्तान से कहकर कर लो जो कुछ करना हो,' कह नारण भाई व उनकी सेना महाराष्ट्र-विभाग में गई व नारा लगाया—'शिवाजी महाराज की जय!'

'गुजराती होकर 'शिवाजी महाराज की जय' बोलता है? धिक्कार!' एक अभिमानी गुजराती ने कहा।

'ए सूरती लाला! सूरत लूटा गया था, सो भूल गया?' नारण भाई बोले। 'धिक्कार है तुम्हें व तुम्हारी सात पीढ़ियों को।'

'चुप बैठ जाओ—वन्देमातरम्—शिवाजी महाराज की जय—वन्देमातरम्' की जोरदार आवाज सुनाई दी। केरशास्प खड़ा होकर रूमाल फड़फड़ा रहा था। तुरन्त ही नारण भाई कुरसी पर खड़े होकर

बन्देमातरम्, के नारे लगाने लगे। चारों ओर बन्देमातरम् का घोष हुआ। कितने लोग समझे-न-समझे और चिल्लाने लगे, और तिलक, खापर्डे, अरविन्द बाबू व मोतीलाल घोष आये। सब आंखें अरविन्द बाबू को निरखने के लिए तत्पर हुईं। क्या सादगी, क्या बुद्धि का तेज, आँखों में क्या दैवी चमक थी ! मानों देव हों। 'परित्राणाय साधूनाम्, विनाशाय च दुष्कृताम् ' का अवतार हों ! बन्देमातरम् !

फिर आये पारेख, अम्बालाल व जगमोहनलाल, रथरफोर्ड व नेविन्सन; 'बन्देमातरम्' का जब-कभी जयघोष हुआ, व सफेद चमड़ी के प्रति तिरस्कार व धिक्कार का भाव प्रदर्शित किया गया।

सुदर्शन व मगन पण्ड्या साथ आये, व उनके पैरों के पास बैठ गए।

फिर किसीकी समझ में नहीं आया। पर एक छोटे कद का, काले साफे वाला व्यक्ति एक ओर से आया। रास्ता नहीं था, इससे रस्सी के नीचे से आगे आया। पीछे मोहन पारेख दौड़ता था।

'वह कौन है ?' एक ने पूछा।

'लालाजी' पारेख ने कहा।

'लालाजी की जय ! जय ! लाला लाजपतराय की जय ! लाल, पाल, बाल की जय !' डेलिगेट खड़े हो गए, कुरसी पर चढ़े, रूमाल फड़फड़ाने लगे। 'लालाजी की जय,' 'बन्देमातरम्' प्रत्येक मुख से निकलने लगे। सम्पूर्ण मण्डप खड़ा हो गया। दस मिनट हो गईं। 'ये डीपोर्ट (देश-निकाला) किये गए नायक ? ये पन्जाब के शेर हैं ?' 'लालाजी की जय।'

जैसे-तैसे लोग बैठे। बड़े परिश्रम से स्वयंसेवकों ने शान्ति स्थापित की। सभा में चेतना आई थी, व बाहर से 'बन्देमातरम्' की आवाज़ आई।

'प्रेसिडेन्ट—प्रेसिडेन्ट—रासबिहारी घोष,' की आवाज़ सुनाई दी व स्वयंसेवकों की टुकड़ी आई। पीछे पल्टनी लिबास में सुशोभित कप्तान मोहनलाल दीक्षित और डा० रासबिहारी घोष आये। वे सौम्य व शान्त, विशाल भाल के नीचे भाषा की समृद्धि व धाराशास्त्र का

भार वहन करते हुए, जरा क्षोभ से फीके पड़े हुए, और विजय-गर्व से जरा हंसते थे। फिर चमकती पगड़ी धारण किये हुए चारों ओर देखते व हंसते अपने राजनैतिक कौशल में सकारण श्रद्धा का अनुभव करते हुए सर फीरोज़शाह मेहता आये; और गौरवशील दाढ़ी व काले अंगरखे में छोटे पैरों से बड़े-बड़े कदम भरते हुए, चारों ओर देखकर मानो जनता को वश में करने का प्रयत्न करते हुए सुरेन्द्रनाथ आये; और वाच्छा, सेतलवाड़ व गोखले आये जो अवर्णनीय चिन्ता से अस्वस्थ, निस्तेज व क्षुभित थे। पंडित मदनमोहन मालवीय किसी वैदिक ऋषि के ललाट का गाम्भीर्य धारण कर, धनुष के समान शरीर को खींचने के लिए तैयार होकर, अपनी छोटी व चञ्चल आंखों से इस तूफान में परिणाम के चिह्न देखने का प्रयत्न करते हुए आये। उनके साथ में मोतीलाल नेहरू थे, जिनके सुन्दर लिबास स लन्दन के दरजी निराशा के कारण जल सकते थे। सभा नाच उठी। दस हज़ार उत्साह से पागल आवाज़ में डा० घोष का स्वागत किया गया। समस्त मण्डप में रूमालों की फड़फड़ाहट से जनता के लिए सुलभ उत्साह का वेग बढ़ता ही गया। दस हज़ार व्यक्तियों ने सभा के अन्तर का सभापतित्व प्रदान किया हो, ऐसा मालूम पड़ा।

पाव घंटे तक यह उत्साह रहा। कुरसी पर बैठे फीरोज़शाह को शान्ति मिली। किसकी मजाल थी कि इस लोकप्रियता में विरोध पैदा करे?

संगीत प्रारम्भ हुआ। थोड़ी धांधली हुई, शान्त हो गई। 'बैठ जाओ,' 'सुनो,' 'Be quiet!' 'Down with the Chair!' ऐसे नारे लगाये जाने लगे।

इस समय लालाजी तिलक के पास आये। 'क्या प्रस्ताव मिले?'

'नहीं,' तिलक ने गुस्से में कहा।

'क्या अभी तक नहीं मिले?' चकित होकर लालाजी ने कहा।

'हमारा किसीका हिसाब नहीं है।' खापर्डे ने कहा।

लालाजी गोखले के पास गये ।

'इन लोगों में हमारी सुनने वाला कोई नहीं है,' तिलक ने खापर्डे से कहा ।

'क्या करें ?' उन्होंने जवाब दिया ।

इतने में एक स्वयंसेवक आया । 'सर फीरोज़शाह कहते हैं कि आप दोनों 'प्लेटफार्म पर आइए,' उसने कहा ।

तिलक ने सिर धुना—'मैं तो यहीं बैठूंगा ।'

सङ्गीत पूरा हुआ और त्रिभुवनदास मालवीय स्वागत करने खड़े रहे । साधारण आवाज़ व अनाकर्षक रीति से उन्होंने भाषण पढ़ा । सूरत के इतिहास की लोगों को परवाह नहीं थी । 'शिवाजी ने सूरत लूटा'—ये शब्द सुनाई देने पर किसीने 'शिवाजी महाराज की जय' उच्चारित की । एक नहीं पर अनेक बार समाधानयुक्त 'नरम दल'·का सूत्रोच्चार किया गया, और 'शेम—शेम' की खुली टीका की गई । भाषण पूरा हुआ, और क्षण-भर के लिए शान्ति का प्रसार हुआ ।

: २ :

शिवलाल श्रॉफ ने इस समय प्रस्ताव की छपी हुई नकल तिलक के हाथ में रखी । तिलक ने वह देखकर कहा 'Betrayed' (दगा हुआ) ।' नारणभाई ने इतने ही शब्द सुने और बाहें चढ़ाईं ।

दीवान बहादुर अम्बालाल साकरलाल सभापति के चुनाव का प्रस्ताव लेकर खड़े हुए । 'सभापति अच्छे—योग्यतावाले——डा० घोष—'

'कभी नहीं,' नारणभाई ज़ोर से चिल्लाये । 'नहीं....नहीं.... नहीं....।' अलग-अलग स्थान से आवाज़ आई । फिर शान्ति फैल गई । दीवान बहादुर ने भाषण पूरा किया ।

'सुरेन्द्रनाथ प्रस्ताव का अनुमोदन करने के लिए खड़े रहे । अपनी लोकप्रियता के गर्व में वे आगे आये । सिर पीछे डालकर क्षण-भर के

लिए उन्होंने श्रोतागण की शक्ति को नाप लिया। उन्हें विचित्र-सा लगा। जब वे बोलने खड़े होते तब उत्साह से पागल 'कांग्रेस' जय-घोष से उनका सत्कार करती थी। आज भी जयघोष प्रारम्भ हुआ—'

'डा० घोष नहीं,' नारणभाई ने खड़े होकर आवाज़ दी।

'बैठ जाओ—सुनो—'आर्डर'—'

'मेदनापुरी सुरेन्द्रनाथ !'—जहां सुरेन्द्रनाथ ने पुलिस की सहायता से देश-भक्तों को दुःखित किया था, उसका स्मरण कराकर नारणभाई कुरसी पर खड़े हो गए। उनके अनुयायी भी कुरसी पर चढ़कर बोलने लगे।

'I have great pleasure' (मुझे बहुत आनन्द होता है),' सुरेन्द्रनाथ की आवाज़ ज़ोर के साथ बाहर निकली।

'बैठ जाओ ! बैठ जाओ !...'

'Down with Dr. Ghosh !....'

'Remember Nagpur,' एक दक्षिणी वीर ने कुरसी पर चढ़-कर आवाज़ की, 'तिलक महाराज की जय !'

'शिवाजी महाराज की जय !' दूर से केरशास्प की पल्टन ने आवाज़ की।

धीरे-धीरे लोग खड़े होते गए। 'धिक्कार ! धिक्कार ! Sit down' —बैठ जाओ' आदि आवाज़ें चारों ओर फैलने लगीं।

'In seconding the resolution moved by my friend Dewan Bahadur Ambelal' (मेरे मित्र दी० ब० अम्बालाल द्वारा रखे गए प्रस्ताव का अनुमोदन करते)—' सुरेन्द्रनाथ चिल्लाकर बोलने लगे।

स्वयंसेवक इधर-उधर दौड़ने लगे। 'Be quiet—बैठ जाइए,' एक क्षण के लिए तूफान कुछ शान्त हुआ।

'Dr. Rash Bihari Ghosh'—सुरेन्द्रनाथ की प्रचण्ड आवाज़ ने प्रचण्ड गर्जना की।

'No, no !' दोनों हाथों से नारणभाई ने नाहीं की।

'No, no, no, no....' एक बड़ी लहर के समान मानव-समुद्र की सतह पर फैल गया।

'Yes, yes—'

'बैठ जाइए।'

'Down with Surendra Nath.'

'बन्देमातरम्।'

'शिवाजी महाराज की जय !'

'Down with Tilak !'

'Shame !'

प्रत्येक मुख से अलग-अलग घोष निकलने लगा। पहले बसन्त के कोमल पत्तों के समान रूमाल नाचते थे; अब पतझड़ में डालियां तूफान करें, इस प्रकार हाथ ऊंचे-नीचे होने लगे। आवाज़ करने में, हाथ हिलाने में, अशान्ति फैलाने में मित्र व शत्रु एक हो गए।

मालवीय खड़े हुए व उन्होंने घंटी बजाई। हज़ारों गलों में से तिरस्कार का हास्य बाहर निकला। हल्ला-गुल्ला तो चालू ही रहा।

जलनिधियों के शासन में मस्त, क्षण में तूफान व क्षण में शान्ति केवल अंगुली से साधने वाले वृद्ध व भव्य वरुणदेव अन्त में अपनी विजय है इस विश्वास से हंसते मुख से किसी तूफानी समुद्र की बलवाखोर तरंगों को देखते हों, इस प्रकार सुरेन्द्रबाबू देखते रहे।

लहरें तूफानी थीं, पर उन्हें वे स्वतः ही शान्त करेंगे। वरुणदेव ने उस शिखर के सिंहासन से गर्जना की। 'Doctor—Rash—Bihari—'

लहरें उछलीं। उनका तूफान व उनकी आवाज़ बढ़ी। प्रत्येक लहर में प्रलय की आवाज़ आने लगी। प्रत्येक लहर वरुणदेव की विडम्बना करने लगी।

'No, No, Down, Down, Yes, Yes—'

'I—will be—heard' वरुणदेव ने भयङ्कर गर्जना की और प्रत्येक तरंग पर बादल की गड़गड़ाहट के समान प्रतिशब्द करता हुआ और समुद्र के उस तट पर सुनाई दिया। पर स्वच्छन्द बनी हुई सागर की तूफानी तरंगें गगन का चुम्बन करने के लिए पागल हुईं; उन्होंने महागर्जना की, एक महा अस्त्र से दूसरे के टुकड़े हों इस प्रकार उस शासन को छिन्न-भिन्न कर डाला। चारों ओर बादल की गड़गड़ाटें हुईं और बिजली चमकी।

'I will be—'

'No–No–No!'

वरुणदेव अधिकारभ्रष्ट हुए। उनका समुद्रों का साम्राज्य चला गया। वे थके और शान्त होकर अपने आसन पर बैठे। सार्वजनिक जीवन के पिता को इस समय पुत्र ने पराभव दिया। धीरे-धीरे तूफान शान्त हुआ। लोग बैठने लगे।

फीरोज़शाह के मस्तक पर सिकुड़न हुई। डा० घोष अपमानित होकर क्रोधसे लाल सुर्ख हो गए। गोखले अस्पष्ट आँसू से भरी आँखों से देश का सर्वनाश देखने लगे। दूसरे सब नेता मूढ़ बनकर बैठे। मालवीय अस्वस्थ शरीर से सिंहासन में छिप रहे।

'ठीक चलता है,' खापर्डे ने कहा।

तिलक महाराज की एक आंख समझ में न आए इस प्रकार खुली व बन्द हुई। अरविंद बाबू के स्थिर नयनों ने दैवी स्थिरता प्राप्त की।

सुरेन्द्र बाबू एकदम टेबल पर कूदे—'Dr. Rash—Bihari—'

नारणभाई तुरन्त ही कुरसी पर कूदे—'No—No—No....।'

खून का स्वाद पाये हुए शेर के समान पूरी सभा गुर्राई 'No—no—no,' दस मिनट तक एक नरसिंह के शब्द का समूह-सिंह ने प्रतिशब्द किया—नरसिंह की गर्जना मन्द हुई।

मालवीय ने घंटी बजाई—एक बार, दो बार, तीन बार। इतना ही परिणाम हुआ कि समूह-सिंह की गर्जना में तिरस्कार की ध्वनि आई।

'क्या करें ?' मालवीय ने सर फीरोज़शाह को पूछा।

'कांग्रेस स्थगित कर दो। 'Sittings suspend' करो', सर फीरोज़शाह ने कहा।

मालवीय ने प्रतिशब्द किया—'Suspended, Suspended ! (स्थगित, स्थगित)'

सुरेन्द्र बाबू फिर उतरे और लाल सुर्ख होकर बड़बड़ाने लगे—'It is an insult to Bengal.' (यह तो बंगाल का अपमान हुआ।)'

सब नेता उठकर पीछे के दरवाजे की ओर चलने लगे....उनके हृदयों में निराशा की अग्नि प्रज्वलित थी। क्या होगा ? क्या होने-वाला है ?

लोग समझे नहीं कि क्या हुआ; और सब इधर-उधर दौड़ने लगे। क्या कांग्रेस टूट गई ?........

अरविंद बाबू तिलक महाराज के पास आये।

'मि० तिलक, आपको श्रद्धा न थी, देखा ?' कह उन्होंने तूफानी जन-समूह की ओर अंगुली बताई। 'That is the Nation. Look at it. From to-day it is the only power in India.' (यह राष्ट्र है, इसकी ओर देखो। आज से भारत में केवल यही एक सत्ता रहेगी।)'

लोगों की भीड़ हुई। नारणभाई के सिर पर कितने ही दक्षिणियों ने लकड़ियों से सिर-छत्र बनाया, और इस प्रकार सुरक्षित 'गरम दल' के नेता बाहर गये।

सुदर्शन ने शिवलाल ऑफ से हाथ मिलाया। 'दोस्त ! 'मां' का भविष्य तेजोमय है।'

'हां,' ऑफ ने जवाब दिया।

सुदर्शन ने अपने निवास-स्थान पर आकर धनी को एक पत्र लिखा।

: ३ :

कलकत्ता-कांग्रेस ने 'बॉयकॉट' के सम्पूर्ण आन्दोलन का अनुमोदन किया था; तिलक महाराज को दिये गए प्रस्तावों में केवल इतना ही था कि विदेशी माल का बहिष्कार चाहे अच्छा हो या बुरा, पर जब तक विदेशी सरकार, शिक्षा, न्याय, विचार व आचार आदि सब का बहिष्कार न किया जाय, तक तक स्वराज्य कैसे मिल सकता है ? और कलकत्ता-कांग्रेस द्वारा स्वीकृत किये जाने पर उनका अस्वीकार करने वाले फीरोज़-शाह मेहता कौन होते हैं ?

फीरोज़शाह भी इस सम्बन्ध में दृढ़ थे। कांग्रेस की स्थापना ह्यूम ने की, उनके-जैसों ने उसका पोषण किया; उसका ध्येय ब्रिटिश-साम्राज्य में स्वतंत्र स्थान प्राप्त करना था; उसका तरीका कानूनन राज्य-व्यवस्थात्मक आन्दोलन था; उसकी प्रेरणा इंगलैण्ड के स्वातन्त्र्य-प्रेमी व्यक्ति थे; उसका मुख्य शस्त्र स्वातंत्र्य-प्रेमी आङ्गलप्रजा में स्थित न्यायवृत्ति था। यदि 'बॉयकॉट' का पूरा आन्दोलन कांग्रेस स्वीकृत करे तो इन सबका क्या होगा ? और ये सब न रहें तो फिर यदि कांग्रेस न भी रहे तो क्या ?

सर फीरोज़शाह, डा० घोष, सुरेन्द्रनाथ, गोखले, वाच्छा, मालवीय-जी आदि सब इस सम्बन्ध में एकमत थे। उनके मस्तिष्क में व्याव-हारिकता विशेषरूप से थी। जो साधा न जा सके, उसकी इच्छा नहीं करनी चाहिए, यह उनका सिद्धान्त था। उनमें से कितनों ने कौंसिलों में जाकर व्यावहारिकता की विजय साधी थी। सबने ह्यूम व ब्रेडलॉ से रथरफोर्ड व नेविन्सन जैसों की सहायता प्राप्त की थी।

उनमें से बहुतों ने कांग्रेस के बिना, सार्वजनिक जीवन के बिना अन्धकारमय, विभक्त व निर्जीव भारत देखा था; वे देख सकते थे कि भारत में राष्ट्रीय एकता नहीं थी, व होना सरल नहीं था; वे अनुभव से जानते थे कि भारतीय चरित्र में कर्तव्यदक्षता व दृढ़ता जितनी चाहिए उतनी नहीं थी; और विप्लव से, अठारहवीं सदी की अंधा-धुंधी

की पुनः स्थापना करने से वे घबराते थे। ब्रिटिश साम्राज्य के बिना गति नहीं है, यह उनका निश्चित सिद्धान्त था।

'जगमोहनलाल! अपनी वह 'Convention' की योजना तो लाओ,' फीरोज़शाह ने कहा।

'क्या मैं नहीं कहता था?'

'अब मैं देख सकता हूँ।'

मस्कती के बङ्गले पर डा० घोष के निवास-स्थान में राजनीति-विशारद चिन्तातुर हो बैठे थे।

तिलक महाराज के हृदय में विचित्र श्रद्धा व शक्ति का सञ्चार हुआ था। उनका तो एक ही दृष्टि-बिन्दु था—पेशवाओं के पास से राज्य लेने वाले अंग्रेजों का विरोध होना चाहिए। 'बॉयकॉट' होगा या नहीं, और यदि होगा तो विप्लव होगा या नहीं, उसका ये विचार नहीं करते थे। प्रस्तावों से अंग्रेजी-साम्राज्य जायगा या नहीं, इसका विचार प्रस्तावों के पहले क्यों करना चाहिए? कोई भी प्रस्ताव, कोई भी आन्दोलन, जिससे अधिक असंतोष हो, स्वीकार था। इसमें पूछने का क्या रहता है? प्रसङ्ग उत्पन्न होता है, लाभ लेने के लिए।

सार्वजनिक जीवन में फीरोज़शाह व गोखले के हाथ के नीचे रह कर वे उकता गए थे। पूना के प्रौढ़ सम्प्रदाय के संस्थापक रानडे उनके प्रति कड़ी दृष्टि रखते थे। उस सम्प्रदाय के महागुरु फीरोज़शाह व गोखले थे। वह सम्प्रदाय नष्ट हो यह उनका, उनके सम्प्रदाय का जीवन-ध्येय था। उस ध्येय को साधने का प्रसङ्ग सूरत में आ पहुंचा था। किसलिए उसका उपयोग न किया जाय?

उनकी पिछली रात की अश्रद्धा व घबराहट जाती रही। 'बॉयकॉट' 'बॉयकॉट' ही है, वह तो श्वास व प्राण है। यदि यह मंजूर न हो तो अवश्य वे दूसरे सभापति का प्रस्ताव उपस्थित करेंगे ही हम तूफान न मचायंगे। तूफान के लिए हमें खेद है। पर 'बॉयकॉट तो बॉयकॉट है' तिलक महाराज ने अडिग वृत्ति से सूत्र उच्चारित किया। शान्त,

नम्र, धैर्ययुक्त अरविन्द बाबू चुपचाप देखते रहे। उनकी आंखें मानो श्रीकृष्ण को देखती हों इस प्रकार ध्यानस्थ दिखाई देती थीं। उन्हें व्याकुलता नहीं थी, उन्हें अश्रद्धा नहीं थी। वे तो विचित्र, अद्वितीय भारत-राष्ट्र के ही दर्शन करते थे। उन्हें तो केवल निष्काम कर्म की पद्धति में ही विश्वास था। वे 'बॉयकॉट'-बहिष्कार के ही शस्त्र को मानते थे। इस सर्वव्यापी बहिष्कार से अंग्रेज़ी-साम्राज्य को कम्पित करने की उनकी एक महत्वाकांक्षा थी। निर्बलता उन्हें कहीं भी दिखाई नहीं देती थी। व्यावहारिकता का नाम सुनकर वे हँसते थे; राजनैतिक कौशल उनके मन में पागलपन था। राज्य-व्यवस्था उनके मन में मज़ाक थी। आत्मा के ओजस में ही राष्ट्र प्रकट होते हैं, यह उनके मन में व्यावहारिकता व राजनैतिक कौशल था। वे तो टस-से-मस हो ही नहीं सकते थे।

यदि भाग्यशाली देश होता तो धीर, गम्भीर राजनैतिक कौशल प्रसंग-प्रेमी चालाकी व राष्ट्र-विधायक की दृष्टि इन तीनों का सामन्जस्य स्थापित करता; व्यवहार-कुशल देश केवल राजनैतिक कौशल को मान देता; प्रवृत्तिमय बनने की इच्छा रखने वाला देश चालाकी का सत्कार करता, स्वतन्त्र होने के लिए तरसता देश आर्ष दृष्टि को स्वीकार करता। सूरत में भारत-राष्ट्र क्या था?

सुदर्शन व उसके मित्र तो विजय के नशे में चकनाचूर बन गए। उन्होंने समझौते को भंग कर दिया था; नेताओं के द्वारा इतिहास का निर्माण करवाया था।

उस दिन सूरत नगर में उबलती डेग के समान लोग खौल गए। क्या हुआ? क्या होगा? 'गरम दल' में बल आया। 'नरम दल' में चिन्ता का पार नहीं था। सूरत के मौजी कहने लगे—'शिवाजी के समान सूरत लूटने आये हैं?' अब क्या करना चाहिए? समझौता कैसे हो? कल क्या होगा? कौन बीच में पड़े? सन्देशे पहुंचाये गए; दूत-कार्य किया गया; सूचनाएँ दी गईं। हम लोग क्या करते हैं?

देश का क्या होगा ? कांग्रेस के गौरव का क्या होगा ? कांग्रेस के दुश्मन हँसेंगे तो.? उनकी बन जायगी तो ? स्वदेश-भक्ति काहे में है ? समझौते में या उद्धत बनने में ? शाम हुई पर कुछ न हुआ।

न्यायी, विद्वान् व शान्त गोखले क्या कुछ न कर सकेंगे ? कौन मनावे ? कौन माने ?

तिलक निश्चल थे। 'बॉयकॉट' प्रस्ताव में रहने दो, नहीं तो सभापति के प्रस्ताव में संशोधन उपस्थित करूँगा। हमने तूफान किया नहीं है व हमें कराना भी नहीं है; पर देश-द्रोह कैसे हो सकता है ?

: ४ :

२७ तारीख के सबेरे भी सबके मन उद्वेगपूर्ण व अनिश्चित थे; तो भी आज सब शान्त रीति से पूरा होगा ऐसा मालूम पड़ता था।

स्वयंसेवक ध्यान से काम करते थे; 'डेलिगेट' चिन्तापूर्वक एक बजने की प्रतीक्षा करते थे; नेताओं के मन चिन्तित ही थे। क्या मतभेद था, यह भी बहुत न जानते थे; क्या होने वाला था इसकी भी कदाचित् ही कोई कल्पना कर सकता था। भयानक घिरे हुए बादलों के समान अस्वस्थता कांग्रेस पर छा गई।

अगले दिन के समान सब आकर एकत्रित होने लगे। आज तूफान करना नहीं है व होने भी नहीं देना है, यह शुभ संकल्प सबके मुख पर दिखाई देता था।

सबेरे सुदर्शन व उसके मित्रों ने विचार किया। आज क्या होगा ? क्या क्या ? फीरोज़शाही कांग्रेस क्या चल सकती है ? 'नरमदलवालो, सुधरो नहीं तो मरो !' नारणभाई ने बहुत ही उत्साह से कहा। कल पानीपत का मैदान उन्होंने जीता था, ऐसा उन्हें लगता था।

नेता आये और लोगों ने जयघोष से उनका अभिनन्दन किया; कल की अपेक्षा आज के जयघोष में उत्साह अधिक था। 'शिवाजी

महाराज की जय' बहुत कम बोली जाती थी। आशा की किरणें सूर्य की किरणों के साथ संयोग साधकर मण्डप में प्रफुल्लता ले आईं।

तो भी सबके मन चिन्तित थे। क्या कुछ होगा? क्या होगा? सभापति आये व जयघोष की परम्परा का पार न रहा। कल से भी आज स्वागत में—हृदय में अधिक भक्ति थी। नेता व्यवस्थित रूप से बैठ गए। सङ्गीत आरम्भ हुआ।

तिलक महाराज ने सुदर्शन को बुलाकर एक चिट्ठी 'स्वागत-कारिणी' के सभापति को देने के लिए कहा। चिट्ठी लेकर सुदर्शन का हृदय नाच उठा। उस चिट्ठी में कांग्रेस उड़ाने का मसाला था। उसने जाकर चिट्ठी मालवीय को दी। कांपते हुए हाथों व निस्तेज मुख से उसने उसे सर फीरोजशाह को दिखाया। सर फीरोजशाह ने लेकर गोखले को वह चिट्ठी दिखाई।

सुरेन्द्र बाबू पुनः टेबल पर चढ़े व बोलने लगे। लोगों ने उन्हें सुना। जिस प्रकार तूफान करने के लिए तत्पर सांप को मुरली नचाती है, उस प्रकार उनका वाक्पाटव धीरे-धीरे सावधानी से कांग्रेस को डुलाने लगा। थोड़ा हास्य, थोड़ी तालियां होने लगीं। सब जगह शान्ति फैल गई, और जब उन्होंने भाषण पूरा किया, तब सभा ने तालियों से उनका स्वागत किया। वे हंसे; आखिर सभा वश में हुई सही।

मोतीलाल नेहरू थोड़े शब्दों में व मीठी आवाज़ में अनुमोदन करने खड़े रहे।

वह पूरा होने पर मालवीय खड़े हुए व डॉ० घोष से सभापति का स्थान लेने के लिए कहा, और तिलक महाराज कुरसी से उठकर मञ्च पर गये। अङ्ग-अङ्ग में कांपते हुए, पगड़ी व दुपट्टे को क्षोभ से ठीक करते हुए, बाईं आंख व ओंठ की चंचलता से मानसिक अस्वस्थता दिखाते हुए वे आगे गये।

दो स्वयंसेवक रोकने आये, पर सुदर्शन व मोहन पारेख ने उन्हें हटा दिया।

क्षण-भर के लिए शान्ति फैल गई। प्रत्येक की दृष्टि मञ्च के बीच में खड़े तिलक पर स्थिर हुई। कुछ होता था। जीवन-मरण तक बात पहुँच चुकी थी। जिस क्षण के लिए देव व दानवों ने अवतार लिया था, क्या वह क्षण तो नहीं था?

मालवीय की आवाज़ बैठ गई, 'क्या है?' उन्हें सुनाई न दे, ऐसी आवाज़ में पूछा। सभापति के स्थान पर आधे बैठे हुए डॉ० घोष त्रिशंकु के समान निराधार खड़े रहे।

'मैंने सूचना दी है। मुझे सभा स्थगित करने का प्रस्ताव उपस्थित करना है। मेरा अधिकार है; कंधे का दुपट्टा कमर पर लाकर नीचे का छोर कंधे पर डालते हुए तिलक ने कहा।

'आप बोल नहीं सकते। आप 'Out of order' (नियम-विरुद्ध) हैं।'

'मैं सभापति के चुनाव के बारे में संशोधन उपस्थित करना चाहता हूं,' तिलक ने कहा, 'आप सभापति नहीं हैं।'

'मैं हूं, आप नियम-विरुद्ध हैं,' डॉ० घोष ने कुरसी पर बैठकर कहा।

'आप सभापति चुने नहीं गये हैं—'

सभा ने भयंकर हल्ला-गुल्ला शुरू किया। प्रत्येक व्यक्ति खड़ा हो गया। जिससे बना वह कुरसी पर चढ़ गया, जिनसे बन सका वे यथाशक्ति ज़ोर से बोलने लगे। सूरत-निवासी क्रोधावेश में तिलक के सामने, दक्षिणी लोग क्रोधावेश में सभापति के सामने, प्रत्येक क्रोधावेश में सबके सामने गरजने लगे।

डा० घोष खड़े हुए, टेबल पर चढ़े, व उन्होंने घंटी बजाई। प्रलय के समय कोई आरती उतारे इस प्रकार घंटानाद कुछ-कुछ सुनाई दिया और खतम हो गया।

मञ्च के संरक्षक स्वयंसेवक दौड़े। ये तिलक कौन हैं? Down

with Tilak ! एक-दो व्यक्तियों ने लकड़ी उठाई। सभापति की आज्ञा माननी चाहिए। 'Down the platform,' कूदकर गोखले बीच में आये, हाथ आड़े कर खड़े रहे—'सावधान !'

तिलक के जीवन का भव्य क्षण था। मृत्यु के मुंह में, गरजते उछलते मानव-सागर की तरंगों के सामने उन्हें स्वस्थता प्राप्त हुई। गर्वपूर्ण शान्ति से उन्होंने अपने को स्थिर किया।

'Do your worst. I am here to move the amendment. And move it I shall. (जो कुछ बने सो करो। मैं संशोधन उपस्थित करने आया हूँ, और करके ही रहूंगा।)' वे बोलते रहे।

और सामने का मानवसागर क्षुब्ध हो उठा। कुरसियां गिरीं। रस्सियां टूटीं, पीछेवाले आगे आये; रास्ते भीड़ से भर गए। दक्षिण व मध्यप्रांत के 'डेलिगेटों' के सिर फिर गए। क्या तिलक को—तिलक महाराज को—पूना के केसरी को मार डालेंगे ? किसकी मजाल है ? नारणभाई ने गर्जना की; उसका खून खौल उठा। तिलक महाराज पर आक्रमण ! नारणभाई नीचे झुके, एक दक्षिणी जूता लिया, व ताककर उन्होंने फीरोज़शाह को मारा। वह फीरोज़शाह पर पड़ा, वहां से उछल कर सुरेन्द्र बाबू पर पड़ा।

क्षण-भर के लिए क्या हुआ यह समझ में नहीं आया। सब घबरा गए। दक्षिण ने आक्रमण किया ऐसा सोचकर सब खड़े हो गए। उनके खड़े होने पर सूरत के स्वयंसेवक सहायता करने के लिए आये। वे दौड़े, दक्षिणी लोग समझे कि तिलक महाराज मर गए।

'शिवाजी महाराज की जय' बोलकर नारणभाई ने 'प्लेटफार्म' पर कूदकर तिलक महाराज को लकड़ी से बचाया। दक्षिण व नागपुर चारों ओर से 'प्लेटफार्म' पर आ डटा, और अपने नायक को बचाने के लिए उन्होंने व्यूह रचा। 'नरम दल' के नेता पीछे के दरवाजे से भागे। पूरी सभा

गरजती-कूदती आगे बढ़ आई। दो सौ व्यक्ति टेबल पर चढ़े....और भयंकर आवाज के साथ टेबल टूट गया....

निःशस्त्र व्यक्ति क्षण-भर के लिए शूरवीर हुए, और कुरसियां व डंडे उछलने लगे, टूटने....दस हजार भारतीयों ने खिड़की के पश्चात् पहली बार राजनैतिक प्रश्नों में शूरता प्रदर्शित की।

पुलिस ने 'हॉल' पर कब्जा कर लिया।

तीन सौ दक्षिणियों ने लकड़ियां ऊंची कर जाने का सुरक्षित मार्ग बनाया; और तिलक महाराज 'तिलक महाराज की जय' व 'Down with Rash Behari Ghosh' के नारों द्वारा अभिनंदन का स्वीकार करते हुए मण्डप के बाहर आये। नेता लोग नेतृत्व भूलकर पीछे डेरों में बैठे। उन्होंने तो निश्चित रूप से माना कि 'गरम-दल' ने जान-बूझकर डंडेबाजी शुरू की।

'धिक्कार! यह 'Politics (राजनीति) है?' एक ने कहा।

'मानो सूरत लूटने के लिए इकट्ठे हुए हों—' दूसरे ने कहा।

'You are unfit for anything' (आप किसी भी काम के लिए अयोग्य हैं) तीसरे ने निश्चित अभिप्राय दरशाया।

सुरेन्द्र बाबू हाथ में दक्षिणी जूता ले आये, और अपमानित हो क्रोध में उन्होंने उसे सबके सामने ऊंचा किया। 'Reward for forty years of public service (चालीस वर्ष की सार्वजनिक सेवा का यह पुरस्कार है।)' कह उन्होंने जूता जेब में डाला।

'अंग्रेज़ लोग हमारे लिए क्या सोचेंगे?' गोखले ने कहा।

और धीरे-धीरे 'फ्रेंच-गार्डन' खाली होने लगा।

: ५ :

रात को समझौते की बातें हुईं; वे वैसी ही भुला दी गईं।

'नरम दल' वालों ने साम्राज्य में ही रहने के प्रस्ताव पर हस्ताक्षर

लिये; और नौ सौ व्यक्तियों का 'कन्वेन्शन' दूसरे दिन भरा।

शाम को हरिपुरा में 'गरम दल' की बैठक हुई। कांग्रेस के भङ्ग होने पर सबने खेद प्रकट किया; पर यदि कांग्रेस रहे तो प्रचलित राजनैतिक आदर्शों को ही स्वीकार करे, ऐसा स्पष्ट किया गया, और अंग्रेज़ों से भीख मांगने के दिन गये, ऐसा सर्वसम्मति से निश्चित कर सभा विसर्जित हुई।

सुदर्शन व उसके मित्रों ने नानपरा में 'कान्फ्रेन्स' की।

'आज ही हम लोगों ने कांग्रेस को गम्भीर बनाया,' केरशास्प ने प्रस्ताव के बिना सभापति का स्थान लिया। 'कोई अभिप्राय कितना प्रिय है, यह नापने का मारामारी ही साधन है। 'रीस्टाग' में रोज डंडाबाजी ही होती है।'

'पर पुलिस की सहायता से हम लोग सीधे रहें यह अच्छा नहीं है।' शिवलाल ने कहा।

'कहो कैसे बनाया उन्हें?' नारणभाई ने कहा।

'आज राष्ट्र ने सच्ची महत्ता प्राप्त की,' अम्बेलाल ने कहा, विदेशियों की अब हम लोगों को परवाह ही नहीं है।'

'पर सदुभाई! तुम ऐसे क्यों पड़े हो?' केरशास्प ने पूछा।

'कांग्रेस का इस प्रकार टूटना मुझे अच्छा नहीं लगा।'

'पर फीरोजशाही कांग्रेस हो तो क्या और न हो तो क्या?' अम्बेलाल ने कहा।

'मुझे कांग्रेस के टूटने का खेद नहीं है। जो संस्था दस-पांच नेताओं के मतभेद से टूट जाय, वह रहने जैसी ही नहीं मानी जा सकती। पर शिवलाल की चालाकी से नेता लोग समझौता न कर सके। नारणभाई के जूते से दस हज़ार की सभा बिखर गई। इससे क्या मालूम होता है? हमारे नेताओं में व हमारे लोगों में कुछ ऐसा है कि इतने दस हजार को तो क्या पर दो हजार के एक समूह को भी व्यक्तित्व दे नहीं सकते।'

'तुम्हारी बात झूठी है,' अम्बेलाल ने कहा, 'अभी तो हम लोगों को विनाशवृत्ति प्राप्त करनी चाहिए। तब तक विप्लव कैसे हो सकता है ? और आज कितनी अच्छी विनाशवृत्ति प्रदर्शित की गई !'

'परिणामकारक, निश्चयात्मक विनाशवृत्ति भी कहां थी ? केवल आकस्मिक अस्वस्थता का यह परिणाम है।'

'नहीं। 'गरम दल' में सच्ची परिणामकारकता आ रही है,' केरशास्प ने कहा।

'कौन कहता है कि नहीं है ?' नारणभाई ने कहा।

'हमारे मण्डल ने भी कैसी कमाल की !' मगन पण्ड्या ने कहा।

'हम लोगों ने क्या कमाल की ? कुछ भी नहीं,' सुदर्शन ने कहा, 'उस बन्दर ने लंदन में तोप छोड़ी थी, वैसा कुछ मुझे मालूम पड़ता है।'

'आज क्या हुआ है सदुभाई ?' केरशास्प ने पूछा।

'मैं बीमार हूँ,' उसने हठ से सिर धुनकर कहा, 'आज रात को मैं तो अपने गांव जाऊंगा।'

'मैं भी—' मगन पण्डया ने कहा।

'मुझे भी बम्बई जाना है।'

'तब २१ जनवरी को हमारे मण्डल की सभा है,' सुदर्शन ने कहा, 'भूलना नहीं, और प्रत्येक अपना विवरण तैयार रखे।'

मानो यह बात भूल ही गए हों, इस प्रकार प्रत्येक एक-दूसरे के सामने देखने लगा।

'अरे हां !' अम्बेलाल ने कहा।

'कहा मिलेंगे ?'

'बड़ौदा ही ठीक होगा,' केरशास्प ने कहा।

'बहुत-से तो बम्बई में हैं।'

'नहीं, पर बड़ौदा सबको पास पड़ेगा,' मोहन पारेख जो अभी तक दुखते हुए सिर को दाबकर बैठा था, बोला।

'अच्छा, तब मैं तैयारी करता हूँ,' कहकर सुदर्शन उठा और वह व अम्बेलाल पेटी ठीक करने लगे। सब बाहर गये, तब शिवलाल उनके पास आया। उसने आकर सुदर्शन से धीरे-से कहा—'क्या हमारी सभा एक मास देरी से नहीं हो सकती ?'

'क्यों ?' दोनों ने आंखें फाड़कर पूछा।

'मेरी वृद्धामाता यहां से श्रीनाथजी जाने की हठ ले बैठी है। आज दो दिन से उसके आंसू सूखे नहीं हैं।'

'पर तुम न रहो तो कैसे काम चलेगा ?' सुदर्शन ने कहा।

'मैं क्या करूं ?' शिवलाल ने बैठकर कहा, 'मेरे श्वसुर जा रहे हैं, उनके साथ जाने को कहता हूं तो नाहीं करती है। इकतीसवीं के पश्चात् जाने को कहता हूं तो नाराज़ होती है। सभा स्थगित किये बिना गति नहीं है।'

'सभा स्थगित कैसे की जा सकती है ? दूसरे सब क्या कहेंगे ? सब के उत्साह का क्या होगा ? और तुम्हारे बिना काम कैसे चलेगा ?' सुदर्शन ने कहा।

'पर क्या अपनी माता को श्मशान ले जाऊं ? और बुढ़िया बहुत हठी है ! सगी मां हो तो बात दूसरी हो, पर यह तो दत्तक मां है। वह कल 'विल' कर जाय और मुझे झटका दे तो फिर हमारे मण्डल का भी क्या होगा ?' उनके पूरे मण्डल का कोष शिवलाल की सम्पत्ति व केरशास्प की कमाई थी; और उसमें शिवलाल भिखारी होवे तो ?

'हर्ज़ नहीं,' शिवलाल ने हिम्मत से कहा, 'अम्बेलाल ! तुम व सदुभाई जहां हो वहां मैं हूं। तुम्हारी योजना ही मेरी योजना है। पर मुझे श्रीनाथ जी जाना ही पड़ेगा। हमारी त्रिमूर्ति कभी नहीं टूटेगी। सदुभाई सृजन करेंगे, मैं धारण करूंगा, अम्बेलाल संहार करेंगे। फिर हमें किसीकी आवश्यकता न होगी। मैं मार्च में वापस आऊंगा।'

'अच्छा ! पर जैसे हो वैसे जल्दी वापस आना।'

'अरे, एक दिन भी देर नहीं करूंगा। आखिर देश का उद्धार कहीं

भुलाया जा सकता है ? अच्छा, मैं जाता हूं,' कहकर शिवलाल ने इजाज़त ली।

'बेचारा खूब फंसा।' सुदर्शन ने कहा।

'क्या करे ? पर उसका काम निश्चित है।'

'उसमें तो कोई आपत्ति ही नहीं है।'

: ६ :

रेलगाड़ी में सुदर्शन को नींद नहीं आई। 'गरम दल' की विजय के समान इस कांग्रेस में ऐसा क्या था कि जिससे उसका अन्तर असन्तुष्ट हुआ था ? उसके मित्रों के बर्ताव में ऐसा क्या था कि जिससे उसके हृदय में अश्रद्धा ने घर किया था ? कहीं पर कोई गलती थी।

गाड़ी चल रही थी; खिड़की में से पेड़ दौड़ते दिखाई देते थे; डिब्बे में आठ व्यक्ति शान्ति से सो रहे थे। तो भी उसकी आंखों में कांग्रेस का मण्डप, पगड़ी संभालते हुए तिलक, टेबल पर खड़े हुए सुरेन्द्रनाथ दीखा करते थे; कुरसी पर कूदते हुए लोग, हवा में उड़ती कुरसियां उसे दीखा करती थीं।

'मां ! मां ! ये तेरे पुत्र ! यह तेरा मन्दिर ! तेरा क्या होने वाला है ?'

इस कांग्रेस में एकत्रित हुए लोगों में क्या कमी थी ? उसकी आंखें बन्द न हुईं। क्या कापड़िया सच्चे थे ? और यदि वे सच्चे भी हों तो निर्जीवता कहां थी ?

एक महानदी के विशाल द्वीप पर बहुत जनता एकत्रित हो गई थी ?...

कितनों की ही स्त्रियां साथ में थीं, कितने बच्चे लाये थे। सबने रङ्ग-बिरङ्गे कपड़े पहने थे, गले में हार डाले थे, हाथ में मंजीरे लिये थे।

कितने ही कूदते, कितने ही नाचते थे। सब इस आनन्द में थे, कोई महान् प्रसङ्ग था....।

वह सबसे पूछने लगा पर किसीने नहीं कहा....।

कितनों ही के पास घोड़े थे, कितने ही पैदल चलते थे, कितने ही बैलगाड़ी में बैठकर आये हुए मालूम पड़ते थे। प्रत्येक व्यक्ति साथ में खाना लाया था, उसे छोड़कर चना-चबेना फांकता था। चारों ओर लोग पान चबाते और पीक थूकते थे...।

जगह-जगह से हास्य सुनाई देता था। कोई गायन का सुर लेता था, बंसरी से सुमधुर ध्वनि प्रसारित करता था। कितनी ही स्त्रियां ताल देकर गाती व हंसती थीं....'सुजलाम्....सुफलाम्....'

आनन्द का वातावरण दसों दिशाओं में था........बसन्त का सूर्य आह्लादक किरणों से सबको प्रोत्साहित करता था। आठ-दस व्यक्ति गंभीर व खेदपूर्ण नयनों से फिरते थे। वे खड़े रहते थे व लोगों के समूह से कुछ कहते थे। लोगों का समूह आनन्दित होता था, चना-चबेना फांकता था, करताल-मंजीरे बजाता व उनके पीछे थोड़ी देर तक जाता था। इतने में उनमें से कोई दूसरा आता, और उसकी कुछ बात सुनने वे लोग खड़े रहते थे। कोई ताली बजाता था, कोई पैर ठोकता था और फिर सब आनन्द में मग्न हो जाते थे....।

गम्भीर पुरुष एक-दूसरे से मिलते तो घूरते थे। वे घूरते और लोग आनन्द के आवेश में नाचते थे। धीरे-धीरे एक-दूसरे के गले में हाथ डाल लोग फिरने लगे और गम्भीर लोगों का घूरना देख हंसने लगे....।

बाजे बजा ही करते थे, तालियां पड़ा ही करती थीं, नाच हुआ ही करता था....अबीर व गुलाल उड़े....ध्वजा-पताकाएँ फड़फड़ाईं व प्रत्येक कुछ-न-कुछ लेकर उसे उछालने लगा।

वह समझा नहीं कि यह क्या है? ये गम्भीर पुरुष कौन हैं? ये आनन्दी स्त्री-पुरुष कौन हैं? ये गुलाल व अबीर किसलिए हैं?

उसकी समझ में नहीं आया। क्या शुक्लतीर्थ की यात्रा थी? क्या वसन्तोत्सव था?

एक व्यक्ति आनन्द से उल्लास में नाचता था। उसके एक हाथ में दक्खिणी जूता था व एक हाथ में डंडा था। उसके गले में किंशुक-पुष्पों की माला थी। उसके पैरों में नूपुर थे। वह अपने जोश में चाहे जिसे मारता, व चाहे जिसे गले मिलाता था। उसकी आंखें बड़ी थीं। उसकी तोंद भी बड़ी थी। उसे देख दूसरे हंसते थे, और दूसरे जैसे हंसते वैसे वह अधिक कूदता था—।

'भाई! यह क्या है?' एक व्यक्ति ने पूछा, पर नाचनेवाले का मुख उसे स्पष्टतया दिखाई नहीं दिया—परिचित मालूम पड़ा।

'भाई! भाई! यह क्या है?' घबराये हुए स्वर में उसने पूछा।

'क्या कहते हैं?' नाचनेवाले ने आनन्द के आवेश में 'चरोतरी' भाषा में कहा, 'हम सब ब्रिटिश-साम्राज्य जीतने जाते हैं....।'

सुदर्शन सहम गया। 'क्या जानते नहीं?....' उसने जूता चारों ओर फिराया। 'वह लगभग कांपने तो लगा है। भागो....।'

घबराहट से वह जागृत हुआ तो पास में बैठे हुए एक मुसलमान ने ऊंघते-ऊंघते उसके कंधे पर सिर डाल दिया था।

एक मानसिक शूल ने त्रिशूल के समान उसका हृदय भेद डाला। यह कांग्रेस! यह देश! माँ! माँ! माँ! यह क्या होने वाला है? एक दम उसे याद आया कि अब उसे पहले-जैसे सपने नहीं आते। मुझे पहले के समान 'माँ' दर्शन नहीं देतीं, इसका क्या कारण है? 'माँ, क्या क्रुद्ध हुई है? माँ! क्या मैं लायक नहीं हूँ? माँ! मेरे शरीर में जहां तक प्राण होंगे वहां तक मैं तुम्हारी सेवा करूंगा। माँ! तुम मुझे न छोड़ना....।'

शंका से पीड़ित उसके हृदय में अरविंद बाबू की मूर्ति आई। तीन दिन के परिचय से उसे बहुत प्रेरणा प्राप्त हुई थी। उनकी आंखें कैसी दिव्य थीं? उनकी स्वस्थता कैसी अभंग थी? उनकी श्रद्धा कैसी

निश्चल थी ? वे ही महात्मा राष्ट्र का निर्माण करेंगे, लोगों का उद्धार करेंगे...। उन्हें जाकर क्यों न मिला जाय, और उनकी आज्ञा के अनु- सार क्यों न कार्य किया जाय ?

अरविंद बाबू का 'बॉयकॉट' में विश्वास था। यदि वह सर्वव्यापी बने, तो देश का भाग्योदय हो। एक होकर तीस करोड़ व्यक्ति अंग्रेज़ों का बहिष्कार करें तो एक क्षण में देश का उद्धार हो....।

पर जो दस हजार व्यक्ति सूरत में 'फ्रेंच गार्डन' में एकत्रित हुए थे, क्या वे भीषण बहिष्कार करने के लिए समर्थ थे ?....इस विचार के चक्कर में वह पास बैठे हुए व्यक्ति के कन्धे पर सिर डाल कर सोने लगा।

चौदह

मण्डल की सभा के लिए तैयारी

: १ :

एक सप्ताह रहकर जब सुदर्शन बम्बई गया तब एक महीने में देश के उद्धार के लिए योजना बनाने की भीष्म प्रतिज्ञा करके गया। इस प्रतिज्ञा को पूरी करने के लिए उसने अपनी बालव-बुद्धि, शक्ति व निश्चयात्मकता का यथासंभव उपयोग किया। उसने देश-देश के इतिहास में से नवनीत निकाला प्रत्येक देश की उद्धारक प्रवृत्ति का सार निकाला; प्रत्येक स्वातन्त्र्य-सेना की रचना वा स्वातन्त्र्य-युद्ध के रहस्यों की तुलना की; उसने प्रत्येक राष्ट्र की उन्नति व अवनति के कारण एकत्रित किये, गत वर्ष के अध्ययन का उसने हिसाब लगाया; उसने भारत की दशा कठिनाई व अशक्ति का मापन किया; उसने आदर्श, शक्य व व्यवहार्य तीनों दृष्टियों का यथासंभव सम्मिश्रण किया; 'मां' की माला का जाप कर भक्ति-रस को सींचा; विदेशियों की शक्ति को नापकर उसके विरोध के साधन की योजना की; और कहीं कल्पना खींच न ले जाय, इससे शीतल कड़ी व्यावहारिकता की कसौटी पर उसे चढ़ाया; और वह रात-दिन परिश्रम कर एक सर्वाङ्गसम्पूर्ण योजना बनाने लगा।

धनी भी यथाशक्ति सहायता करती रही। उसे चाहिए तब चाय, चाहिए तब भोजन, चाहिए तब प्रेरणा के दो मीठे शब्द वह दिया ही करती थी; और हारा-थका सुदर्शन उसका स्मित देख प्रेरणा प्राप्त करता गया।

अम्बेलाल भी बहुत ही उत्साह में आया था। सुबह, दोपहर व

शाम और कभी-कभी रात को भी वह व मिस वकील विज्ञान के प्रयोग करते थे, और सुदर्शन को विश्वास दिलाते थे कि वे ३१ जनवरी के पहले अदृष्टपूर्व व अकल्पित विनाश के शस्त्र का शोध करने वाले हैं।

अम्बेलाल ने पढ़ाने जाना छोड़ दिया और उन प्रयोगों में वह लग रहा। जब वह घर आता तब उसके मस्तक पर रौद्ररस की छाया सुदर्शन को दिखाई देती थी।

दोनों मित्र, मिस वकील व धनी देश के स्वातन्त्र्योदय की किरणें देखते रहे।

अरविन्द बाबू बम्बई आये। दोनों मित्रों ने उनके दर्शन कर व भाषण सुन अपने उत्साह को प्रज्वलित किया।

उनके राष्ट्र-धर्म के मन्त्र सुदर्शन के कान में सुनाई देने लगे।

'राष्ट्र-धर्म ईश्वर के पास से आता है। राष्ट्र-धर्म मरता नहीं, क्योंकि ईश्वर ही बङ्गाल को प्रेरित करता है। ईश्वर को मारा नहीं जा सकता। ईश्वर को जेल में भेजा नहीं जा सकता। क्या आपको सच्ची श्रद्धा है या केवल राजनैतिक प्रेरणा—एक विस्तृत प्रकार का स्वार्थ?

मध्य-रात्रि के अन्धकार में अपने बिस्तर में मानसिक प्रणिपात करता व इन मन्त्रों का गुञ्जन करता विशुद्ध व प्रोत्साहित अन्तर से सुदर्शन 'मां' की प्रार्थना करता रहा। 'मां! प्रेरणा प्रदान कीजिए! शक्ति दीजिए!'

उसने प्रार्थना की।

योजना लिखी जाने लगी; कागज-के-कागज लिखे गए, सुधारे गए, फाड़े गए व फिर लिखे गए। जनवरी मास धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगा। १०–११–१२–१३–१४–१५, पन्द्रहवीं के सवेरे उसने योजना पूरी की। अपने सामने पड़े हुए कागज के ढेर देख उसका हृदय गर्व से फूल उठा।

'धनी बहन ! मैंने अपना काम पूरा किया।'

'धन्यवाद।' धनी ने नहाने का पानी रखते हुए कहा, 'फिर मुझे क्या गुजराती में कह बताओगे ?'

'अवश्य,' सुदर्शन ने कहा। उसकी दृष्टि धनी पर पड़ते ही उसने सोचा—'कैसी प्रोत्साहक सहचरी ! सचिव, सखि, प्रिय शिष्या—ललित नहीं पर विप्लव-जैसी कठोर व भयङ्कर कला में !' वह हँसा।

दोपहर को डाक आई। दूसरे मित्रों के पत्र थे, उनमें पाठक का भी पत्र था।

मद्रास, ता० ११-१-१९०८

श्री सदुभाई !

मुझे मद्रास में नौकरी मिलने का तार आने से मैं आज यहां आया हूं। १२५) मासिक वेतन व भोजन मिलेगा। जो सोचा था उससे भी अधिक वेतन है।

मैं २१ तारीख को बड़ौदा नहीं आ सकता, और आने से भी लाभ क्या है ? मेरे-जैसे को, जिसके आधार पर पूरा परिवार हो, कमाये बिना गति नहीं है।

भवदीय

पाठक

सुदर्शन को गुस्सा आया। 'This is what I call selling a birthright for a mess of pottage.' (इसे टुकड़े के लिए जन्मसिद्ध अधिकार बेचना, मैं कहता हूँ।)

'मैं जानता ही था कि पाठक निकम्मा है,' अम्बेलाल ने कहा।

'अच्छा हुआ, वह नहीं आया। ऐसे ढीले-ढाले साथ में हों तो व्यर्थ ही विघ्न डालें।'

'सच बात है,' धनी बीच में बोली।

अम्बेलाल उग्रता से चारों ओर देखता रहा, और एकदम उसने

सदुभाई का हाथ पकड़ा। 'सदुभाई ! कुछ नहीं, मरते तक हम दोनों एक साथ रहेंगे।'

'सच बात है। अम्बेलाल ! जब तक हम लोग हैं, तब तक दुनिया झक मारती है। मेरी राष्ट्रसंघ की योजना के हम दोनों स्रष्टा व मूल हैं।'

'हां ! मित्र !' कह गांभीर्य से अम्बेलाल ने सुदर्शन का हाथ दबाया। उनके हृदय देश-भक्ति व भीषण कार्यदक्षता से उभरते थे।

'तुम्हारी योजना मैंने थोड़ी देखी है। सब उदाहरण व युक्तियां निकालकर अल्प सारांश निकालो, जिससे सबको समझने में ठीक हो।'

'हां, मैं ऐसा करता हूं। यह भी ठीक है।'

: २ :

लगभग दो-तीन दिन के पश्चात् केरशास्प व सुदर्शन चौपाटी पर एकत्रित होते थे; और मंडल के प्रधान व मंत्री प्रत्येक सदस्य का हाल, शक्ति व मंडल के कार्यक्रम के बारे में मंत्रणा करते थे।

केरशास्प के सिद्धान्त स्पष्ट नहीं थे, पर उनमें प्रेरकता थी, और सबको एकत्रित रख सत्ता चलाने की नैसर्गिक शक्ति थी। उसकी वाणी में उत्साह था, सत्ता थी, कड़ाई थी, और आवश्यकता पड़ने पर कटुता भी आती थी। प्रत्येक व्यक्ति उसे देख मानपूर्वक खड़ा हो जाता था; उसे सुन अपने विचार भूल जाता था।

सुदर्शन के सिद्धान्त दिन-प्रतिदिन स्पष्ट होते जाते थे; और केर-शास्प उन्हें समझ अपने कर लेता और तुरन्त नये रूप में नई झलक से प्रकट करता था।

आज दस दिन हुए, उसे केरशास्प मिला नहीं था। इसलिए सुद-र्शन को चिन्ता होने लगी। उसे पाठक व शिवलाल की बात करनी थी; अपनी योजनाओं का सारांश बताना था; ३१ तारीख को क्या करना

चाहिए, यह तय करना था; किस 'ट्रेन' से कैसे जाना चाहिए, यह निश्चित करना था और बहुत-सी बारीक बातों का विचार करना था। २६ तारीख के सबेरे वह अधीर हो गया। उसका इरादा एक दिन पहले बड़ौदा जाकर दूसरे दोस्तों के साथ अपनी योजनाओं के बारे में बात-चीत प्रारंभ करने का था; अन्यथा ३१ तारीख को अन्तिम निश्चय कैसे होगा? २६ ता० की रात को यदि बम्बई से रवाना होना हो तो २२ तारीख को सबेरे तो सबको कार्यक्रम निश्चित करना ही चाहिए; और २६ तारीख तो आ पहुंची।

केरशास्प एक छोटे मकान के तीसरे मंजले पर अकेला रहता था। केवल एक 'बॉय' उसकी सब व्यवस्था कर देता था। इस एकान्त आश्रम में वह व 'टेलीफोन' दोनों रुई-बाज़ार में व्यग्र रहते। सुदर्शन वहां गया तो दरवाज़े में ताला लगा था। उसकी समझ में न आया। क्या केरशास्प चला गया? क्या वह बीमार हो गया? क्या वह बड़ौदा गया? केरशास्प के बिना मण्डल क्या करेगा? यदि केरशास्प ३१ तारीख को बड़ौदा न आया तो? यह हो ही नहीं सकता।

सुदर्शन चिन्तातुर हृदय से नीचे उतरा, व उसने नीचे दूकान पर बैठे हुए ईरानी से पूछा। केरशास्प चाय वहां से मंगवाता था यह उसे पता था। वहां से उसे समाचार मिले कि केरशास्प सेठ सबेरे जल्दी गये हैं, वे शाम को आयंगे। 'अच्छा!' सुदर्शन ने घबराहट में कहा। उसका हृदय मानो डूबता हो ऐसा लगता था; और किसी प्रकार भी वह उसे निराशा की सतह पर टिका रखता था।

बम्बई के अमेय विस्तार में केरशास्प को कहां ढूंढना चाहिए? कहां कोलाबा? कहां सट्टा-बाज़ार? कहां मारवाड़ी बाज़ार? सुदर्शन को इस विभाग का बहुत कम पता था। वहां केरशास्प किस प्रकार मिलेगा?

दुःखित हृदय से वह घर आया। अम्बेलाल बहुत ही उत्साह में

था। सुदर्शन के दरवाज़े में प्रवेश करते ही अम्बेलाल छलांग मारकर उससे लिपट गया।

'दोस्त ! 'मां का भाग्योदय हुआ।'

'कैसे ?'

'हमारा प्रयोग सफल हुआ।'

'ऐं !' चकित होकर सुदर्शन ने कहा। उसके हर्ष का भी पार नहीं था।

खौलते उत्साह में भी धीमी, कांपती हुई आवाज़ में अम्बेलाल ने अभिनंदन स्वीकार किया।

'हाँ, दोस्त ! आज छुट्टी थी, इससे सबेरे मैंने व वकील ने अंतिम प्रयोग किया। पदार्थ, 'टेम्परेचर', समय सबकी ठीक व्यवस्था रखी, और सोचा हुआ परिणाम निकला। एक बूंद के हज़ारवें भाग ने दस गज जमीन खोद डाली। तीन बूंदों की 'ट्यूब' एक मिनट में 'राजा बाई टॉवर' उड़ा सकती है। अब सेना की आवश्यकता नहीं है, तोप की आवश्यकता नहीं है। सदुभाई, सदुभाई ! विजय हमारे भाग्य में लिखी है। हमारा मण्डल ही देश का उद्धार करेगा। आज शाम को एक और प्रयोग किया जायगा। मैं दो-चार 'ट्यूब' तैयार करता हूं। सदुभाई ! मैं तो अमर हो गया। हम सब अमर हो गए।'

इस उत्साह के पूर में सुदर्शन खींचा गया। उसका खिन्न हृदय नाचने लगा। उसकी श्रद्धा की पुनः स्थापना हुई। ऐसे शस्त्र से वह क्या नहीं कर सकेगा ? केरशास्प न होगा, तो भी काम चल जायगा। उसने अम्बेलाल से सुबह की बात की। उत्साह में पागल अम्बेलाल को केरशास्प की जरा भी परवाह न थी।

'पर यह गलती है। वह अवश्य बड़ौदा गया होगा,' सुदर्शन ने कहा।

'मुझे भी ऐसा ही मालूम पड़ता है।'

भोजन कर अम्बेलाल कालेज में प्रयोग पूरा करने गया और सुद-

शॉन अपनी योजना पुनः फिर से बदलने के लिए व संभवतः सुधारने के लिए बैठा।। अम्बेलाल को उसमें योग्य स्थान देना चाहिए।

आज रात में पूना से नारणभाई पटेल आनेवाले थे। वह, अम्बेलाल व नारणभाई तीन तो थे ही। और अम्बेलाल की इस विश्व-विप्लव करने वाली शोध की महत्ता से तीन होंगे तो तीन करोड़ को भारी पड़ेंगे। तब केरशास्प न होगा तो भी काम चल जायगा।

पर केरशास्प के बिना काम कैसे चले? उसकी योजना में दस सदस्यों व एक प्रधान की समिति मध्यबिंदु थी। प्रधान सर्वसत्ताधिकारी था; ग्यारह व्यक्तियों की समिति एक व्यक्ति के समान सुदृढ़ व समान विचारवाली थी। केरशास्प के बिना इस सुदृढ़ता व विचार-ऐक्य को कौन ला सकता है? उसके बिना सर्वग्राह्यत्व कौन प्राप्त कर सकता है?

केरशास्प से मिलने का, पुनः एक बार प्रयत्न करने का उसका मन हुआ। छः बजे तक उसने अम्बेलाल की प्रतीक्षा की, पर वह न आया, इससे वह अकेला निकला। अम्बेलाल के शोध से उसका हृदय आशा से छलकता था; और उसके मस्तिष्क में इस शोध के परिणामस्वरूप शक्य मालूम पड़ती हज़ारों योजनाएं रूप लेती थीं। केरशास्प के घर के पास आने पर तीसरे मंजले पर दीया दिखाई दिया व उसका हृदय नाच उठा। जाकर केरशास्प को विजय-संदेशा देने, उसे तैयार करने व बड़ौदा ले जाने की ही देरी थी। छलाँग मारता हुआ वह जीने पर चढ़ा और दरवाजे में आते ही चौंककर खड़ा हो गया।

एक छोटे मिट्टी के तेल के दीये के पास दोनों हाथ सिर पर रखे केरशास्प बैठा था। उसका मजबूत गठीला शरीर मानो दुःसह बोझ से चूर हो गया हो, ऐसा दिखाई देता था। उसके भरे हुए चेहरे को जागरण, चिंता व निराशा की सिकुड़नें भयानक बनाती थीं। उसकी आंखें सूजी हुई थीं। सामने आधा पिया हुआ चाय का प्याला और जिनको छुआ भी न गया था ऐसे खारे 'बिस्किट' पड़े थे। केरशास्प

इतनी निर्बलता का अनुभव कर सकता है, इसका विचार सुदर्शन को सपने में भी नहीं आया था।

सुदर्शन बोलने ही वाला था, कि केरशास्प ने उसे देखा, और 'टेलीफोन' बजा। केरशास्प ने सत्तापूर्वक सुदर्शन को हाथ से चुप रहने का इशारा किया, व 'टेलीफोन' लिया। 'हलो, प्यारेलाल! दो 'पॉइन्ट' क्या ...'फीचर', आया—क्या—ओ अच्छा—सौ गठड़ी 'कवर' करो। देखा जायगा—कितना भाव ?—देखो—हां—अच्छा एकदम 'कवर' करो—।' उसने टेलीफोन रख दिया और सिर पर हाथ रख बोला—'Oh God!' (हे प्रभु!)

'क्या है केरशास्प ?'

'सदुभाई! मैं खतम हो गया,' वह खांसकर बोलने लगा—'प्रत्येक घंटे में मैं तीस हजार रुपये खोता हूं।'

'ओ—' सुदर्शन ने आंखें फाड़कर कहा। क्या कहना है, यह भी उसे न सूझा।

'Bad luck' (दुर्भाग्य), केरशास्प ने कहा और निश्वास लिया।

'मैं सवेरे आया था।'

'मैं दिन में घर रहता ही नहीं।'

'क्यों ?'

'कर्जवाले मेरा जी खाते हैं। मेरे ऊपर 'वारंट' हैं।'

'तब ३१ तारीख को बड़ौदा में—'

'३१ तारीख को बड़ौदा में!' मृत्यु-शैया में पड़े हुए व्यक्ति के समान निस्तेज आंखें ऊँची करते हुए केरशास्प ने कहा।

'आप—'

'ट्रीं—ट्रीं—ट्रीं—ट्रीं—' 'टेलीफोन' बोला। सुदर्शन चुप रहा। 'हलो, कौन सौभाग ?' केरशास्प 'टेलीफोन' में बोलने लगा—'हां, क्या फीचर आ गया ? क्या तेजी है ? हां-हां क्या ?—हलो—दो

'पॉइन्ट'—ज़्यादा। मरीकान क्या है? हलो—कल मिलूंगा—हलो—।' कह जोर से उसने 'टेलीफोन' पटका—; और वेदना उसके मस्तक पर फैल गई।

इस समय क्या बोलना इसका सुदर्शन विचार करता था। कहां 'मां' का उद्धार और कहां प्यारेलाल व सौभाग? कहां देश-भक्ति व कहां मरीकान के 'फीचर'? मरीकान के 'फीचरों' में देश-भक्ति को पुष्ट करने वाले गुण जिस प्रकार उसने सोचे थे, उस प्रकार मालूम नहीं पड़े।

'केरशास्प—' वह कहने लगा।

'क्या केरशोजी सेठ हैं?' एक व्यक्ति ने आवाज़ दी।

'हां,' केरशास्प ने कहा व उसका मुख अधिक फीका पड़ गया।

'मेंधाजी,' वह कांपते हुए ओंठ से बड़बड़ाया और शान्त होने का परिश्रम उसने किया।

'यह कौन है?' सुदर्शन पूछ बैठा।

'कर्ज वसूल करने वाला है। मुझपर इसका तेरह हज़ार का कर्ज है।' केरशास्प ने जवाब दिया। और दरवाजे में आये हुए मारवाड़ी को देख वह हंस-हंसकर बोलने लगा—'कौन मेंधाजी! बैठिए-बैठिए। सदुभाई! अच्छा, तब नमस्ते! व्रजभूखणदास से कह देना कि मुझे कल पच्चीस हज़ार की हुंडी भिजवा दें। नमस्ते।'

मानो घबरा गया हो, इस प्रकार सुदर्शन वहां से निकल गया। उसे भान हुआ कि उस मारवाड़ी को सन्तुष्ट करने के लिए केरशास्प ने हुंडी की गप दी थी। वह जीना किस प्रकार उतरा यह उसे याद न रहा। जब वह रास्ते पर गया, तब मानो प्यारेलाल, सौभागचन्द व मेंधाजी उसके पीछे पड़े हों इस प्रकार घबराकर उसने पीछे देखा, और देर हो गई है, ऐसा ख्याल होने पर कांदावाड़ी की ओर वह चला।

: ३ :

रात के दस बजे वे चरनी रोड से निकलने वाले थे, तो भी जब वह आठ बजे घर पहुंचा, अम्बेलाल आया नहीं था। केरशास्प के यहां प्राप्त अनुभव से वह बहुत ही खिन्न हो गया था, और उसे भय लगता था कि ३१ तारीख की सभा ठीक तरह से पूरी न हो सकेगी। जिस सभा के लिए उसने साल-भर तक विचार किये थे व योजना बनाई थी, जिस सभा के लिए उसने आज पच्चीस दिनों से भूख व जागरण सहे थे, क्या वह सभा बिलकुल मिट्टी में मिल जायगी? उस सभा पर 'मां' का भविष्य अवलम्बित था; उस सभा पर उनके मण्डल के अस्तित्व का आधार था; उस सभा पर उसका व उसके मित्रों का भविष्य अटका हुआ था। और उसका क्या होने वाला था?

मिनट के पश्चात् मिनट बीतने लगी, पर अम्बेलाल नहीं आया। धनी के साथ बात करते हुए वह रुक गया, कमरे में चक्कर लगाकर वह थक गया, बरामदे से देखकर वह उकता गया। वह भोजन कब करेगा और गाड़ी को कैसे पकड़ सकेगा? अम्बेलाल को भी क्या हुआ? सबेरे उसने सुदर्शन के साथ खड़े होकर 'मां' का उद्धार करने की प्रतिज्ञा की थी। दृढ़ जोशवाला निडर अम्बेलाल—

अम्बेलाल के पैर की आहट आई।

'धनी बहन, थाली लगाइये।' सुदर्शन ने आवाज़ दी। वह दरवाज़े की ओर दौड़ा।

दरवाजे में अम्बेलाल हंसते मुंह से खड़ा था—पर कैसा अम्बेलाल! उसके माथे में एक पट्टी थी, उसका हाथ झोली में था, और उसके कोट पर खून के दाग़ थे; तो भी उसके मुख पर व उसकी आंखों में विचित्र आनन्द का तेज था।

'अम्बेलाल! यह क्या है?' घबराकर सुदर्शन ने पूछा।

'कुछ नहीं, सदुभाई! यह तो मेरा प्रयोग सफल हुआ। हा—हा।'

गम्भीर अम्बेलाल को इस प्रकार छोटे लड़के के समान हंसते हुए

देख सुदर्शन चकित हुआ। प्रयोग सफल होने का यह आनन्द था!

'अच्छा चलो, भोजन कर लें; गाड़ी का समय हुआ।'

अम्बेलाल हंसा। उसकी आंखों में अपरिचित तूफान चमका। 'ट्रेन! मैं बड़ौदा नहीं जाता।'

'हैं!' स्तब्ध बने हुए सुदर्शन को इतना शब्द ही बोलने का होश रहा।

'नहीं, मैं अब निपट गया,' हंसकर अम्बेलाल ने कहा। 'मैं अब राजनैतिक प्रवृत्ति में भाग न लूंगा।'

'क्या कहते हो, अम्बेलाल? आज सवेरे—।'

'सदुभाई! सबेरे कलयुग था, इस समय सतयुग है। इधर आओ, समझाता हूं।' कह उसने अच्छा हाथ सुदर्शन के गले में डाला व उसे बाहर ले गया। धीरे-धीरे जीने की ओर जाते-जाते वह बात करने लगा—'सदुभाई! तुम्हारा आश्चर्य स्वाभाविक है। देखो, मैं व मिस वकील 'मैट्रिक' से 'बी० ए०' तक साथ-साथ थे।'

'हां।'

'हम एक साथ पढ़ते—'

'हां।'

'एक साथ घूमते—'

'हां।'

'देश के उद्धार के एक साथ सपने रचते—'

'फिर?'

'पर हम जानते न थे—' हंसकर अम्बेलाल ने कहा।

'क्या?'

'कि हम अनजान प्रणयी हैं।' कह मानो सुदर्शन मिस वकील हो इस प्रकार अम्बेलाल ने उसे दबाया।

'सबेरे प्रयोग सफल होने लगा। दोपहर में फिर करने गया तो कोई परिणाम नहीं निकला। बहुत सिरपच्ची की, आखिर गलती से

तापक्रम बढ़ जाने से 'ट्यूब' फट गई—' और मानो ऊपर से इन्द्र ने पुष्पवृष्टि की हो, उस आनन्द से अम्बेलाल बोलने लगा, 'कांच के टुकड़े हुए।'

'अच्छा,' तिरस्कारपूर्वक सुदर्शन ने कहा। उस भाग्यशाली क्षण में हमारे हृदय के द्वार खुले, वर्षों के पटल दूर हुए, हमारी आत्माओं ने एक-दूसरे को पहचाना, और हम लिपट पड़े। सदुभाई! उसने विवाह के लिए स्वीकृति दी। मेरा अभिनन्दन करो, दोस्त!' कह वह सुदर्शन का हाथ लेकर हिलाने लगा।

क्षण-भर के लिए सुदर्शन को लगा कि क्या यह सपना तो न था? क्षण-भर के लिए अम्बेलाल उसे पागल मालूम पड़ा, जिसकी शोध से साम्राज्य उखड़ने वाला था, जिसकी प्रतिज्ञा से 'मां' का उद्धार होने-वाला था, वह तो किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया।

'सदुभाई! उस गाड़ी में मिस वकील बैठी है। मिलो तो सही।'

सुदर्शन जोश से फिरा, व बोला—'अम्बेलाल, स्त्री नहीं थी, इससे 'मां' के उद्धार की प्रतिज्ञा ली थी, क्यों?'

अम्बेलाल हंसा। 'सदुभाई! भारत को स्वतन्त्र होने में कितना ही समय लगेगा। क्या तब तक ऐसे ही रहा जा सकता है? मेरे जीवन में यह पहला सुख विधि ने दिया है, क्या उसे छोड़ा जा सकता है? मुझे अब नौकरी ढूंढकर मिस वकील से विवाह कर लेना चाहिए। फिर—'

'फिर क्या सिर?' क्रोधावेश में सुदर्शन ने कहा। 'याने तुम बड़ौदा नहीं आओगे।'

'कैसे आ सकता हूं, सदुभाई! विचार तो करो मिस वकील प्रतीक्षा करती हैं। हमें 'ग्रीन' में भोजन कर नाटक देखने जाना है। तुम जाओ, मैं स्टेशन भी नहीं आ सकता। क्षमा करना। पर समझते हो न? आज मेरा पुनर्जन्म हुआ है। बड़ौदा में क्या होता है, वह मुझे लिखना, नहीं तो वापस आओ तब।' पर सुदर्शन तो उसे कब से छोड़ गया

था। भयंकर उग्रता से सुदर्शन मज़दूर को बुलाकर कमरे में गया।

'धनी बहन !' उसकी आवाज़ निश्चेतन मालूम पड़ती थी, 'मैं जाता हूं।'

'क्यों, कहां जाते हो ? भैया, कहां ? थालियां लगा दी हैं।' धनी हाथ में चम्मच लेकर आगे आई।

'अम्बेलाल अभी भोजन नहीं करेंगे, रात में आयंगे। मैं अकेला बड़ौदा जाता हूं। मुझे भोजन नहीं करना है।'

धनी ने देखा कि कुछ असाधारण घटना हुई है। वह हाथ में चम्मच ले पास आई।

'सदुभाई ! क्या हुआ है ? तुम ऐसे कैसे हो गये हो ? भैया क्यों नहीं आते ?'

'कुछ कहने जैसा नहीं है।, सुदर्शन ने कहा।

'मुझे कहो, मेरी कसम !' धनी ने कहा,'सदुभाई ! क्या हुआ है ?'

'धनी बहन, 'मंडल' खतम हो गया। 'मां' का उद्धार खो गया। मेरा जीवन-कर्तव्य पूरा हो गया।' आंखों में से आंसू पोंछते हुए सुदर्शन ने कहा।

'पर है क्या, वह तो कहो ?'

'केरशास्प कर्ज़दार हो गया, शिवलाल श्रीनाथजी गया, पाठक ने नौकरी कर ली, अंबेलाल मिस वकील से विवाह करने का निश्चय कर कल से नौकरी ढूंढने लगेंगे।' उसने आक्रन्दपूर्वक कहा।

'क्या कहते हो ?' धनी चकित होकर बोली।

'यह तो मैं तुम्हें अपना मानकर कहता हूं, और अब मैं अकेला 'मां' का उद्धार कैसे करूंगा ?' वह एक क्षण के लिए चुप रहा। उसे एक सिसकी आई। थोड़ी देर तक दोनों चुप रहे, और धनी ने आकर सुदर्शन के हाथ-पर-हाथ रखा।

'अकेले कैसे हो ? क्या मैं नहीं हूं ?'

सुदर्शन ने एकदम सिर ऊंचा किया, और धनी की अश्रुपूर्ण आंखों

की प्रेरणा का पान किया। उसने हिम्मत से उसका हाथ दबाया।

'हां, जब तक तुम्हारी प्रेरणा है, तब तक मैं कभी निराश न होऊंगा। मैं आऊंगा, विजय करके।' सुदर्शन में दृढ़ता का सञ्चार हुआ। उसकी आंखें तेजस्वी हुईं।

'और मैं तब तक प्रतीक्षा करूंगी—देखें तो पूरी दुनिया—'

सुदर्शन ने धनी के सरल मुख पर दैवी सौन्दर्य का तेज चमकता हुआ देखा, और मजदूर के साथ वह स्टेशन पर गया।

: ४ :

नारणभाई पटेल 'सूरत-कांग्रेस' के पश्चात् हाथ में नहीं रह सकते थे। पूरी 'सूरत-कांग्रेस' का श्रेय उन्हें अकेले को ही है, यह बात उन्हें दीये-जैसी सोते व जागते मालूम पड़ती थी, और इससे उनके सन्तोष व आत्म-श्रद्धा का पार न था। वह स्वतः, उनके मित्र व चरोतरी जात-भाई मिलकर अंग्रेजों को निकाल बाहर करेंगे, यह तो उन्हें खेल मालूम पड़ा।

कांग्रेस के बाद वे पूना गये सही, पर पढ़ने का उनका इरादा नहीं था और जब से उन्हें यह पता लगा कि नेपोलियन गणित में गलती करता था, तब से उनका विश्वास हो गया कि स्वतः उससे बहुत बढ़े हुए थे; क्योंकि वे कभी गलती करते ही न थे।

पूना में तिलक के अनुयायियों के साथ घूमना, देश को स्वतन्त्र करने की बातें करना, सभाओं में जाना, आवश्यकता पड़ने पर व्याख्यान देना आदि उनका रोज का कार्यक्रम बन गया। उन्हें धीरे-धीरे अपने प्रौढ़ व्यक्तित्व का विचार होने लगा। जहां जाते वहां लोग हंसकर स्वागत करते थे, मित्र उनके साथ ही रहते थे। बहुत से तो उन्हें लिपट जाते। कितने तो उन्हें भोजन के लिए बुलाते, और सब उनकी वीरता, उनका व्यवहार, मीराबो, दांता, नेपोलियन आदि की बातें और

उनकी डंडा घुमाकर बोलने की आदत से मुग्ध हो जाते थे । उन्हें ऐसा मालूम पड़ा कि विप्लव प्रारम्भ होने के पहले कोई एक आकर्षक व प्रेरक व्यक्ति देश में प्रकट होता है—ऐसे वे स्वत: थे । वे स्वतः मीराबो होंगे या नेपोलियन, इतना ही प्रश्न उनके लिए सोचने का था; पर मीराबो के समान उनकी आवाज, रूप व सर्वव्यापी चंचलता थी, उसी प्रकार नेपोलियन-जैसा गणित का शौक, दूरदर्शिता, और सम्राट्-सुलभ स्वभाव था, पर यह निश्चय स्वयं हो जायगा ऐसा मान वे इस विषय पर अधिक समय नहीं बिताते थे ।

३१ जनवरी को उनके मंडल का समारंभ याने लगभग 'बास्टील' की विजय के समान महाप्रसंग था । उस दिन से उनकी विजय का श्रीगणेश होगा । या तो वे 'गुप्त मंडल' के प्रमुख बन चारों दिशाओं में कहर पैदा करेंगे; या समस्त चरोतर को साथ ले, खुले तौर पर अत्याचारी के गढ़ों को भस्म करेंगे ।

२६ जनवरी को दोपहर में वे बम्बई आने के लिए रेलगाड़ी में बैठे। आगामी महाप्रसंग की महत्ता से वे प्रफुल्लित थे। वे खिड़की में से सिर निकाल, आंखें फाड़कर देखने लगे । गाड़ी छूटने का समय होने पर माननीय जगमोहनलाल आकर 'फर्स्ट क्लास' में बैठे ।

नारणभाई ने पहले तो इस 'नरम दल' वाले की ओर तिरस्कार से देखा; पर गाड़ी चलने पर उसके प्रति नरम हुए । आदमी बुरा नहीं था । सदुभाई की जाति का; और श्वसुर भी किसी समय हो जाय, हो जाय काहे का—था ही । उसकी लड़की व उसकी दौलत सदुभाई के द्वारा आखिर राष्ट्रीय उद्धार के लिए ही आवेंगे । वे धनाढ्य, होशियार व प्रतिष्ठित थे । यदि वे मण्डल में सम्मिलित हों तो मण्डल को कितना लाभ हो सकता है ? पर ऐसे अभिमानी आदमी को कहने से क्या लाभ होगा ?

खिड़की आने पर नारणभाई उतरकर 'फर्स्ट क्लास' की ओर जा आये । अकेले माननीय जगमोहनलाल कहानी पढ़ते थे । नारणभाई का

हृदय उनकी ओर उभर आया। इतना अच्छा व्यक्ति 'नरम दल' में रहे ? पर उनके पास जाने का उनका मन न हुआ। वे पुनः अपने डिब्बे में चढ़ गए।

नारणभाई को अपने व्यक्तित्व, अपनी शक्ति में श्रद्धा थी। उन्होंने 'सूरत कांग्रेस' को भङ्ग किया तो क्या वे एक जगमोहनलाल को बिगाड़ नहीं सकते थे ? जो आगामी विप्लव का नेता होने को सरजा गया हो क्या वह एक 'नरम दल' वाले को समझा नहीं सकता ? 'हुं, उन्हें बिगाड़ना तो सरल बात थी।' नारणभाई ने कहा।

नारणभाई का अंतर इस समय मिजाजी हो गया था। साधारणतया नारणभाई व उनके अन्तर के बीच इतना अच्छा सम्बन्ध था कि कभी वे परस्पर मिजाज नहीं करते थे। ऐसे परम मित्रों में इस समय मतभेद हुआ।

'नारणभाई !' उनके अन्तर ने जरा तिरस्कार से कहा, 'तुम खुशामदी हो, तुम्हारा 'माननीय' की पहचान करने का, उनकी खुशामद करने का मन हुआ है।'

'अन्तर !' क्रुद्ध होकर आकाश की ओर आंखें फाड़कर नारणभाई ने कहा, 'तू भी चाहे जैसा बोलता है, पर मैं यह सहन नहीं कर सकता। मैं निःस्वार्थी हूं, देशभक्त हूँ, विप्लववादी हूं। मैंने कांग्रेस का भङ्ग किया; मैंने फीरोज़शाह को जूता मारा। क्या मैं खुशामद कर सकता हूं ? यह कैसे हो सकता है ?'

'तब तुम्हें 'माननीय' की परवाह क्यों होनी चाहिए ?' अन्तर ने हठ से पूछा।

'हां, यह प्रश्न उचित है।' समाधान-वृत्ति से नारणभाई ने मिठास से पुनः समझाना शुरू किया। 'मैं केवल एक साधारण मनुष्य नहीं हूं, पर देश का नेता हूँ। भारत में विप्लव करना मेरा कर्तव्य है। देश के सब तत्व साथ रखना मेरा कर्तव्य है, समझे ? जरा खुश होते नारणभाई ने कहा।

'तब 'फर्स्टक्लास' में क्यों न जाया गया ? ऐसा कहो कि उसके प्रभाव से प्रभावित हो गए, नहीं तो खिड़की पर से लौट क्यों आये ?' मज़ाक में अन्तर ने पूछा ।

'तू क्या समझे ?' घबराकर नारणभाई ने कहा, 'क्या मैं किसीसे डरा हूँ कि ऐसे निर्जीव माननीय से डरूँ ?'

'जाओ भला?' उस अन्तर ने जोर से कहा, 'तुम्हारा मुंह ही दीखता है न ? तुम तो गंवार हो; वह तो जबरदस्त वकील है । तीन मिनट में तुम्हें मात देगा ।'

'अंतर ! तुम तो बिना समझे बोले ही जाते हो । मात दी........ उसके बाप का.......।' नारणभाई ने रौब से जवाब दिया । 'मुझे क्या मात करेगा ? ऐसे तो कितनों को ही मात दी है ।'

'तब उठो, देखें' इस प्रकार पूरा समय नारणभाई व अन्तर के बीच बहस होती रही ।

खंडाला आया, व देशभक्ति से प्रेरित हो, अपने 'माननीय' के प्रति कर्तव्य से प्रेरित हो, और अन्तर के उलाहनों से उत्तेजित हो नारणभाई 'फर्स्ट क्लास' में चढ़ गए । गाड़ी के चलने पर वे डिब्बे में जाकर माननीय जगमोहनलाल के पास के 'सोफे' में बैठ गए ।

एक ही पल के लिए 'माननीय' कड़ाई से समाचार पत्र के बाहर दृष्टि डालकर तटस्थ-वृत्ति से पुनः पढ़ने लगे ।

'हं-हं-हं-हं—' नारणभाई खांसने लगे ।

'क्या मैं नहीं कहता था ?' उसके शैतान अन्तर ने कहा—'तुम में हिम्मत ही कहां है ? देखो तुम्हारे हाथ कांपते हैं । तुम्हारी पीठ पर तो पसीने की धार बहने लगी । तुम नामर्द ही हो ।'

'मैं—नहीं हूं—।' नारणभाई ने उसे गुस्से में जवाब दिया, और धीरे-से हंसकर 'माननीय—' शब्द ज्यों-त्यों गले में से निकला ।

शान्त तिरस्कार से 'माननीय' ने सिर ऊँचा किया, 'क्या मुझसे बात करना है ? कौन हो ?'

'जी हां—'

'देखो फिर खुशामद—' अन्तर ने अपनी गाथा चलाई।

'मैं खुशामद नहीं करता। यह तो शिष्टाचार कहाता है।'

नारणभाई ने उसे जवाब दिया व 'माननीय' की ओर देखा। 'मैं आपसे बात करना चाहता हूं।'

'मुझे यहां समय नहीं है,' लापरवाही से 'माननीय' ने कहा। कोई मुवक्किल होगा? कोई पागल होगा?

'मैं आपके सदुभाई का मित्र हूं।'

'माननीय' ने उत्तर नहीं दिया।

'सूरत में सर फीरोजशाह को जूता मैंने मारा था, समझे साहब?' अपनी महत्ता दरशाते हुए नारणभाई ने कहा।

एक क्षण के लिए शान्त 'माननीय' की आंखों में गुस्सा आया। 'मैंने तुम्हें एक बार कहा कि इस समय मैं बात नहीं करना चाहता। क्या 'कंडक्टर' को बुलाऊं?'

एक क्षण के लिए नारणभाई के पैर कांप उठे; और इस कम्पन को रोकने के लिए वहां से भागने का उसका मन हुआ।

पर उस अन्तर से तोबा—'नारणभाई! नमस्ते! तुम डरपोक हो, नामर्द हो। बस जरा कहा कि भागे—'

'चुप रहो!' उत्तेजित होकर नारणभाई ने उसे जवाब दिया।

'माननीय!' उन्होंने उस उत्तेजना के प्रताप से आवाज जोर से निकाली—'आप प्रजा के सेवक कहे जाते हैं, और मैं प्रजा—आपसे बात करना चाहता हूँ तो आप करते नहीं।'

'माननीय' ने सिर ऊंचा किया। इस मूर्ख से यदि बात न की तो अवश्य कल समाचारपत्र में गर्विष्ठ 'नरम दल' वाले प्रजा के सेवक कहे जाने वाले के बर्ताव के बारे में कुछ प्रकाशित होगा। उन्होंने पुस्तक पैर पर रख कड़ाई से पूछा—'क्या कहना है?'

नारणभाई का मुख हास्य से भर गया—'देखिये साहब, आप

होशियार हैं, विद्वान हैं, देशभक्त हैं, आप हम लोगों में सम्मिलित हो जाइये ।'

जगमोहनलाल को वह कोई विचित्र व्यक्ति मालूम पड़ा; और एक आध घण्टा मज़ा आने की आशा से वे जरा हंसे—'हम याने कौन, सदु भी शामिल है न ?'

'अवश्य ! अवश्य ! वह तो हमारा श्वास व प्राण है । वह सब जानता है । प्रत्येक देश के विप्लव, उसकी जबान पर हैं ।'

'ऐसा ! बहुत होशियार है । तब तुम लोग करते क्या हो ?'

'आप हम लोगों में सम्मिलित हो जाइये, तब कहा जाय ।' नारणभाई को मालूम पड़ा कि उसके व्यक्तित्व की छाप से 'माननीय' मात खाने लगे थे ।

'यह लो,' अपने अन्तर को उन्होंने फटकार लगाई ।

'पर 'हमारे' का अर्थ क्या है ?'

'गरम दल के—'

'क्या तुम तिलक के पक्ष के हो ?'

'तिलक के सहायक अवश्य हैं, पर हमारा पक्ष अलग है ।'

'याने कौनसा पक्ष ?'

'है' मानो बहुत अवश्यकीय बात गुप्त रखते हों, इस प्रकार गंभीर होकर नारणभाई ने कहा ।

'क्या सूरत में तुमने जूता फेंका था ?'

'हां ।'

'तिलक की ओर से ?'

'नहीं, हमारा 'मंडल' अलग है ।'

'बंगाल की 'Secret Society?' हंसकर 'माननीय' ने पूछा ।

'नहीं ।'

'तब तो गुजरातियों का गुप्त पक्ष होगा ।' तीस वर्ष के परिणाम-

कारक वकीली 'क्रॉस एक्ज़ामिनेशन' की शक्ति से 'माननीय' ने कहा।

'हां-हां,' 'माननीय' पिघले, ऐसा मान नारणभाई हंस पड़े।

'तुम तो आगे बढ़े हुए सदस्य होगे ?'

'यह सब कैसे कहा जा सकता है ?'

'पर उसके बिना तुम्हारे निमन्त्रण के बारे में विचार कैसे हो ? 'बॉय !' 'रिस्टोरां' के 'बॉय' को जाता देख उन्होंने कहा, 'चाय लाओ। पियोग न ? तुम्हारा नाम क्या है ?'

'नारणभाई पटेल।' 'माननीय' के साथ 'फस्ट क्लास में चाय पीने का निमन्त्रण मिलने से वे अवश्य 'मण्डल' में सम्मिलित होंगे ऐसा विश्वास हुआ और वे बोले।

'बोलो, तुम तो 'मण्डल' के नेता होगे।'

'आप गुप्त रखें तो कहूं।'

'अवश्य।'

'परमेश्वर की सौगंद ?'

'हां, परमेश्वर की सौगंद।' हंसी छिपाकर 'माननीय' ने कहा। उन्हें मज़ा आ रहा था और इस बात में आनन्द आता था, इससे नारणभाई से मैत्री करने का उन्होंने निश्चय किया।

'क्या सदु भी नेता है ?'

'वह तो मंत्री है।'

नारणभाई को विजय निश्चित जान पड़ी। इस व्यक्ति की ओर उनका हृदय प्रेम से उभर गया। चाय रक़ाबी में डाल पीते हुए नारण भाई को विश्वास हुआ कि उनके समान अच्छा, होशियार व विश्वास-पात्र व्यक्ति दूसरा नहीं था। और ऐसे कीमती मनुष्य को अपना बनाने के लिए भावी विप्लव का वह नेता अपनी प्रवृत्ति, 'मण्डल' के कारनामे, सूरत में अपने द्वारा की गई सेवाएं आदि सबका इतिहास कहने लगा।

कल्याण आने पर 'माननीय' ने बात बंद की।

'अच्छा, नमस्ते। तुम्हारा 'मण्डल' हो जाय, तब मिलना। फिर मैं देखूंगा।'

'अवश्य ?'

'इसमें क्या कुछ कहना पड़ता है ?'

'केवल तन, मन व धन 'माँ' के उद्धार के लिए अर्पित करने पड़ेंगे।'

'अवश्य।'

'इन विलायती कपड़ों को निकाल स्वदेशी पहनने पड़ेंगे।'

'अवश्य !' कह 'माननीय' स्टेशन पर उतरे।

सुलोचना के लिए वर नहीं मिलता, यह विचार 'माननीय' को हमेशा चिन्तित करता था; जाति में सुदर्शन अच्छे-से-अच्छा वर था, यह भी निर्विवाद था। इस समय सुदर्शन को सुधार सुलोचना से उसका विवाह कराने की एक युक्ति सूझी।

वे तारघर में गये व प्रमोदराय को उन्होंने जरूरी तार किया—'Sudarshan in extremely dangerous hands. Start immediately.'

तार कर 'माननीय' ने सिगार सुलगाई और हंसी छिपाकर वे कहानी पढ़ने लगे।

: ५ :

सुदर्शन भूखा, थका हुआ व निस्तेज चरनी रोड आ पहुंचा। उसके अन्तर में निराशा बस गई थी। उसमें बड़ौदा जाने का उत्साह बचा नहीं था। मानो केवल एक निष्फलता प्राप्त की थी, ऐसा शुष्क कर्तव्य उसे ले जाता था।

वह स्टेशन पर आया, और थोड़े समय में नारणभाई अन्दर आये। उनके एक हाथ में डंडा, और दूसरे हाथ में एक गठरी थी। उनका विशाल मुख हास्य से परिपूर्ण था, और उनकी आंखें दो अंगारों

के समान चमकती थीं। उनकी टोपी हटकर ठीक सिर के पिछले भाग पर जा बैठी थी।

'क्यों सदुभाई, आगये ?' सुदर्शन को देख वे उसकी ओर आये। 'मित्र ! हमारी विजय ही है।' उसने नीचे झुककर कान में कहा।

सुदर्शन अपनी निराशा की वेदना से अस्वस्थ था। उसे मौज से आते हुए नारणभाई को एक तमाचा मारने का मन हुआ। पर नारण-भाई के दर्शन व उनका उल्लास दोनों का प्रभाव उस पर हुआ। वह हंसा।

'क्यों, मजे में हो ? मैं समझा कि तुम न आओगे।'

'अरे, यह कोई बात है। मेरे तो शूरवीर के वचन हैं। मेरे लाफायत !'

'लाफायत कैसे ?' जरा चकित होकर सुदर्शन ने पूछा।

'कहता हूँ, पर दूसरे सब कहां हैं ?'

'वह भी कहता हूँ।' कटुता से सुदर्शन ने कहा।

'यह गाड़ी आई।' रेलगाड़ी आई, और वे उसमें बैठे।

'बोलो, मैं लाफायत कैसे बन गया ?'

'देखो, जब हम विप्लव का आरम्भ करें, तब क्या काम करनेवाले हैं, यह तो जानना चाहिए। तुम लाफायत होने योग्य हो, पर वे लोग क्यों नहीं आये ?'

'सारांश में इतना ही कि हम सब गधे हैं। शिवलाल श्रीनाथजी भाग गया, पाठक एकसौ पच्चीस के वेतन में फंस गया, केरशास्प मारवाड़ी के हाथ में फंस गया, अम्बेलाल स्त्री के लालच में फंस गया, और मैं अपनी मूर्खता से अपने सपनों में फंस गया।'

'घबराओ नहीं, सदुभाई !' नारणभाई ने उसकी पीठ थपथपाकर कहा, 'मैं हूँ तब तक हिम्मत क्यों हारते हो ? मैं अकेला इक्कीस को पूरा पड़ सकता हूं। मैंने कहा कि हमें अपनी 'पोज़ीशन' निश्चित करनी

चाहिए। मैं बुद्धि, शक्ति, मेधा से महान् स्थान प्राप्त करने को सरजा गया हूं। मैं व तुम दोनों—'

ये शब्द सुदर्शन ने सबेरे ही सुने थे, इस समय पुनः उन्हें सुनने से उसे कम्प हुआ।

'लाफायत—तुम कौन ?' कटुता से सुदर्शन ने पूछा।

'क्या सोचते हो ?' गर्व से छाती फुलाकर नारणभाई ने कहा—'मैंने चरोतर में जोश भरा, मैंने सूरत-कांग्रेस का भंग किया, मैंने आज एक नया शिष्य बनाया। मैं ही मण्डल चलाऊंगा। यह देखते हुए मैं या तो मीराबो या नेपोलियन हूँ, तुम लाफायत हो। हम दोनों मिल कर—'

सुदर्शन अनिर्वाच्य धिक्कार के भाव से नारणभाई की ओर देखने लगा।

'नारणभाई ! यह क्या बोलते हो ? तुम इस समय बिलकुल ऐसे क्यों हो गए ?'

'बिलकुल क्या है ? मैं नेपोलियन बनूं तो इससे तुम्हें क्यों ईर्ष्या होती है ? आज मैंने देखते-ही-देखते 'माननीय' जगमोहनलाल को शिष्य—'

'क्या ?' एकदम आंखें फाड़कर सुदर्शन ने पूछा।

'माननीय के साथ गाड़ी में था—पूना से; 'Fine man' (अच्छा आदमी), सच्चे देश-भक्त हैं, मैंने उनसे अपने मण्डल की बात की—'

'अरे ! पर वे तो 'नरम दल' के फीरोज़शाह के साथी हैं, सरकार के पिट्ठू।'

'अपमान ! अपमान ! ऐसी झूठी अफवाह से मैं हिचकिचाता नहीं। सदुभाई, आज मैंने स्वतः बातचीत की। मुझमें राष्ट्र-नेताओं की परिणाम-कारक दृष्टि है। मैंने तुरन्त ही पहचान लिया कि यह आदमी हमारा होने के लिए सरजा गया है। मैं तुरन्त ही पहुंचा व सीज़र के समान

'Veni-Vidi-Vici' (मैं गया, मैंने देखा, मैंने जीता)। मेरे काम में देरी नहीं हो सकती। हा-हा-हा।' एक के बाद एक हर्षपूर्ण शब्द मुख से निकालते हुए नारणभाई ने कहा।

'वे मेरे शिष्य बने। 'मण्डल' में सम्मिलित होना उन्होंने स्वीकार किया। आवश्यकीय कार्य न होता तो वे बड़ौदा आते। तुम लोगों से किसीसे न हुआ वह मैंने थोड़ी-सी देर में कर बताया।' घबराया हुआ सुदर्शन त्रस्त आंखों से देखने लगा। इस वाग्धारा से उसका श्वास रुँध रहा था।

'बाप रे बाप!' निस्तेज ओंठ से सुदर्शन बोला।

'बहुत भला आदमी है। मुझे चाय भी पिलाई अपने डिब्बे में। यह तो तुम नाहीं करते हो; मैं होऊँ तो तुरन्त उन्हें अपना श्वसुर बना लूँ। तुम्हारे लिए उन्हें बहुत प्रेम है। क्या विचार है?'

सुदर्शन अधिक न सह सका। उसके क्रोध का पार न रहा। उठकर उस हँसते हुए, मोटे नारणभाई का गला दबोचने की उसकी उत्कट इच्छा हुई। पर वह ओंठ दाबकर चुप रहा।

'मेरे लिए क्या विचार किया?' आत्मसंतोष के आनंद में नारणभाई ने पूछा।

'मैंने विचार किया,' ओंठ दाबकर धीरे-धीरे सुदर्शन ने क्रोध का विष बाहर निकाला, 'तुम प्रजापति के सम्पूर्ण व विशुद्ध अश्व हो।'

'याने?' एकदम चौंककर नारणभाई ने कहा।

'याने क्या, ठीक गधे!' सुदर्शन ने कहा, 'माननीय जगमोहन-लाल-जैसे पक्के चालाक को हमारी पूरी योजना कह आये। हम सब की दुर्दशा की। कल सब गिरफ्तार किये जायंगे, क्या इसका भी ख्याल है? जरा तो अक्ल से काम लेना था।'

'क्यों सदुभाई! बहुत बढ़ रहे हो? मुझे ऐसा नहीं कह सकते, समझे? देश की सच्ची सेवा तो मैं करता हूं, तुम नहीं। क्या तुम अकेले ही मण्डल को डकार जाना चाहते हो?'

'मुझे तो तुम्हारे मण्डल व तुम्हारे किसीका काम नहीं है। कब से क्या बोल रहे हो, क्या इसका भी ख्याल है?'

'हां, है—है। यह तो केवल ईर्ष्या है। तुम्हें—'

'मुझे तुमसे अधिक बात नहीं करनी है। मेरा तुम्हारे 'मण्डल' से कोई सम्बन्ध नहीं है।' धीरज का अन्त आने से सुदर्शन बोला, 'हमारे-जैसे मूर्ख क्या कर सकते हैं?'

'तुम मूर्ख हो—मैं नहीं हूँ,' गर्व से नारणभाई ने कहा, 'तुम्हारी व हमारी दोस्ती आज से टूट गई। तुम्हारे 'मण्डल' में मैं नहीं रहूंगा। मैं अकेला ही देश का उद्धार करूंगा। देखो, छः महीने में मैं तुम्हें नीचा झुकाऊंगा,' यह कह उसने आकाश की ओर देखकर कहा, 'लोग कितने ईर्ष्यालु होते हैं! वे किसी का उत्कर्ष देख ही नहीं सकते।'

इतने में स्टेशन आया। नारणभाई की आंखें क्रोध से भर गई थीं। क्रोध से उनके नकसुरे धम्मन के समान आवाज करते थे। उन्होंने दरवाज़ा खोलकर अपनी गठरी ली। 'ईर्ष्यालु व्यक्ति का मैं मुख देखना नहीं चाहता,' वे बड़बड़ाये।

नारणभाई डिब्बा छोड़कर दूसरे डिब्बे की खोज में गये। सुदर्शन तिरस्कारपूर्वक देखता रहा।

: ६ :

'ट्रेन' चली और सुदर्शन तिरस्कारपूर्वक व भग्न-हृदय की व्यथा में ज़ोर से हँसने लगा। यह उसका मण्डल है, ये उसके आयोजित संघ के कार्यकर्ता हैं; ये देश के उद्धारक हैं; ये स्वातन्त्र्य के साधक व 'माँ के प्राण पुनः ला देने वाले' नरवीर हैं! उसकी दृष्टि में प्रत्येक स्पष्टरूप से दिखाई दिया। सब कैसे बच्चों के समान, कैसे मूर्ख व कैसे निर्वीर्य थे! इनमें एक भी वीर नहीं, एक भी अक्लवाला नहीं है। और वह

मीराबो व नेपोलियन ! 'अरे भगवान् !' कह वह आत्म-तिरस्कार से पुनः हँसा ।

तपते हुए सिर को शान्त करने के लिए वह खिड़की से बाहर देखने लगा । वे सब मूर्ख थे, वह स्वतः मूर्खों का शिरोमणि था । उसमें एक समय सपने देखने की शक्ति थी; वे सब मित्र भी एक प्रकार के सपने देखते थे—केवल सपने ही ! उनकी सम्पूर्ण सृष्टि सपनों की ही बनी हुई थी । जिन्हें वे 'मां' कहते उसे 'मां' मानते नहीं थे । जो उद्धार उन्हें करना था, वह उद्धार नहीं था, पर वर्तमान काल की चकाचौंधी से उत्पन्न भ्रम था । जिन्हें वे देव के समान नेता मानते थे, केवल महत्वाकांक्षी, अल्प दृष्टि के सामान्य मनुष्य थे; जो अपने को नरवीर मानते थे, वे केवल चंचल बुद्धि के, कच्चे व मानवतारहित विद्यार्थी थे । और वह स्वतः बुद्धिहीन, अपने को धोखा देने वाला मूर्ख था; मूर्ख नहीं, पर पागल था । पागलपन की धुन में उसने केरशास्प को विप्लव-विधाता माना; शिवलाल को निःस्वार्थ राजनीति-कुशल माना; अम्बेलाल को विनाशकता की मूर्ति माना; नारणभाई को असन्तोष व अशान्ति का विधायक माना, अपने को 'मां' का लाड़ला राष्ट्रविधायक मन्त्रद्रष्टा माना; और सचमुच में सब निर्जीव, हिचकिचाने वाले, कर्तव्य-भ्रष्ट लड़के थे । दूसरे देश के लड़कों में जितनी मानवता थी उतनी भी उनमें नहीं थी । कापड़िया ने सत्य कहा था । हां—वे बिलकुल सच्चे थे । इस देश की मानवता ही खोखली निर्वीर्य व निरर्थक थी ! और—और—उनमें, समस्त देश में, देश के अग्रगण्य महात्मा में व्यवस्थावृत्ति का छींटा भी नहीं था । इस देश में प्रत्येक व्यक्ति अपने चक्र में घूमता हुआ पतले पतरे का, पराई चाबी से चलने वाला, दूसरे से अलग रहने वाला खिलौना था; और ब्रिटिश साम्राज्य जीवित, तपती हुई, आगे बढ़ती हुई, एक ही धुन में तल्लीन, रेलगाड़ी के रूप में दुर्धर्ष परिणामकारकता से आगे-ही-आगे बढ़कर समस्त संसार को अपना कर रहा था ।

जैसी उसके मित्रों की दशा थी वैसी ही दशा नेताओं की भी उसे मालूम पड़ी।

फीरोज़शाह व तिलक, गोखले व अरविंद बाबू सोचते थे कि वे देश का उद्धार करते थे, प्रजा के लिए स्वातंत्र्य प्राप्त करने का प्रयत्न करते थे; पर सब थोड़े-बहुत सपने ही देखते थे। दस हज़ार व्यक्ति जिस कांग्रेस में आते थे, वे केवल मज़ा करने, व्याख्यान सुनने, स्वतः देश का उद्धार करने में सम्मिलित होते हैं, ऐसा सन्तोष प्राप्त करने के लिए आते थे। उनमें सतत उत्साह नहीं था, भगीरथ निश्चय, व्यवस्था-शक्ति, समग्र आत्मा नहीं थे। जो समस्त इंगलैण्ड कर सकता था, जिस व्यवस्था-शक्ति से एक व्यक्ति के समान काम किया जा सकता था, वह एक सौ व्यक्ति नहीं कर सकते थे।

उसके पहले के सपने सच्चे थे। वे सब पत्थर की छाया में रहने वाले कीटाणु थे। वे क्या कर सकते थे? उसकी आँखों में अश्रुधारा बहने लगी; अपनी, अपने बंधुओं की अधमता, निर्जीवता व पराधीनता का ख्याल उसके हृदय को चीर डालता था।

क्या वह अभी तक झूठे, मीठे सपने ही देखा करता था? हवाई क़िले ही बाँधा करता था? हवाई क़िले। उन्हें बाँधने का भी उसमें पानी नहीं था। वीर लोग सपनों से जागने की अपेक्षा सपने देख मरने में ही मानवता मानते थे; उनमें वह भी न था। सपनों से जागकर व्यवहार-कुशल बन क्षुद्रता को ही बड़प्पन मानते थे।

और वे अपने को आध्यात्मिक, वेदांती व कर्मयोगी मानते थे। कैसा तिरस्कारपूर्ण व्यक्तित्व—वञ्चना! निर्जीवता, निर्बलता, दुःख व आडम्बर को ढाँकने के नाम खोजने की शक्ति। ये सब मित्र अपने को कर्मयोगी मानते थे। केरशास्त्र, अंबेलाल, नारणभाई का कैसा कर्मयोग था। और वह स्वतः अधम-में-अधम, अन्ध-में-अन्ध, केवल विचार-तरंगों को, इन दृष्टि-सपनों को, प्रेरणा को, बालिश उत्साह को कर्मयोग माननेवाला क्षुद्र-में-क्षुद्र जंतु था। वह फिर से रोने

लगा। वह अब सपने भी नहीं देखता था। इतनी भी योग्यता उसने गँवा दी; वह दैवी कृपा भी उस पर अब नहीं होती थी। किसलिए ? 'माँ' अब दर्शन न देना........'माँ !', 'माँ !' वह किसे 'माँ' कहता था ? यह विशाल प्रदेश जहाँ उसके समान निर्जीव जन्तु तिलमिलाते थे उसे........?

इस अकल्प्य शंका के उत्पन्न होने से उसे बहुत दुःख हुआ। उसने माथा पीटा। उसका पुण्य खतम हो चुका। रो-रोकर उसकी आँखें लाल होने लगीं, और थकावट व जागरण के जोर से उसे नींद आने लगी।

एकदम वह जागा। 'धनी बहन की आवाज़ ! यहां कहां से ?' उसने घबराकर चारों ओर देखा। पास के औरतों के डिब्बे में से किसी की आवाज़ आती थी, इससे उसे भ्रम हुआ।

आखिरी बार आते समय कितनी हिम्मत से धनी बहन ने उसमें श्रद्धा बताई थी ? क्या उस श्रद्धा के योग्य वह था ? उसके मस्तिष्क पर जरा बेहोशी का वातावरण फैला। अर्धनिद्रा में उसने धनी का हँसता हुआ मुख देखा........वह निद्रावश हुआ।

पन्द्रह

३१ जनवरी के समारंभ का विवरण

: १ :

मियांगांव पर नारणभाई को 'ट्रेन' से उतरते सुदर्शन ने देखा। मध्यकालीन राजपूत के समान उस महारथी ने समझौता करने का मरण-पर्यन्त स्थगित रखा।

ग्यारह बजे सुदर्शन बड़ौदा उतरा। ब्रिटिश-साम्राज्य पर विजय प्रारंभ करने के लिए स्थापित किये जाने वाले मण्डल का मंत्री निस्तेज आँखों, बिखरे हुए बाल व खिन्न हृदय से हाथ में ट्रंक व कंधे पर ओढ़ने का कम्बल रख 'बोर्डिङ्ग' में गया।

सनत्कुमार जोशी के कमरे में सब मिलने वाले थे। 'स्क्वेयर ब्लॉक' के उन्नीस नम्बर के कमरे में जोशी व धीरु शास्त्री उसकी बाट ही देखते थे।

जोशी ने सबेरे तीन सौ दण्ड निकाले थे, इससे भोजन के पश्चात् जैसे कोई पान चबाता है, वैसे वह मुलर की कुछ कसरत करता था। धीरु पलङ्ग पर पड़ा था।

'ओहो, सदुभाई! आओ, आओ; तुम्हारी ही प्रतीक्षा करते थे।'

'हां, भाई आ गया।' 'ट्रंक' रूम में रखते हुए सुदर्शन ने निश्वास लिया।

'दूसरे कहां हैं?' जोशी ने पूछा।

'खतम हो गए।'

'याने?' धीरु उठ बैठा।

सुदर्शन ने कपड़े निकालते हुए बम्बई के मित्रों का हाल सुनाया।

'पर यहां का क्या ?'

'क्या, क्या ?' धीरु ने कहा, 'जोशी कसरत करता है। मैं यह पड़ा हूं।'

'पारेख ?'

'पारेख का जो छापाखाना है, उस पर पुलिस का 'वारंट' आया है।'

'फिर ?'

'पारेख कहीं छिप गया है।'

'—और पण्ड्या काका ?'

'क्या पण्ड्या काका का पता नहीं है ?'

'नहीं।'

'उसे गायकवाड़ ने अमेरिका जाने की 'स्कॉलरशिप' दी है। वह तो जाने की तैयारी करता है। अभी आनेवाला है।'

'ठीक, वह अमेरिका में कुछ करेगा,' सुदर्शन ने कहा।

'क्या सिर ! उसे 'स्कॉलरशिप' मिली है, तब से उसने स्पष्ट कह दिया है कि वह 'मण्डल' में सम्मिलित न होगा।'

'ठीक है। वह भी सब-जैसा ही निकला।' तिरस्कार से सुदर्शन ने कहा, 'गिरजा शुक्ल ? वह तो 'पाखेड़ी' रियासत के ठाकुर के वहां था। शायद कारिन्दा था।'

'फिर उसकी कोई खबर नहीं है।'

'मैंने भी दो-तीन पत्र लिखे पर उत्तर नहीं मिला।' सुदर्शन ने कहा, 'अब—'

'अब क्या ? चलो मेरे साथ,' जोशी ने कहा, 'मैंने हनुमान की आराधना भी शरू की है।'

'क्या लाल स्याही से एक लाख व आठ बार श्रीराम लिखने की ?' कटुतापूर्वक सुदर्शन ने पूछा।

'धार्मिक बातों में मज़ाक नहीं करना चाहिए।' जोशी ने एक गहरा

श्वास लेकर मानो नल से पानी छूटता हो, ऐसे गम्भीर-से श्वास बाहर निकालते हुए कहा।

'मुझे तो पहले से ही विश्वास था।' धीरु ने कहा।

'क्या ?'

'धार्मिक बल के बिना कुछ नहीं हो सकता।'

'यह तो तुम्हारा पुराना सिद्धान्त है।'

'पुराना, पर सदा ही नया है। हम लोग धार्मिक प्रजा हैं, हमारे संस्कार धार्मिक हैं। जो ब्राह्मण कर गए, जो महर्षि दयानन्द कह गए, वही करने योग्य है।' सुदर्शनने कंधे उचकाकर तिरस्कार प्रदर्शित किया।

'एक समाज बनाओ, धर्म को राष्ट्र बनाओ।' मानो आर्यसमाज के मञ्च से वह बोलता हो, ऐसी आवाज़ व उच्चारण से धीरु ने कहा।

'पर हमारा अब क्या होगा ?' उकताकर सुदर्शन ने कहा।

'चलो मेरे साथ गुरुकुल में।' धीरु ने कहा।

'मेरे गले यह बात उतरती नहीं।' निराशा से सिर हिलाकर सुदर्शन ने कहा।

'अभी—' धीरु ने कहा।

'हाँ। धर्म आया कि हम पड़े या तो अंधश्रद्धा के कीचड़ में या धार्मिक झगड़ों में। धर्म ने तो हमें विष दिया है।'

'धर्म के बिना कैसे चल सकता है ?' जोशी ने कहा।

'राष्ट्रधर्म के बिना दूसरा धर्म तो भारत में पाप है।' सुदर्शन ने कहा।

'पर तब तो हमारा 'मंडल' होगा ही नहीं,' धीरु ने कहा।

'क्या करें ? किसका हो ? अपना लड़कपन जल्दी समझें, उतना ही अच्छा। कार्यनिष्ठ 'मंडल' निकालने की हम लोगों में लगन नहीं है, और उसका कार्य पूरा करने की हम लोगों में शक्ति नहीं है।'

'पर यदि हुआ होता तो अच्छा रहता।' जोशी ने कहा।

'हाँ—' धीरु ने निश्वास लेते हुए कहा।

'हम लोग एक-दूसरे के साथ कुछ तो सम्बन्ध रख सकते,' जोशी ने कहा। 'कुछ नहीं,' उसने पुनः मन समझाया—'माँ के हम पुत्र हैं। क्या उसका उद्धार किये बिना रहेंगे?'

सुदर्शन तिरस्कारपूर्वक हंसा।

'हां, उद्धार करेंगे, अवश्य।' उसने दांत पीसकर कटुता से कहा, 'जैसे बिच्छू का नाश उसके बच्चे करते हैं, उस प्रकार। उसको अन्त में खा जाते हैं।'

वह उठा व चला गया।

शाम को नये बनवाये हुए अंग्रेज़ी कपड़े पहन पण्ड्या काका आये। उन्हें 'टाई' बांधना न आने से देशी ढंग से गांठ बांधी थी; और बूट व मोजों की आदत न होने से, जिस प्रकार देहाती स्त्री बम्बई आकर पति की ज़बरदस्ती से ऊंची एड़ी के जूते पहन कर चले, उस प्रकार वे चलते थे।

'सदुभाई! धीरु! सनत्! कैसे हो? दूसरे कहां हैं?'

धीरु ने 'मण्डल' के सदस्यों के कारनामे फिर से कह सुनाये।

'अच्छा हुआ, अभी हम लोगों को देशोद्धार करने में देरी है।'

'यह कब सूझा?'

'पहले स्व-उद्धार फिर पर-उद्धार। सदुभाई, अब तुम भी ये बातें छोड़ दो।'

'—और फिर?'

'माननीय की लड़की से शादी कर बैरिस्टर होकर आओ। फिर पैसा इकट्ठा करो। फिर देश-कार्य हम सब करेंगे। क्या विचार करते हो?'

'तुमने कहा सो,' निरुत्साह से सुदर्शन ने कहा।

: २ :

गिरिजाशंकर शुक्ल 'पारेवड़ी' ज़मीदारी के ठाकुर के ४०) वेतन पर स्थानापन्न कारिन्दे थे।

'पारेवड़ी' की ज़मीदारी बड़ौदा के अधीन थी। उसके ठाकुर साहब अज्जुबाबा पचास वर्ष के, पुराने ज़माने के, अफीमची, मौजी व भले आदमी थे। वर्ष-भर में पांच हज़ार की आमदनी खर्च कर साथ में बहुत-सा कर्ज हमेशा सिर पर लादते थे। "ब्राह्मण का पुत्र है," यह उनका पहला हेतु था; "घर का है, किसी दिन नाम करेगा," यह उनका दूसरा हेतु था। गिरिजा शुक्ल १९०७ में बी० ए० में अनुत्तीर्ण हुआ। अब पूरा वर्ष किस प्रकार बिताना चाहिए, इस प्रश्न का निर्णय 'अज्जुबाबा' ने किया। उन्होंने शुक्ल को स्थानापन्न कारिन्दा नियुक्त किया।

दिन-भर पलटन के शुष्क व राष्ट्रीय समाचार-पत्र पढ़ने में, सयाजी-राव गायकवाड़ के सद्गुणों में मुग्ध रहने में, और पलटनी विचार-तरंगों में व्यग्र रहने में उसने समय बिताया था। इटली का विप्लव उसके हृदय में बसता था। गेरीबाल्डी के समान पलटन लाकर भारत को स्वतंत्र करना, गायकवाड़ सरकार को विक्टर एमेन्युअल के समान राज-गद्दी पर बैठाना, और स्वतः समस्त भारत के सर्वाधिकारी बनना आदि के बारे में उसने इतने विचार किये थे व इतनी योजना बनाई थी कि उसमें अब किसी प्रकार की भी त्रुटि रही नहीं थी।

इस विश्वास के साथ वह अज्जुबाबा का कारिन्दा बना। अज्जु-बाबा के यहां इक्कीस आदमियों की छोटी-सी सेना थी। उसमें सुधार करने का काम उसने अपने हाथ में लिया, और 'पारेवड़ी' की पल्टन के पट्टे चमकने लगे।

कारिन्दे की हैसियत से सबेरे अज्जुबाबा के साथ बैठ बातें करना, दोपहर में साथ बैठ भोजन करना, शाम को उनके सगे सम्बन्धियों के

साथ "कुसम्बापान[१]" के समय उपस्थित रहना, रात को साथ में भोजन करना, और फिर जब भाट अज्जुबाबा का गुणगान करे तब उसमें आनंद लेना आदि काम उनके कारबार का पहला क्रम था।

अज्जुबाबा 'शकल' पर—बाबा को ह्रस्व 'उ' हमेशा अनावश्यक मालूम होता था—फिदा थे। उसके साफ कपड़ों पर वे मुग्ध हो जाते थे—"मानो छैल-छबीला हो"। उसका शानदार व्यवहार उन्हें अच्छा लगता था; वे उसके अंग्रेजी भाषा के अधिकार पर मोहित हो जाते थे।

इस उभरते हुए प्रेम के परिणामस्वरूप शुक्ल को वे "हुक्के के दो दम लगाओ" व "कसुंबे की दो बूंदें लो", प्रतिदिन कहे बिना नहीं रहते थे। और इस सब महत्ता व प्रीति के पात्र बने हुए शुक्लजी अपना कारबार संभालते और अपनी छाती प्रतिदिन सवा गज ऊंची होती देखते थे।

पर शुक्लजी राष्ट्रधर्म क्षण-भर के लिए भी भूलते नहीं थे। 'मां' को स्वतन्त्र बनाना, गायकवाड़ को राजगद्दी पर बैठाना, ये दो बातें जागते या सोते व 'कसुंबा' के नशे में झोंके खाते या भाट की कविता में मस्त होते समय वे भूलते नहीं थे। इतना ही नहीं, पर दिन-पर-दिन यह बात उनकी दृष्टि के सामने तैरने लगी। सबेरे उठ, स्नान-सन्ध्या कर उसकी पल्टन बेकार रहे हुए सात-आठ की सेना का निरीक्षण करने जाते समय प्रारम्भ में तो उन्हें असंतोष होता था; पर धीरे-धीरे उन्हें ऐसा भी हुआ कि वे केवल उसके सरदार थे। प्रत्येक के पास छोटी-छोटी सेना थी। कितने ही सरदार अलग-अलग स्थान में काम में रुके थे। ऐसे-ऐसे विचार कर वे घर जाकर सेना-सम्बन्धी पुस्तकें लेकर खाट पर बैठते थे; नहीं तो जल्दी-जल्दी बरामदे में घूमते थे, और टुकड़ियों को किस प्रकार बांटना, किस प्रकार अलग-अलग स्थान में केन्द्रित करना आदि के बारे में विचार करते थे।

---

१ एक नशीली पत्ती।

इतने में सुदर्शन का पत्र आया। ३१ जनवरी को बड़ौदा में एकत्रित होना आवश्यकीय था; पर उन्होंने तो कोई तैयारी नहीं की थी। वे तुरन्त जाकर पाठशाला के शिक्षक से भारतवर्ष का बड़ा नक्शा ले आये, और रात को अज्जुबाबा की हाज़िरी से वापस आकर नक्शा जमीन पर फैलाकर भारतवर्ष के स्वातन्त्र्य-युद्ध का विचार करने बैठे।

गेरीबाल्डी के पराक्रम तो मस्तिष्क में घर कर बैठे थे, भाट की कविता से उनकी नसों में शौर्य फैल गया था, और उसमें आज 'कुसुम्बा-पान' के पश्चात् उन्हें मस्तिष्क अच्छा व व्यवस्था-वृत्ति सतेज मालूम पड़ते थे। घिरी हुई भौं के नीचे उनकी आंखों में महा समर्थ योद्धा की निश्चल चमक थी।

'क्या करते हो?', उनकी स्त्री ने पूछा।

'काम में हूँ,' थोड़े में उन्होंने जवाब दिया, 'तुम सो जाओ।' उनकी धर्मपत्नी ने आज्ञा का पालन किया। इससे वे उनकी लड़की के घिसे हुए छोटे-छोटे सुंदर पत्थर के टुकड़े एक आले में पड़े हुए ले आये, और व्यूह रचने लगे।

पारेवड़ी की सेना अहमदाबाद पर जायगी; बड़ौदा की टुकड़ी धीरु बम्बई ले जायगा; केरशास्प बम्बई में टुकड़ियां केन्द्रित करेगा; नारण पूना रोक रखेगा; सनत् जोशी पंचमहाल में आने वाली सेना को रोकेंगे; मोहन पारेख अपनी टुकड़ी के साथ मध्यप्रान्त की रक्षा करेगा; सदु बम्बई में रहकर एक ओर केरशास्प को सहायता देगा व राज्याभिषेक की तैयारी करेगा। वे स्वतः पारेवड़ी से मेसाणा, मेसाणा से अहमदाबाद, अहमदाबाद से बड़ौदा, बड़ौदा से बम्बई बढ़ती हुई विजयोन्मत्त सेना को साथ में लाते हुए, धूमकेतु के समान भयङ्कर, गायकवाड़ की बांह पकड़ बम्बई में..............। इस प्रकार मूंछों में बोलते हुए, पत्थर के टुकड़ों को हटाते हुए, व्यूह रचते हुए भारत की स्वातन्त्र्य-सेना के नायक ने आधी रात बिताई। सबेरे वे नक्शे पर पड़े-पड़े सोते थे।

वे उठे; आंखें मलने लगे; उन्होंने चहुंओर देखा; कहां पड़ते थे

उसका उन्होंने विचार किया। पहले कुछ याद आया, फिर सब याद आया। सच बात है। कैसी प्रेरणा ! सचमुच उसके व्यूहों में अपूर्वता ही थी।

सबेरे मिजाज़ के वेग में उन्होंने......की सेना का निरीक्षण किया। अज्जुबाबा के पास गये तो भी वही मिजाज़ रहा। उन्होंने अज्जुबाबा को सेना बढ़ाने को सूचित किया और दूसरे तीन आदमी ज्यादा रखने की उन्हें इजाज़त मिली।

शुक्लजी को सन्तोष हुआ। उन्होंने दिन-भर व्यूहों का विचार किया। नये केन्द्र, नई रचना, नये आक्रमण उन्हें सूझते ही रहे। शाम को उनका मन प्रफुल्लित था। 'कसुंबा' भी आज उन्हें रोज से अधिक अच्छा लगा। भाट के कवित्तों में समराङ्गण के गीतों की ध्वनि सुनाई दी।

रात को जब वे घर गये तब उन्हें स्पष्ट जान पड़ा कि उनके रचे हुए व्यूह दुर्जय थे। उन्होंने अपनी पत्नी को पिछली रात के समान सोने की आज्ञा दी। धीरे से नक्शा फैलाया, दीया रखा, और पत्थर के टुकड़े लिये। "केरशास्प के अधीन बड़ा केन्द्र है। उसे दो टुकड़ियां दी जानी चाहिएं। पञ्जाब में सेना अधिक है। शिवलाल की टुकड़ी आबू के पास रहनी चाहिए।" उन्होंने एक पत्थर का टुकड़ा वहां रखा—"और नारण की सहायता के लिए अम्बेलाल को भेजना चाहिए।" एक पत्थर का टुकड़ा ज़ोर देकर खंडाला के पास रखा।

अन्त में सेना की रचना पूरी हो जाने से शुक्ल नक्शे पर से उठे, और उन्होंने दूसरे आवश्यकीय विषय पर ध्यान दौड़ाया। गायकवाड़ राजगद्दी पर बैठेंगे, पर विजेता की हैसियत से मुकुट उन्हें ही पहनाना होगा। एक टूटी हुई कुरसी को सिंहासन मान वे, कमर में हाथ देकर खड़े रहे।

'सरकार ! ऐसे खड़े रहिए, उन्होंने सिंहासन-स्रष्टा के रुवाब से कहा—'ऐसा सिर रखिए। लोगों को अपना मुख देखने दीजिए।' उन्होंने हाथ में समस्त भारत का मुकुट लिया और 'ज़हरी सांप' में नरसिंह डाकू जिस

सौन्दर्य से खोपड़ी रखता था, उनका अनुसरण करते हुए सामने दीन मुख से खड़े हुए नरेश से कहा—'गोब्राह्मण-प्रतिपालक! आज से धर्म-राज के परम पुनीत सिंहासन पर चढ़ते हैं। यह मुकुट चन्द्रगुप्त मौर्य के सिर पर जिस प्रकार चाणक्य ब्राह्मण ने रखा था, उस प्रकार मैं रखता हूं। भारत के स्वातन्त्र्य का संरक्षण ही आज से आपका कर्तव्य है। उसकी महत्ता की वृद्धि ही आज से आपका स्वप्न है। गोब्राह्मण-प्रतिपालक की जय!'

उन्होंने मुकुट गायकवाड़ के सिर पर रखा और चहुंओर देखा। वहां एकत्रित हुई जनता ने विजयघोष किया।

शुक्ल उस ओर फिरा—'मेरा कर्तव्य पूरा हुआ। मैं अब—' पर नहीं! लोग याचना करते थे, नरेश प्रार्थना करते थे—"आप! आप जायं तो हमारा क्या होगा?" अच्छा, सन्यास धारण करते समय तक कर्तव्य को पूरा करूंगा।'

दूसरे दिन सवेरे शुक्लजी कुरसी के पैर के पास से उठे। पहले तो वे चौंके;—सब फिर थोड़ा-बहुत—याद आया; नक्शे की ओर गर्व से उन्होंने दृष्टिपात किया।

अपने काम पर जाने के पहले धीरू शास्त्री का पत्र उन्हें मिला। उसमें ३१ तारीख को अवश्य बड़ौदा आने को लिखा था। 'मेरे सेनानायक कैसे होशियार हैं,' वे बड़बड़ाये और कुछ हुआ हो, इस प्रकार क्षण-भर के लिए आंखें स्थिर कर देखते रहे, और एकदम लड़की के पलने के पास जाकर खड़े हुए। 'कारिन्दे! सब केन्द्रों पर गुप्त समाचार भिजवाओ कि ३० तारीख को सवेरे सबको बम्बई में एकत्रित होना है। राज्याभिषेक है।'

उन्होंने कह तो दिया और एकदम जाग उठे हों, इस प्रकार आंखें मलने बैठे। उन्होंने क्षण-भर के लिए अपने कमरे की ओर, उस पलने की ओर देखा। फिर जरा निरर्थक वे हंसे व दरबार के पास गये।

ऋजुबाबा को बड़ौदा के दीवान के कार्यालय से अंग्रेजी-पत्र

आया था, वह उन्होंने शुक्ल को पढ़ने के लिए दिया। उसमें जो कुछ था, उसका उन्होंने अर्थ किया।

'ठीक ! एक अच्छा-सा पत्र लिख डालो।'

'बाबा ! ३१ तारीख को मुझे बड़ौदा जाना ही पड़ेगा।'

'क्यों ?' बड़ौदा जाना अज्जुबाबा के मन में बड़ी बात थी।

'आवश्यक कार्य है। साथ ही दीवान साहब को मिलता आऊंगा।'

'अरे वाह रे, खूब ठीक ! दीवान साहब को मेरा 'राम-राम' कहना।'

'अवश्य, बाबा !'

वह पत्र शुक्ल ने जेब में रखा; उस पत्र के प्रताप से शुक्लजी को नया शूर चढ़ा। शाम को हुक्के के दो दम लेने के पश्चात् उस पत्र ने जेब में बैठे-बैठे अपना रूप प्रकट किया। वह पत्र गायकवाड़ का था; उसमें बड़े-बड़े राज्य-रहस्य थे; और ३१ तारीख का संकेत भी था। वह पत्र उन्हीं के लिए भिजवाया गया था। उसमें कितने ही बड़े प्रश्न थे।

'कसुंबा' लेने के पश्चात् उसका रहस्य उनकी अधिक समझ में आया। पूरा बड़ौदा युद्ध में सम्मिलित होने के लिए तैयार था, केवल उसकी आज्ञा की प्रतीक्षा करता था।

रात को जब शुक्लजी घर गये तब उन्होंने व्यूह-रचना की, गुप्त कारिन्दे के द्वारा सब स्थानों पर आज्ञाएं भिजवाईं, सेनापतियों को सूचनाएं दीं, नेपोलियन, जिस प्रकार चाहे जहां सो जाता था, उस प्रकार वे ज़मीन पर निद्रादेवी के अधीन हुए।

: ३ :

शुक्लजी ने २९ तारीख को सब 'पार्ट' अदा किये—अज्जुबाबा के साथ हुक्का गुड़गुड़ाया, 'कसुंबा' पिया, व रात के व्यूह अन्तिम बार रचे। रात-भर उन्होंने न मालूम कितने ही कारिन्दों को आज्ञा-पत्र लिखवाकर थकाया और कितने सेनापतियों को लिखित, मौखिक, 'टेलि-

आफ' से वे 'हेलिओस्कोप' से हुक्म भिजवाये।

३० तारीख को सबेरे रात-भर का उजागरा रहते हुए भी मन में नई युक्तियां व नये व्यूह रचते हुए उन्होंने भोजन किया; अज्जुबाबा को प्रणाम कर आये; और एक पुटलिया व सौ रुपये लेकर छकड़े में बैठे।

छकड़े के बैल चले जा रहे थे; तो भी स्वतः मानो घोड़े पर सवार हों ऐसे ही मालूम पड़ते थे। हजारों घुड़सवार साथ में चलते थे; और उन्हींके पैरों की आवाज़ बैलों के परों की आवाज़ के रूप में सुनाई देती थी। गाड़ी की गड़गड़ाहट ही तोपखाने की आवाज़ थी; और युद्ध के बाजों की आवाज़ बैलों के घुंघरुओं में सुनाई देती थी।

उन्होंने महेसाणा से अहमदाबाद की टिकट ली, और शाम को अहमदाबाद पहुँचे!

अहमदाबाद देख उनके गुस्से का पार नहीं रहा। वहां अंग्रेज राज्य करते थे। पुलिसवाला उनका आदमी था, उसे पता नहीं था कि कल भारत स्वतंत्र होनेवाला था। जरा चुपके से वे हंसे।

वे उस पुलिसवाले के पीछे चले। एकदम उनके सिर में कुछ खटका लगा। उनकी आंखों में क्षण-भर को अंधेरा छा गया। उन्होंने पुटलिया छोड़ आंखों पर हाथ रखे।

वे जब देखने लगे तब उनका जीव घबरा गया। वह आदमी पुलिस का सिपाही नहीं था; शत्रुओं के भयङ्कर सेनापति के रूप में उन्होंने उसे पहचाना। वह सब षड्यन्त्रों का रचने वाला था; सब अत्याचारों की जड़ था; उसके पास सेना-सम्बन्धी गुप्त योजना थी। इस समय उसके पीछे जाकर उसके कागज़ात लिये बिना गति नहीं थी। कड़ी दृष्टि कर शुक्लजी पुलिस के भेष में घूमते हुए उस षड्यन्त्रकारी के पीछे जल्दी से चले।

पुलिसवाला एक बेर बेचनेवाली से बातें करने के लिए रुका। बेर बेचनेवाली उसके परिचय की थी और नखरों के साथ टूटा-फूटा बोलती थी। पुलिसवाले ने उसे दो-चार सुनाईं व हंसकर उसकी टोकरी में

उसने हाथ डाला। वह बेरवाली हंसकर चिल्लाई और उसने टोकनी पीछे खींची। थोड़ी देर तक हंसते-हंसते टोकनी खींच-तानकर पुलिस-वाले ने मुट्ठी-भर बेर लिये। शुक्ल ने पुलिसवाले का हाथ पकड़ा।

उन्हें दुःखार्त भारतीयों की दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति का तीव्र भान था। बहुत बार उन्होंने पराधीनता में पीसे गए भारतीयों की दशा का विचार कर आंसू गिराये थे। सत्ता की कठोरता उन्हें खटका करती थी; अत्याचार की जंजीरें उनके कानों में खनखनाहट करती थीं; अन्याय के आघातों को उनका अन्तर सहता था, और उस समय सत्ता, अत्याचार व अन्याय की मूर्ति के समान वह कालमुख पुलिसवाला भारतमाता के अवतार के समान उस गरीब निराधार बेरवाली के बेर ले लेता था, और वह भी उस समय जब कि अगणित सेनाओं का नायक विजय-प्रयाण करता हुआ नरवीर, भारत के स्वातन्त्र्य का विधायक पास में खड़ा था। यह कैसे हो सकता है ?

पुलिसवाला एक क्षण के लिए घबराया। चोर के पकड़ने वाले को किसने पकड़ा ?—जमादार, फौजदार, इन्सपेक्टर; सुपरिन्टेन्डेन्ट ! वह फिरा। उसने शराब पिये हुए देहाती के समान एक लड़के को देखा; उसके हृदय में साहस आया।

शुक्ल ने देखा कि उस दुष्ट अत्याचारी ने उन्हें पहचाना नहीं। गुप्त भेष में फिरनेवाले उनके समान महारथी को वह कहां से पहचाने ?

'सावधान ! दुष्ट !' उन्होंने बैठी हुई आवाज़ में कहा, 'तुम न्याय के प्रतिनिधि बन इस गरीब औरत पर अत्याचार करते हो ?'

पुलिसवाले ने एक झटके से हाथ छुड़ाया व एक जोरदार घूंसा शुक्ल की पीठ पर लगाया। 'कौन है हैवान ? मेरा हाथ पकड़ता है ? अपना रास्ता ले। क्या मरना चाहता है ?'

शुक्लजी हंसे। अभी उस मूर्ख ने उन्हें पहचाना नहीं।

'कौन है ? पता लगेगा। रख दो इस बाई के बेर।'

'चुप रह, नहीं तो अभी बंद कर दूंगा।'

'गॉल' में से विजय प्राप्त कर लौटा हुआ जुलियस सीज़र रोम का कोष हस्तगत करने गया। वहां के रक्षकों ने दरवाज़े खोलना अस्वीकार किया। हज़ारों विजय-प्रमत्त वीर पीछे खड़े थे, यह वह भूल गया। शान्ति से दैवी जुलियस ने कहा—'युवक! कहने की अपेक्षा करना मेरे लिए सरल है।' सीज़र के इस अमर सत्ताशील स्वाब का स्वांग शुक्र ने क्षण-भर के लिए किया। 'नराधम!' उसने अपने पीछे कितनी ही सेना है, इस विश्वास से कहा, 'बेर रख, नहीं तो ज़बरदस्ती रखवाऊंगा।'

'ज़बरदस्ती रखवायेगा, बड़ा लाटसाहब कहीं का!'

पुलिसवाले ने 'पुलिसी' भाषा में सम्बोधन करते हुए 'तू चल 'गेट' पर, तुझे कैद करता हूं,' कह हाथ पकड़कर शुक्रजी को घसीटा।

उन्होंने छूटने के लिए व्यर्थ प्रयत्न किया, पर पुलिसवाला उनसे तिगुना सशक्त था। उन्होंने प्रयत्न छोड़ दिया।

'अच्छा, ले चलो! देखता हूं।'

'देख अपना सिर! तू.......'

'कल सवेरे पता चलेगा।'

'चल—चल—।'

'गेट' आई। पुलिसवाले ने शुक्रजी को ज़बरदस्ती से बेर लेने के अपराध में जमादार के सामने खड़ा किया। बेर पुलिसवाले के हाथ में थे। बेरवाली का नाम व पता उसके मुंह पर था।

जमादार साहब ने कागज़ निकाला, और वे टेबल पर बैठे।

'नाम?'

'शुक्र।'

'पूरा नाम व बाप का नाम क्या है?'

शुक्रजी हंसे। कल प्रातःकाल के पश्चात् समस्त सृष्टि केवल 'शुक्र'—'वही शुक्र', 'एकव अद्वितीय शुक्र' के नाम से पहचानी जायगी। क्या नेपोलियन का कोई उपनाम पूछता है? क्या चाणक्य के बाप का

नाम कोई पूछता है ? वह ज़ोर से हंसा। इस मूर्ख जमादार को कुछ अक्ल है ?

उस पुलिसवाले ने शुक्रजी की कमर में याददाश्त ताज़ी हो, ऐसा एक उपाय अजमाया।

'अरे रे !' शुक्रजी ने कहा व चुप रहे।

'नाम क्या है ?' जमादार चिल्लाया।

'कौनसा मुंह लेकर पूछते हो ?' तिरस्कारपूर्वक शुक्र ने कहा, 'कल सबेरे पता लगेगा।'

'क्या पता चलेगा ?'

'मेरा नाम व पता।'

'इसी वक्त कह न।'

'जानना है ?'

'हां।'

'तो मूर्ख !' किसी महाप्रसङ्ग पर किसीका कहा हुआ कुछ याद आने से विजेता के लिए स्वाभाविक गौरव से उन्होंने कहा, 'लिख लो शक्ति व हिम्मत हो तो। मेरा नाम शुक्र है। मेरा स्थान राष्ट्रस्रष्टा के मंदिर में है। मेरा पता अनंतकाल के इतिहास में है।'

'—पागल है। बंद कर दो।' जमादार ने उकताकर हुक्म दिया।

पुलिसवाले ने उसे पकड़कर कोठरी में बंद कर दिया।

'कल सबेरे पता चलेगा,' शुक्रजी ने अंधेरी कोठरी से वाणी उच्चारित की।

बाहर जमादार व पुलिसवाला सलाह करने बैठे। कल क्या पता चलेगा ? क्या कोई बड़ा आदमी तो न होगा ? कौन होगा ? पुलिस-वाला भी जरा घबराया।

'जमादार साहब ! जाने दीजिये,' पुलिसवाले ने कहा।

'यह भी ठीक है,' कह जमादार चला गया।

पुलिसवाले ने शुक्रजी को छोड़ दिया।

'कहां जाना है ?'

'बम्बई ।'

'क्या स्टेशन पहुंचा दूं ?'

'अब रास्ते पर आये ।' शुक्लजी ने कहा। उन्हें मालूम पड़ा कि इस समय देश की ऐसी गंभीर परिस्थिति में अधिक सिरपच्ची करने के बदले सेना लेकर बम्बई जाना ही अधिक अच्छा है।

पुलिसवाला उन्हें स्टेशन पर पहुँचा आया; और जब शुक्लजी ने बम्बई की 'फर्स्ट क्लास' की टिकट ली तब वह घबरा गया। कांपते हुए पैरों से वह 'गेट' पर वापस लौटा।

: ४ :

'फर्स्ट क्लास' के पूरे डिब्बे में शुक्लजी अकेले बैठे। गाड़ी रवाना हुई तब वे डिब्बे के बीच में खड़े थे। उनका दाहिना हाथ कमर पर था; बांया हाथ बाजू में लटकाई हुई तलवार की मूठ पर था। बांया पैर आगे कर कारिन्दों व सेनापतियों के बीच खड़े होकर वे कल के पूरे कार्यक्रम के बारे में हुक्म देते थे।

आज पहली ही बार शुक्ल 'थर्ड क्लास' के अतिरिक्त दूसरी क्लास में बैठे थे। चहुंओर होनेवाली खलबलाहट उनकी चतुरङ्ग नहीं, किन्तु सर्वाङ्ग सेना के कूंच की आवाज़ थी। ऊपर एक 'हैट' रखने की जाली की 'कट-कट' आवाज़ होती थी, उस मार्ग से केन्द्रों से उन्हें तार के संदेशे मिलते थे। जब भी किसी गांव के दीये दौड़ते हुए दिखाई देते थे तब वे उनके चंचल प्रकाश में अलग-अलग टुकड़ियों के सूर्य-किरणों द्वारा भेजे गए संदेशे पढ़ते थे।

अन्त में सब पूरा हुआ और शुक्लजी ने जरा आंखें बन्द कीं। गाड़ी रुकी। नड़ियाद आया और एक अंग्रेज डिब्बे में आया। गाड़ी रवाना हुई और अंग्रेज़ कपड़े निकालकर सोया।

गोरे को देख शुक्लजी की देश-भक्ति सतेज हुई। वह व्यक्ति देश के पैसों पर जीता व मौज करता था और इतने अच्छे कपड़े पहन घूमता था। उसका क्या अधिकार था? ये कपड़े उसके काहे के?

वेग से चलती हुई गाड़ी के 'फर्स्ट क्लास' में टिमटिमाते हुए दीये के प्रकाश में अँग्रेज़ के कपड़े खूंटी पर हिला करते थे; और शुक्ल की चमकती हुई आंखें उन पर स्थिर हुईं।

कड़ी न्यायवृत्ति उसके मन में प्रज्वलित हुई। ये कपड़े इस अंग्रेज़ ने खरीदे; उनके लिए पैसे उसने अपने वेतन में से दिये; उसका वेतन सरकारी कोष में से आया; कोष गरीब भारतीयों के पैसे से भरा गया। इससे ये कपड़े भारतीयों के थे....प्रत्येक भारतीय के थे।

शुक्लजी खूंटी पर से अंग्रेज़ की पतलून लेकर पहनने लगे।

अंग्रेज़ जागा। छलांग मार उसने दीया तेज़ किया। गोरा बोल न सका। अपना लिबास निश्चिन्तता से कोई काला मज़दूर-जैसा व्यक्ति पहने! एक क्षण-भर के लिए उसने स्वतः जागता था या सोता था, इसका भी निश्चय किया।

शुक्लजी शान्तिपूर्वक हंसते थे। अंग्रेज़ ने जाकर उसके हाथ में से पतलून छीन ली और उसे एक चपत जमा दी। 'यू सूअर!'

शुक्लजी ज़ोर से हंसे और अंग्रेज़ी में बोले—'किसके पैसे, किसके कपड़े? हमारा देश, हमारे पैसे व हमारे कपड़े...'

एक क्षण के लिए अंग्रेज़ क्रोध से देखता रहा; और फिर शुक्लजी की आंखों व हास्य की ओर उसकी दृष्टि गई।

गाड़ी बड़ौदा के स्टेशन पर पहुँची। अंग्रेज़ ने तुरन्त उतरकर स्टेशन मास्टर को बुलाया। स्टेशन मास्टर ने शुक्ल को पहचान लिया।

'शुक्ल! तुम कहां से? ये साहब क्या कहते हैं?'

'उसे इन कपड़ों का अधिकार नहीं है। हमारे देश के....देश का मालिक यह या मैं?'

'नीचे उतरो, नीचे। ठहरो। क्या गठरी नहीं है?'

'किसलिए उतरूं ?'

'कहां जाना है ?'

'बंम्बई ।'

'क्यों ?'

'कल बम्बई में गायकवाड़ सरकार का राज्याभिषेक है,' उन्होंने धीरे से स्टेशन मास्टर के कान में कहा ।

'चलो, उतरो शुक्कजी ! मैं तुम्हें दूसरे अच्छे डिब्बे में बिठाता हूँ ।'

'Alright !' कह गरम होते हुए शुक्कजी गाड़ी में से उतरे । स्टेशन मास्टर शुक्कजी से बातें करते रहे और गाड़ी चल दी ।

: ५ :

'स्क्वेयर ब्लॉक' के १६ नम्बर के कमरे में सुदर्शन, धीरु शास्त्री व सनत् जोशी सोते थे ।

लगभग तीन बजे धीरु शास्त्री पानी पीने उठा और बरामदे के कठड़े के पास जाकर बचा हुआ पानी बरामदे से नीचे डाला....।

उसकी दृष्टि में एक विचित्र प्रयोग दिखाई दिया ।

कालेज के 'कम्पाउण्ड' में किसी महोत्सव के निमित्त बिजली के दीयों के लिए खंभे गाड़े गए थे । एक लड़का पास के खम्भे को हिलाने का प्रयत्न कर रहा था; और उसकी शक्ति से दीया हिल रहा था ।

यह विचित्र प्रयोग देख धीरु क्षण-भर के लिए घबराया—'यह क्या है ?' उसने ध्यान से देखा और इस प्रयोग के करने वाले को पहचाना ।

'शुक्क, शुक्क ! यह क्या करता है ? बत्ती गिर पड़ेगी ।'

'क्या है ? क्या है ?' कहते हुए सुदर्शन व जोशी उठे ।

'वह शुक्क बत्ती का खम्भा गिरा रहा है !' धीरु ने कहा ।

'शुक्क ! शुक्क !' जोशी ज़ोर की आवाज़ में चिल्लाया ।

'बोलो नहीं । धीरु ! यहां आओ । जोशी ! अपनी टुकड़ी तैयार

करो। केरशास्प को 'हेलियोस्कोप' करता हूं', सत्ता के रवाब से शुक्ल-जी ने कहा, और वे खम्भा हिलाते ही रहे।

जोशी, धीरु व सुदर्शन दौड़कर नीचे आये और जोशी ने जाकर शुक्लजी का हाथ पकड़ा।

'क्या करते हो?'

'जोशी,' शुक्ल ने सत्ता से सिर ऊंचा करते हुए कहा।

'क्या करता हूं? मेरा संदेशा अपूर्ण है। क्या पता नहीं है, भारत स्वतन्त्र हुआ है?'

'बहुत अच्छा, ऊपर चलो।' धीरु ने समझाते हुए कहा।

'पर केरशास्प क्या करेगा? कल प्रातः बम्बई में गायकवाड़ को मुझे मुकुट पहनाना है। सुदर्शन! यहां कैसे? मेरे...'

शुक्ल के रूप, शब्द व बातें, रात के तीन बजे का समय, अधूरी नींद आदि सब बातों से जोशी की सहिष्णुता का अन्त हुआ। उसका सशक्त पंजा शुक्ल की गर्दन पर पड़ा; और उसके स्नायु के जोर से शुक्लजी तड़पने लगे।

'पागल! मूर्ख! क्या बकता है? चुप हो जा, नहीं तो दो-चार लगा दूंगा। रात के तीन बजे यह क्या करता है?'

'केरशास्प को 'हेलियोस्कोप' से संदेशा भिजवाता हूं।' विजेता की सत्ता व गौरव के उपयुक्त साहस को सुरक्षित रखते हुए शुक्ल ने कहा।

गुस्से में जोशी ने एक घूंसा जमाया। जोशी के घूंसे में नेपोलियन सीज़र आदि की आंखों में पानी लाने के गुण थे।

'अरे बाप रे!' शुक्ल चिल्लाये।

'आगे बढ़ो,' एक धक्का देकर जोशी ने कहा। शुक्ल ने सिर ऊंचा किया और वह जोर से हंसा। 'जोशी पागल...सदु अंधा....धीरु लंगड़ा है।' वह चिल्लाया।

'तुम ऊपर चलो', धीरु ने कहा।

जोशी पागल, सद्दु अंधा, धीरु लंगड़ा जैसे-तैसे उसे ऊपर लाये और जोशी के बल व धीरु के समझाने से शुक्ल सो गया; धीरे-धीरे उसके मित्र भी सो गए।

दो घंटे बाद सुदर्शन की आंख खुली और शुक्ल की खाट पर पड़ी। वहां शुक्ल नहीं था।

'जोशी ! शास्त्री ! वह पगला भाग गया।' जोशी व शास्त्री घबराकर उठे।

'शुक्ल ! शुक्ल ! गिरजा !' सब चिल्लाये, पर कोई जवाब न मिला। चारों ओर बरामदे में उन्होंने देखा पर उसका पता नहीं था।

'बिलकुल पागल हो गया', धीरु ने कहा।

'अरे राम !' सुदर्शन ने कहा। उसके हृदय में रोने की भी शक्ति नहीं थी।

'चलो, लकड़ी व लालटेन लेकर उसे खोजने चलें।' जोशी ने सूचित किया।

तीनों ने लकड़ी ली, हाथ में लालटेन ली, और कालेज के विशाल 'कम्पाउण्ड' का कोना-कोना छान डाला, पर शुक्ल का कोई पता नहीं चला।

दरवाज़े के पास पहरा देते हुए पुलिसवाले से पूछने पर शुक्ल के समाचार मिले।

'एक लड़का लगभग एक घंटा पहले बत्ती हिलाता था, उसे मैंने निकाल दिया, बहुत करके कमेटीबाग में गया है।'

प्रातःकाल होने लगा था। तीनों मित्र कमाटीबाग में शुक्ल को खोजने के लिए गये। पूरा हाथी हो तो उस बाग में न मिल सके तो एक आदमी कहां से मिले ! पर दीये से पता लगाने का निश्चय कर वे आगे बढ़े।

'म्यूज़ियम' के सामने की एक बत्ती हिलती थी। वे उसकी ओर दौड़े।

एक उत्साहपूर्ण, सत्तापूर्ण आवाज़ आती थी, 'केरशास्प ! भारत स्वतंत्र हुआ। मैं बड़ी सेना लेकर बम्बई आता हूँ। कल मुझे गायकवाड़ को...'

शुक्ल बत्ती हिलाकर 'हेलियोस्कोप' के संदेशे भिजवाता था। जोशी ने कूदकर उसकी गर्दन पकड़ी।

शुक्ल ने भागने का प्रयत्न किया।

'मूर्ख ! क्या करता है ? 'मां' के स्वातंत्र्य का क्या होगा ?'

जोशी की देश-भक्ति जनवरी के जाड़े में जम गई थी। 'चल बदमाश ! भाग आया ?'

शुक्ल ने चारों ओर देखा और वह बड़बड़ाने लगा—'जोशी पागल, सदु अंधा, धीरु लंगड़ा—'

'जोशी !' धीरु ने कहा, 'तुम इसे ले जाओ। मैं इसके भाई को बुला लाऊं। इसका दिमाग बिलकुल बिगड़ा हुआ मालूम पड़ता है।'

'जोशी पागल, सदु अंधा, धीरु लंगड़ा,' शुक्ल ने गीत गाया।

: ६ :

सात बजे शुक्ल का भाई उसे ज्यों-त्यों गाड़ी में डालकर ले गया। पागलखाने के सिवाय उसके लिए और कोई चारा न था।

सब हंसते थे। सुदर्शन ने जब से शुक्ल को देखा तब से वह रोने-सा हो गया था। शुक्ल के पागलपन की हास्यजनक असम्बद्धता में देश-भक्ति की करुण भव्यता उसे सुनाई देती थी। शुक्ल का प्रश्न "मां के स्वातंत्र्य का क्या होगा ?" उसके कान में मृत्यु के आर्तनाद के समान सुनाई देता था।

उसने ज्यों-त्यों चाय पी और अपनी योजनाओं के काग़ज़ात लेकर वह खड़ा हुआ। वह नीचा सिर कर कालेज की ओर जाने को रवाना हुआ।

नीचे उसे 'बोर्डिङ्ग' का नौकर मिला। 'बाबाजी ! क्या दियासलाई की डिब्बी है ? मुझे दो तो,' कह उसने डिब्बी ली। वृद्ध बाबाजी ने सदुभाई को धोती धो-धोकर उसे पांच साल तक उछेरा था। लड़का अच्छा था, 'क्या बीड़ी पीना सीखा है ?' उसने विचार किया।

सुदर्शन स्टेशन की ओर के कालेज के भाग के जीने से उसके ऊपर की गुम्बज की छत पर गया। वहां बैठकर उसने पढ़ा था, वहां उसने सपने रचे थे, वहां 'माँ' ने उसे अनेक बार दर्शन दिये थे।

वहां जाकर उसने अपनी योजना खोली। उसमें उसके अन्तिम तीन वर्ष के सपनें व आदर्श, विचार व योजना उसने एकत्रित किये थे। उसकी उछरती मानवता का वह सुन्दर बालक था। उसने धीरे से, ममता से, कहीं नींद से रो न उठे इस भय से, अस्पष्ट स्पर्श से, मानो एक बार मुँह देखने की अन्तिम लालसा न जाती हो इस प्रकार पृष्ठ पलटाये—उसने दृष्टि डाली।

'भारतीय प्रजा याने विभिन्न आदर्शों से आकर्षित होने वाले जन-समूह। जब तक एक सशक्त समूह कोई प्रबल आदर्श दूसरे सब पर न लादे तब तक राष्ट्रीय एकत्व अशक्य है।'

'प्रबल आदर्श ही राष्ट्र-धर्म है।'

'राष्ट्रधर्म आर्यसमाज का धार्मिक उत्साह नहीं होता, पुराने विचार के लोगों का प्राचीनकाल का पुनः सृजन करने का अशक्य आदर्श नहीं होता।'

'राष्ट्रधर्म ईश्वर व सम्प्रदाय, आत्मा व पुनर्जन्म, समाज व नीति की परवाह किये बिना निश्चयात्मक, अर्वाचीनता से ओत-प्रोत, धार्मिक जोश से संयुक्त महान् धर्म होता है।'

'उस धर्म का देवता एक ही है—'मां'।'

'उसमें मुक्ति दो प्रकार की होती है—'माँ' का उद्धार या व्यक्ति की मृत्यु।'

'उसके साधन—'जो उपयोगी लगे वह।' '

उसने दो पृष्ठ पलटाये ।

'यह राष्ट्रधर्म एक सशक्त समूह द्वारा स्वीकृत किया जाना चाहिए ।

'वह समूह सशक्त होना चाहिए । उसमें सम्पूर्ण एकत्व होना, अहंभाव होना चाहिए, व्यक्तित्व होना चाहिए ।'

'उसमें दो-चार या फिर एक मनुष्य की ही सत्ता होनी चाहिए ।'

'इस समूह को लोकशासन का स्पर्श नहीं लगना चाहिए ।'

'हज़ार मनुष्यों का एक पुरुष चाहिए ।'

'भारत निर्जीव है; उसमें व्यवस्था-वृत्ति नहीं है ।'

'व्यवस्था-वृत्ति बहुत ही ऊंची शिक्षा से या स्वातन्त्र्य के उत्साह से नहीं आती। उससे पहले तो व्यवस्था-वृत्ति का नाश होता है ।'

'वह राष्ट्रीय प्रणालिका या एक सशक्त समूह के भय से आती है ।'

'राष्ट्रीय प्रणालिका हज़ार वर्ष तक स्वातन्त्र्य के सेवन से छोटे-से देश में आती है—देखो इंगलैंड ।'

'बड़े देश में विभिन्न आदर्शों वाले समूह में वह सशक्त समूह के भय से आती है । ब्राह्मणों ने भूतकाल में पाप-पुण्य के भय से कुछ व्यवस्था-वृत्ति विकसित की थी ।'

सुदर्शन मुग्ध बनकर पढ़ता रहा । 'कैसे रत्न थे !' क्या वे उसके थे ? 'नहीं ! 'माँ' की प्रेरणा से मेरी कलम ने लिखे थे....' उसकी आंखों में आंसू उभर आये । 'इन रत्नों का विनाश किया जाय ।'

कैसी करुण कथा !....कैसे हिम्मतवान, आशापूर्ण, अभिलाषापूर्ण युवकों ने 'मां' के मंदिर की देहली को पवित्र किया !

केरशास्प—गर्विष्ठ, धनाढ्य, उत्साही, व्यवहार-कुशल—मण्डल के लिए धन एकत्रित करने में भिखारी, बेइज़्ज़त हुआ ।

नारणभाई—योग्य गणित-शास्त्री, 'एम० ए०' की परीक्षा व काम-काज छोड़ बेकार बन गया । गिरजा शुक्ल—परीक्षा व भविष्य को छोड़ होशियारी का उपहार दे रहा था । और स्वतः कितने ही वर्ष गंवाकर

पिता का प्रेम गंवाकर आकर्षक वधू व उज्ज्वल काम-काज छोड़ इस समय इस दशा का अनुभव करता था।

क्या करना चाहिए ?

'माँ ! माँ मुझे उत्तर दो। मेरी अम्बा ! जननी ! भारती ! एक बार दर्शन दो। मुझे कहो, मैं क्या करूं ? तुम मुझे मिलतीं और मैं प्रेरित होता। तुम आज्ञा देतीं और मैं पालता। तुम हंसती और मैं प्रफुल्ल होता। माँ ! माँ ! तुम्हारे 'प्रियतम' को वापस लाने का अपना वचन मैं भूला नहीं हूं। मैं निर्जीव होऊंगा—निरर्थक होऊँगा, पर मैंने भरसक प्रयत्न किया। माँ !' उसकी आंखों में से अश्रुधाराएं बहती थीं। 'माँ ! एक बार दर्शन तो दो ? मुझे एक बार सपना तो दो ? मुझे सूझता नहीं। मैं अन्धकार में हूं। तुम्हारे बिना अन्धा हूं। मुझे बिलकुल छोड़ दिया। अम्बा ! जगज्जननी ! एक क्षण-भर के लिए मुझे दर्शन देकर बचाओ। माँ ! माँ ! माँ !' वह सिसकियां लेकर रोने लगा। चारों ओर उसकी आँसुओं भीगी हुई आंखें 'माँ' को खोज रही थीं।

सूर्य का तेज़ बढ़ रहा था। एक ओर गुम्बज थी। सामने कंगूरे की उस ओर स्टेशन के पास के पेड़ दिखाई देते थे। थोड़ी देर तक वह चुपचाप रोता रहा।

'मां ! क्या मैं बिलकुल अयोग्य हूं ? हां, हूं ही; हूं ही। सच है। केरशास्प ने पैसे बढ़ाये, शुक्र ने होशियारी बढ़ाई, मैंने कुछ भी किया नहीं। मां, क्या तुम्हें सब चाहिए ? लो अम्बा भवानी !'

क्षण-भर के लिए उसने अपनी योजना को माता की प्राणवेधक ममता से देखा। उसके हृदय के बांध टूटते थे। दांत बंदकर उसने दियासलाई सुलगाई और योजना के प्रत्येक पृष्ठ पर आग रखी।

जलते हुए पृष्ठ राख बनकर बिखरने लगे। आग अंगुलियों तक आई तब उसने राख फेंक दी।

'पूरा हो गया,' उसने क्रूरतापूर्वक हंसकर कहा।

उसकी आत्मा शरीर से उकता गई थी। उसे 'मां' की गोद में शरण लेनी थी। उसने अन्तिम बार 'मां' के दर्शन करने का प्रयत्न चारों ओर देखकर किया। निश्चेतन धूप चारों ओर स्पष्ट प्रकाश फैला रही थी।

उसने कंगूरे पर हाथ रखा।

'सदुभाई!' जीने की कोठरी में से किसीकी आवाज़ आई।

'वह फिरा—'कौन है?'

'सदुभाई कहां है? छत पर?' प्रमोदराय की आवाज़ आई और दूसरे क्षण में प्रमोदराय हांपते-हांपते आकर सुदर्शन से लिपट गये। 'मेरे बेटा, क्या करना चाहता है?' सुदर्शन बोल न सका।

'बेटा! गुप्त मण्डल, सभाएं, षड्यन्त्र—यह सब क्या है? मेरी सफेदी को बट्टा लगाने के लिए यह सब क्या कर रहा है? रावबहादुर क्रोध करने का तय करने आये थे, पर इस समय वे भी आक्रन्द कर रहे थे। 'बेटा! बेटा!'

'पिताजी! मैं कुछ नहीं करता।' बीमार की-सी आवाज़ में सुदर्शन ने कहा। रावबहादुर ने ध्यान से देखा तो पुत्र अस्वस्थ, निर्बल व निस्तेज था।

'बेटा! तुझे कुछ पता है?'

'क्या?'

'तेरे 'वारंट' हैं।'

'वारंट!'

हां, तू षड्यन्त्रकारियों का शिरोमणि है और मैं सरकार का नमक खाता हूं।'

'किसने कहा कि 'वारंट' हैं?' सुदर्शन ने पूछा।

'जगमोहनभाई ने कहा। उन्होंने रुकवाया है।'

'किसलिए?'

'मूर्ख! होशियारी जाने दे। चल मेरे साथ।'

'जी।' निश्चेतमता से सुदर्शन ने कहा।

'तेरे काग़ज़ात हों, और कोई प्रमाण हो तो जला डाल।'

'जो था वह सब जला दिया।' सुदर्शन ने निराशा से योजना की ओर अंगुली की।

'ठीक किया। अब हमारा कहा करना है, समझे?'

'जी!' मानो उसे परवाह न हो, इस प्रकार उसने कहा।

'मेरे साथ इस समय बम्बई चलना है।'

'जी।'

'परसों विलायत जाना है।'

'अच्छा।' सुदर्शन में आश्चर्यचकित होने की शक्ति न रही थी।

'जगमोहनभाई ने 'पैसेज' लेकर रखा है। और बैरिस्टर होकर आना है।'

'जी।'

'—और सुलोचना के साथ विवाह करना है।' सुदर्शन की आंखों में तेज आया। उसे धनी की याद आई। धनी के साथ परस्पर प्रतीक्षा करने की भीष्मप्रतिज्ञा उसने की थी। उसने सिर धुनाया—'नहीं।'

'नहीं क्यों?' प्रमोदराय ने व्याकुल होकर पूछा।

सुदर्शन की आंखों में पानी आया।

'मैंने व सुलोचना ने प्रतिज्ञा की है कि परस्पर विवाह न करेंगे।'

'बड़ा प्रतिज्ञा करने वाला!' रावबहादुर ने कहा।

'सच बात है,' तिरस्कारपूर्वक सुदर्शन ने कहा।

'क्या सच बात है?' पिता ने पूछा।

'प्रतिज्ञा करनेवाला! कितनी ही की व कितनी ही तोड़ी।' कटुतापूर्वक पुत्र हंसा।

'तब यह एक अधिक।'

'पिताजी !' सुदर्शन ने एकदम पिता की ओर देखा। 'मुझ पर बहुत बीती है। इतना बाकी है ?'

'बहुत बीतने का मुंह दिखाई देता है न ! चलो अब। भोजन कर गाड़ी पकड़ें,' कहकर प्रमोदराय जीना उतरने लगे।

सुदर्शन चुपचाप पीछे चला।

उपसंहार

: १ :

१६ मार्च १६११ को प्रातःकाल स्वर्गीय 'माननीय' जगमोहनलाल के घर में आनन्द छा रहा हो, ऐसा दिखाई देता था।

जमना काकी उर्फ गौरी बहन बैठी थीं। पास में हर्षोन्मत्त जमना-भाभी आनन्द मना रही थी। नवापुरा के दीवान साहब हर्ष में घूमते थे। ऊंची, पतली सुलोचना चाय निकालती थी। उसकी भौं में मोहकता थी, पर उसके मुख पर गाम्भीर्य था। कभी-कभी वह जरा हंसती थी।

उसके पास कुरसी पर एक छोटी धोती पहने व मुंडे सिर, कुरूप मुख वाले बड़े चश्मे म विभूषित एक महाशय विराजमान थे। प्रोफेसर कापड़िया हंसते थे, हाथ घिसते थे सूंघनी सूंघते थे, और चाय में शक्कर डालती हुई सुलोचना के हाथ पर दृष्टि स्थिर कर बैठे थे।

एक निस्तेज पतला युवक, मुंह कड़ाई से बंद कर पैर-पर-पैर चढ़ाकर सामने कुरसी पर बैठा था। उसकी वेश-भूषा से ऐसा दीखता कि वह विलायत से हाल ही में लौटा हो। उसके मुख से लगता था कि चहुंओर फैले हुए हर्ष ने उसको स्पर्श नहीं किया था।

वह सुदर्शन था। उसने सबेरे ही जहाज़ से उतर कर मातृभूमि पर पैर रखा था।

'मैंने कहा नहीं था,' रावबहादुर ने जमना भाभी को हंसते-हंसते कहा; 'कि तुम्हारा पुत्र पिता से सवाया होगा ?'

'आपका कहना क्या किसी दिन मिथ्या निकल सकता है ?' जमना भाभी ने कहा। वे दोनों वृद्ध पति-पत्नी पुत्र की विजय में बालपन के उत्साह का अनुभव करने लगे।

सबने चाय पी, वे हंसे, बोले, उन्होंने बातें की व सब अपने-अपने काम में लग गए।

सुदर्शन भी उठा। नहाकर, कपड़े बदलकर, वह बाहर निकला।

जहाज से उतरने के पश्चात् वह ज़बरदस्ती कुछ शब्द बोला था। हंसना वह भूल गया था।

तीन वर्ष में उसने पिता के अतिरिक्त किसीसे पत्र-व्यवहार नहीं किया था। एक बार उसने धनी को पत्र लिखा था, जो 'डेड लेटर-ऑफिस' से वापस आया था।

: २ :

सबेरे पूरे समय तक वह एक ही काम करता रहा। अपना पापी हृदय कोई खुद ही द्वेष से खोदता हो इस प्रकार उसने अपने मित्रों के समाचार प्राप्त करने की कोशिश की। टेलीफोन की पुस्तक से केर-शास्प का उसे तुरन्त पता मिला। वह एक छोटे कमरे में टेलीफोन लगाकर सट्टा करता था। पेट-भर कमाना ही उसका परम ध्येय था। उसने बहुतों के समाचार कहे।

पाठक मद्रास छोड़ ईडर में मास्टरी करता था।

मगन पण्ड्या अभी अमेरिका में मज़ा उड़ा रहे थे। भारत से नई-नई चीज़ें मंगवाकर वहां के प्रोफेसरों को इनाम देने की प्रवृत्ति के अति-रिक्त उनकी और कोई प्रवृत्ति का किसीको ज्ञान नहीं था।

धीरु शास्त्री आर्यसमाज से उकताकर गुजरात में किसी स्थान पर पाठशाला खोलने का प्रयत्न करता था; अभी तक सरकार से स्वतंत्र शिक्षा देने के आदर्श का सेवन करता था।

सनत्कुमार जोशी शारीरिक विकास का तिरस्कार कर आबू पर किसी महात्मा की शरण में प्राणायाम कर कालभैरव की सिद्धि कर रहा था।

नारणभाई पटेल धर्मज के पास अपने बाप-दादा की खेती करने में व्यस्त रहते थे।

मोहन पारेख गांव-गांव घूमते थे और जहां कुंए की कमी हो वहां कुंआ बनवाने के लिए लोगों को प्रेरित करते थे।

गिरिजाशंकर शुक्ल पागलखाने में वर्ष-भर रहकर एक दिन भाग गया, सो उसका पता नहीं था।

शिवलाल श्रॉफ बम्बई में मौज करता था।

अंबेलाल एक मारवाड़ी के यहां मैनेजर था। उसकी स्त्री—वकील—घर का काम करती व बच्चे उछेरती थी।

'ट्रीं—ट्रीं—ट्रीं—' केरशास्प का 'टेलीफोन' अधीर हुआ।

सुदर्शन उठा। धीरे-से उसने नमस्ते किया व इजाज़त ली। उसके मुख की रेखाएं अधिक सख्त हुईं।

: ३ :

वह शिवलाल श्रॉफ के यहां गया। शिवलाल रजोगुणी था, बड़ा चालाक था, खटपटी था। उसमें लोगों को समझाने की अद्भुत शक्ति थी। बहुत बार उसकी व्यवस्था-शक्ति पर लट्टू होकर उसे वह बाल-चाणक्य कहता था। परिचित जीना चढ़कर वह ऊपर गया।

'क्या शिवलाल है?'

एक आदमी गाता था—

'वैष्णव जन तो कहते उसको
जो पीर पराई जाने रे'

'अरे, क्या शिवलाल है?'

वह आदमी फिरा। उसके मस्तक में वैष्णव पंथ का बड़ा तिलक था।

'कौन शिवलाल, स्वतः ? कैसे हो ?' सुदर्शन ने कड़ी आवाज़ में कहा।

'कौन सदुभाई ! तुम आ पहुँचे ?' श्रॉफ ने नमस्कार किया। वे बैठे। थोड़ी बातचीत कर उसने अंबेलाल का पता पूछा। सुदर्शन की दृष्टि सोफे पर एक पोथी और रुई पड़ी थी, उस पर गई।

'यह क्या है ?'

'यह तो विष्णुसहस्र-नाम है। मैं इसके रोज ग्यारह जाप करता हूं।'

'और यह क्या है ?'

'अपने देवता के लिए मैं अपनी ही बनाई हुई बात से दीया बालता हूँ। हाथ से किया हुआ साथ आता है।'

'अच्छा मैं जाऊंगा,' कह सुदर्शन उठा। उसका गला रुंध रहा था।

'हां भाई, फिर आना !' कह शिवलाल जीने तक उसे पहुंचा गया।

सुदर्शन जीना उतरता था, तब उसके कानों में आवाज आई।

'वैष्णव जन तो........'

: ४ :

वह सुलोचना के घर गया, व उसने भोजन किया।

वह व सुलोचना एकान्त में मिले, ऐसा षड्यन्त्र बड़ों ने छः बार किया था, पर या तो सुदर्शन सुलोचना के उठ जाने से वह सफल नहीं हुआ था।

आखिर सुदर्शन उकता गया। मृत्यु द्वारा पकड़े जाने की अपेक्षा उसके सामने जाना क्या बुरा है ?

भोजन के पश्चात् सब बड़े लोग इधर-उधर हो गए; सुलोचना भी उठकर जाने लगी।

'सुलोचना !' उसने शान्ति से कहा।

'क्यों ?' सुलोचना फिरी।

'जरा बैठो।'

'क्यों ?'

'जब तक हम दोनों अकेले बैठ न लेंगे, तब तक ये सब इधर-उधर भागना बंद नहीं करेंगे।'

सुलोचना ने क्षण-भर के लिए शान्ति से सिर नीचा किया व तुरंत फिर से सिर ऊंचा किया। 'बोलो, क्या कहना है ?' वह जरा तिरस्कारपूर्वक बोली।

'क्या मेरे साथ विवाह करना है ?' वैसे ही तिरस्कार से सुदर्शन ने कहा।

'आप क्या सोचते हैं ?' शान्ति से सुलोचना ने कहा।

'देखो,' सुदर्शन ने बहुत ही कटुता से प्रारंभ किया, और वह अपनी अंगुली से गिनती करने लगा, 'कन्या ठीक उमर की है, सुंदर है, पैसे वाली है। वर भी ठीक उमर का है, कुरूप नहीं है, विद्यावान् है—शायद परमात्मा न करे, 'हॉईकोर्ट' का जज भी हो जाय।'

'फिर ?'

'दोनों एक जाति के हैं।'

'फिर ?'

'माता-पिता ने बालपन से विवाह तय कर लिया है।'

'फिर ?' जरा हंसकर सुलोचना ने कहा।

'आज माता-पिता विवाह करने के लिए उत्सुक हो रहे हैं।'

'फिर ?'

'फिर अब तुम जैसा कहो वैसा। समाज ने तो बहुत आकर्षक विवाह निश्चित किया है। प्राणीशास्त्र के अनुसार अब तुम्हें पसंद करने का अधिकार है।'

'सदुभाई !' जरा गुस्से से सुलोचना ने कहा।

'गुस्सा न करो। मैं तुम्हारा अपमान नहीं करता; पर मैं एक समय

सपनों में ही जीवित रहता था। आज सपने देख नहीं सकता। जो सच्ची बात मालूम पड़ती है, वह मैं तुम्हारे सामने रखता हूं। क्या समाज को रिझाने के लिए विवाह करना है? यह प्रश्न माता-पिता के लिए है। उसका तो निराकरण हो गया। मैंने कहा उस प्रकार प्राणी-शास्त्र के अनुसार निर्णय करना बाकी रहा है। 'Sexual selection' ही अन्तिम उद्देश्य है।' उसने कटुता से कहा।

'इसके अतिरिक्त आपका क्या दूसरा उद्देश्य नहीं है?' उसने तिरस्कार से कहा।

'यदि सपने आते रहते तो रहता। आज सपने भी नहीं हैं, और उद्देश्य भी नहीं है।'

'तब मैं भी कहती हूं—'

'कह डालो।'

'एक बार मैं एक पुरुष से विवाह करने वाली थी। वह नमक-हराम जानवर निकला। आज आप भी जानवर हैं; आप स्वतः स्वीकार करते हैं। दो जानवरों के अतिरिक्त मुझे किसीको पसंद करने का समय आया नहीं है।'

'तब क्या नाहीं करती हो?'

'मैं 'हां' कहूँ तो आप क्या करेंगे?' सुलोचना ने पूछा।

'मैं 'हां' कहने के पहले विचार करूंगा।' धीरे से सुदर्शन ने कहा।

'तब अभी करिए न। मैं उसके पहले किसलिए विचार करने का कष्ट उठाऊं?' तटस्थता से सुलोचना ने कहा।

'वह विचार करने के लिए साधन नहीं है।' कड़ाई जरा कम हुई।

'साधन प्राप्त करिए।'

'कब प्राप्त हों यह कैसे कहा जा सकता है?'

'तो तब तक हमारा क्या बिगड़ने वाला है?'

'सुलोचना! तुम भी जबरदस्त हो।'

'आप भी वैसे ही हैं; और हममें सपनों का सेवन करने की या

उन्हें सुरक्षित रखने की शक्ति नहीं है।' उसने खड़े होकर दरवाजे की ओर जाते समय कहा।

'सेवन करने की तो नहीं है; सुरक्षित रखने की कौन जाने ?— सुदर्शन बड़बड़ाया।

: ५ :

सुदर्शन परेल में अम्बेलाल के यहां गया। उसका मुंह कड़ाई से बन्द ही था।

थोड़ी देर में उसे एक बड़े सेठ के बंगले के कम्पाउण्ड में छोटे बंगले के दरवाजे पर अम्बेलाल के नाम की तख्ती दिखाई दी। उसने दरवाज़ा खटखटाया। एक नौकर ने दरवाज़ा खोला।

'क्या सेठ हैं ?'

'बाहर गये हैं।'

'क्या बाई हैं ?'

'बाहर गई हैं।'

क्षण-भर के लिए सुदर्शन चुपचाप खड़ा रहा। वापस जाने का उसने विचार किया, पर पैर उठे नहीं। उसने खांसकर धीरे से पूछा, 'क्या धनी बहन हैं ?'

'हैं।' नौकर ने कहा।

'जरा बुलाओ। कहो, कोई मिलने आया है।

सुदर्शन दरवाजे से अन्दर घुसा। उसकी आवाज़ से लगभग स्वाभाविक-जैसी जो सख्ताई थी, वह जाती रही थी; वह अन्दर आकर बैठक में खड़ा रहा। ध्यान से देखने की उसमें शक्ति नहीं रही थी।

नौकर आकर टेबल पर 'डिटमार' की लालटेन रख गया। क्षण-भर के लिए सुदर्शन को कांदावाड़ी की कोठरी याद आई। वहां के दीये के समान ही यह मोहक हो, ऐसा कुछ दिखाई दिया। इस प्रकाश में

विचित्र उल्लास का प्रोत्साहन जान पड़ा। तीन वर्ष की अशक्ति जाती रही। स्वप्नद्रष्टा की दृष्टि से एक लड़का व लड़की भीष्म-प्रतिज्ञा लेते हुए दिखाई दिये। सुदर्शन के रक्त में अपरिचित प्रफुल्लता...

'कौन हो भैया! किसका काम है?' एक संस्काररहित आवाज़ ने पूछा।

सुदर्शन ने सिर ऊंचा किया।

एक लड़की—एक स्त्री दरवाजे में खड़ी थी।

उसके बाल बिखरे हुए थे। निर्बलता के काले दाग़ उसकी बड़ी-बड़ी आंखों के आस-पास थे। उसका मुंह जीर्ण व निस्तेज था। वह हाल ही में कुछ खाकर चबाती थी, और सुगन्धि उसके मुंह से आती थी। उसके अञ्चल के नीचे एक बच्चा था। वह गर्भवती दिखाई देती थी।

वह सुदर्शन को पहचान न सकी।

सुदर्शन ने देखा—वह उठा; 'देसाई को कहना मैं कल आऊंगा।' उसने कहा।

दो छलांग में वह दरवाजे के बाहर निकला।

एक जंगली, क्रूर विडम्बना करते हुए हास्य ने ओटे पर का वातावरण अमानुषी कर दिया।